[illegible]वि. वि. की प्रथमा परीक्षा पाठ्य स्वीकृत

[illegible]तीय इतिहास की रूपरेखा

नाम रामकृष्ण त्रिवेदी

डॉ. [illegible] श्रीवास्तव

[illegible] संस्कृत सीरीज आ[illegible]

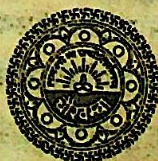
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय की प्रथमा-परीक्षार्थ प्रस्तुत

भारतीय इतिहास की रूपरेखा

लेखक

डॉ० बलराम श्रीवास्तव

भू. पू. प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, कला-इतिहास विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
भूतपूर्व संग्रहालयाध्यक्ष
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी



चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ आफिस, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : पुर्नमुद्रित, सम्बत् २०५८, सन् २००१
मूल्य : रु० ५०.००

पोस्ट बॉक्स नं० १००८
के. ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास, वाराणसी-२२१ ००१ (भारत)
फोन : ३३३४५८ (आफिस), ३३४०३२ एवं ३३५०२० (आवास)
e-mail : cssoffice@satyam.net.in

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

कृष्णदास अकादमी
पुस्तक प्रकाशक एवं वितरक
पोस्ट बॉक्स नं० १११८, के. ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
वाराणसी-२२१ ००१ (भारत). फोन : ३३५०२०

दो शब्द

इतिहास सामाजिक विद्याओं का मेरुदण्ड है। इसका अध्ययन प्रेरणादायक है तथा इससे राष्ट्र का उन्नयन होता है। यह बड़े ही हर्ष की बात है कि संस्कृत के विद्यार्थियों के पाठ्यक्रमों में इतिहास आदि विषयों का भी समावेश किया गया है। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय की प्रथमा कक्षा आठवीं कक्षा के तुल्य है अतएव आठवीं कक्षा के इतिहास के स्तर का ध्यान रखते हुए ही प्रथमा का भी इतिहास-सम्बन्धी पाठ्यक्रम निर्धारित किया गया है। स्तर समान होते हुए भी प्रथमा और आठवीं कक्षा की समस्यायें समान नहीं हैं। आठवीं कक्षा के विद्यार्थी इतिहास का अध्ययन निचली कई कक्षाओं से करते हुए आते हैं। इसके विपरीत प्रथमा कक्षा व्यवहारतः संस्कृत छात्रों की प्रथमा कक्षा ही है।

प्रस्तुत पुस्तक में भारतीय इतिहास के प्रमुख तथ्यों को समाहित किया गया है। सूत्ररूप में होते हुए भी प्रस्तुत पुस्तक इतिवृत्तात्मक नहीं है। यथा-अवसर; इतिहास की उन्मेषकारी प्रवृत्तियों की चर्चा भी की गयी है। प्रचुर रेखा और मानचित्र विषय को आकर्षक और सुबोध बना सके हैं।

इस ग्रंथ का प्रथम संस्करण संवत् २०२१ में हुआ था। कुछ ही दिनों में ग्यारह संस्करण निकालने पड़े, जिनमें समय-समय पर मूल सामग्री में भी यथोचित परिवर्तन किये गये।

यह बारहवाँ संस्करण है, जो मुख्यतया तृतीय संस्करण का पुनर्मुद्रण है। संस्कृत विश्वविद्यालय के प्रथमा पाठ्यक्रम में किसी भी प्रकार का परिवर्तन न होने से इस संस्करण में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ है। यत्र-तत्र यथा-आवश्यक संशोधन और परिवर्धन किया गया है। खण्डानुसार अध्यायों का विभाजन न करके पूरी पुस्तक के अध्यायों को एक ही क्रम में रखा गया है।

पाठ्यपुस्तक के रूप में "भारतीय इतिहास की रूपरेखा" की सफलता के लिए हम छात्रों और अध्यापकों को बधाई देते हैं। आशा है उनकी कृपा मुझे पूर्ववत् उपलब्ध होती रहेगी।

बलराम श्रीवास्तव

विषय-सूची



भारतीय इतिहास की रूप-रेखा

अध्याय १

भारत की मौलिक एकता

नामकरण :—

हमारे देश का नाम प्राचीनकाल से भारतवर्ष है। कहते हैं कि इस देश का भारतवर्ष नाम चक्रवर्ती राजा दुष्यन्त के पुत्र भरत के नाम पर पड़ा है। मत्स्यपुराण के अनुसार मनु जो प्रजाओं का भरण-पोषण करने वाले है, भरत कहे जाते हैं और इन्हीं मनु (भरत) के नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा है। जैन-परम्परा के अनुसार ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र का नाम भरत था और इन्हीं के नाम पर इस देश को भारतवर्ष कहा जाता है। विष्णुपुराण का मत है कि समुद्र के उत्तर और हिमालय के दक्षिण का देश (वर्ष) भारत है क्योंकि यहाँ भारती सन्तति रहती है।[1] 'भारती सन्तति' का मूलतः तात्पर्य उन भरतवंशी आर्यों से है जिनकी संस्कृति और राजनीति ने पूरे देश को आर्य संस्कृति के रूप में प्रभावित किया है। वर्तमान अवधारणा में आर्य-अनार्य सभी प्रजातियाँ के संकुल भारतीय है।

इस देश को 'इण्डिया' और 'हिन्दुस्तान' भी कहा गया है। ये दोनों नाम क्रमशः यूनानियों और ईरानियों द्वारा दिये गये हैं। प्राचीन भारतीय साहित्य में इन दोनों नामों का व्यवहार नहीं है। किन्तु भारतीय मुसलमान शासकों ने इस देश को 'हिन्दुस्तान और ब्रिटिश शासन-काल में अंग्रेजों तथा अन्य पाश्चात्य जातियों ने इस देश को 'इण्डिया' कहा है। आजकल संविधान के द्वारा इस देश का नाम 'भारत' स्वीकृत है जो यहाँ की प्राचीन सांस्कृतिक परम्परा के अनुकूल है।

विस्तार :—

भारत एक विशाल देश है। इस विशाल देश में अनेक प्रकार की भौगोलिक विषमताएँ और समस्याएँ पायी जाती हैं। कहीं हिमालय की गगनचुम्बी चोटियाँ, तो कहीं गंगा-यमुना का लहलहाता हरा-भरा मैदान। कहीं समुद्रतट, तो कहीं रेगिस्तान। उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम तक इस देश की व्याप्ति ८° उत्तरी अक्षांश से ३७° उत्तरी अक्षांश तथा ६८° पूर्वी देशान्तर से ९७° पूर्वी देशान्तर के बीच है। इसकी अधिकतम लम्बाई और चौड़ाई क्रमशः

---

१. उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्षं तद्‌भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः॥

१८०० और १३६० मील है। इस सुविस्तृत भूभाग और इसकी भौगोलिक विषमताओं का भारतीय इतिहास पर व्यापक प्रभाव पड़ा है। हिमालय की अलंघ्य पर्वतचोटियों ने देश की रक्षा के लिए सजग प्रहरियों का कर्त्तव्य पूरा किया। भारतीय समुद्रों का भी इसी प्रकार सुरक्षात्मक महत्त्व है। हिमालय और समुद्रों से घिरा हुआ यह देश अन्य पड़ोसी देशों से बहुत-कुछ पृथक्-सा रहा। इसका फल यह हुआ कि इस देश की संस्कृति अपने विकास-पथ पर अकेले पथिक की तरह बढ़ती रही। पश्चिमोत्तर भारत में फैली कोह, सुलेमान और किरथर की निम्न श्रेणियों में खैबर, बोलन आदि कई ऐसे दर्रे हैं जिनसे होकर प्राचीन और मध्यकालीन युगों में अनेक विदेशी आक्रमण इस देश पर हुये। इन्हीं मार्गों से होकर सांस्कृतिक और व्यापारिक आदान-प्रदान भी यदा-कदा होता रहा। समुद्री मार्गों को अपनाकर भारतवर्ष में प्रविष्ट होने का प्रयास यूरोपीय जातियों ने आधुनिक युग में ही किया, किन्तु भारतीयों ने समुद्री मार्ग द्वारा अपने व्यापार और संस्कृति का सम्बन्ध सुदूर देशों से बहुत प्राचीन काल से ही जोड़ रखा था।

भारत की मौलिक एकता :

यों तो 'भारतवर्ष' नाम से ही भारत देश की एकता का बोध होता है, किन्तु जलवायु, वनस्पति, भूमि की बनावट, भाषा, धर्म और रीति-रिवाज की विभिन्नता के कारण इस देश की एकता में अनेकता का आभास होता है। भारत देश और भारतीय जीवन की यह विविधता और अनेकरूपता भारतीय संस्कृति और समाज की समृद्धि और शक्ति है। "वास्तव मे एकता का अर्थ 'एकरूपता' नहीं 'एकसूत्रता' है।" इस दृष्टि से देखने पर समस्त भारत में एक प्रकार की मौलिक एकता है और सम्पूर्ण भारत का सांस्कृतिक जीवन एक ही सूत्र में निबद्ध सिद्ध होता है। सम्पूर्ण भारत में समान रूप से अयोध्या, माया, काशी आदि सप्तपुरियों[1] के प्रति; गंगा, यमुना, सरस्वती आदि सात नदियों[2] के

१. अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः॥

२. गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

प्रति और महेन्द्र, मलय, सह्य आदि सप्तपर्वतों[१] के प्रति सम्मान का भाव है। चारों दिशाओं के धाम एवं पीठ (उत्तर में ज्योतिः पीठ—बदरीनाथ, दक्षिण में शृङ्गेरीपीठ—रामेश्वरम्, पूरब में गोवर्द्धनपीठ—जगन्नाथपुरी, पश्चिम में शारदापीठ—द्वारिकापुरी) भी देश की मौलिक एकता को प्रमाणित करते हैं। यह देश प्राचीन ऋषियों के लिए 'देवनिर्मित' था और उसका आदर वे 'जननी' के रूप में करते हुए इसे 'स्वर्ग' और 'अपवर्ग' से भी श्रेष्ठ मानते थे।

राजनीतिक दृष्टि से भी भारत की मौलिक एकता प्रमाणित होती है। यद्यपि भारतवर्ष समय-समय पर अनेक छोटे-बड़े राज्यों में विभक्त रहा, किन्तु इस विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति के विरोध में राजनीतिक एकता का सार्वभौम आदर्श भी शक्तिमान रहा है। वैदिक युग में ही एकराट्, सम्राट्, सार्वभौम, राजाधिराज आदि की धारणा प्रचलित हो गयी थी। 'चक्रवर्ती' राजा का अर्थ ही था ऐसा राजा जिसके राज्य में सम्पूर्ण भारत एक राजनीतिक इकाई के रूप में हो।[२] भारत के ऐतिहासिक काल में चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक, समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त, विक्रमादित्य आदि सम्राटों की प्रभुता सारे देश पर व्याप्त थी। इससे स्पष्ट सिद्ध है ब्रिटिश राज्य के होने के सहस्रों वर्ष पूर्व हमें अपने देश की राजनीतिक एकता का अनुभव था। इसी प्रकार भौगोलिक दृष्टि से भी पूरा देश एक इकाई है तथा इस देश में विभिन्न जाति, धर्म, समुदाय और नस्ल के लोगों के रहते हुए भी यहाँ के लोगों का धार्मिक, सामाजिक और आचार सम्बन्धी आदर्श और व्यवहार बहुत कुछ समान ही है।

प्रश्न

१. इस देश का नाम भारत क्यों पड़ा ?
२. सिद्ध करो कि विभिन्नताओं के होते हुए भी भारत में मौलिक एकता है।

---

१. महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः।
विन्ध्यश्च परियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः॥
२. हिमवत्समुद्रान्तरं चक्रवर्तिक्षेत्रम्।

अध्याय २

इतिहास के प्रमुख उपकरण

भारत में इतिहास पाँचवाँ वेद माना गया है। प्राचीन धारणा के अनुसार पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि इतिहास के अन्तर्गत थे। इतिहास के लिए युग परम्पराओं और विचारधाराओं का अधिक महत्त्व था। आज की तरह तिथिक्रम और घटनाओं से बोझिल तथ्यात्मक इतिहास रचना की शैली भारत में लोकप्रिय न थी।

भारतीय इतिहास की जानकारी विविध साधनों से होती है, जिन्हें हम दो प्रमुख विभागों में बाँट सकते हैं। एक तो साहित्य और दूसरा पुरातत्त्व। साहित्यिक प्रमाण भी विविध हैं। कुछ ग्रन्थ या लेख तो धार्मिक हैं और कुछ इतिहासपरक। सम्प्रदाय भेद से (ब्राह्मण, बौद्ध और जैन) धार्मिक साहित्य के तीन उपविभाग हो सकते हैं। पुरातत्त्व से उन वस्तुओं से तात्पर्य है जो प्राचीनकाल की हैं और खोदाई आदि से मिली हैं। पुरातत्त्व या प्राचीन वस्तुओं के अन्तर्गत मिट्टी के बर्तन, सिक्के, अभिलेख, कलापरक सामग्री तथा मूर्तियाँ और वस्तु आदि आते हैं।

साहित्यिक प्रमाण

धार्मिक और इतिहासपरक साहित्य में भारतीय इतिहास सम्बन्धी अनेक तथ्य छिपे पड़े हैं जिन्हें विद्वानों ने बड़े श्रम और अध्यवसाय से खोज निकाला है। धार्मिक साहित्य के अन्तर्गत ब्राह्मण साहित्य का विशेष महत्त्व है क्योंकि इससे आर्य संस्कृति के विषय में भरपूर जानकारी होती है। ऋग्वेद भारतीय साहित्य का आदि ग्रन्थ है और इससे आर्यों के प्रारम्भिक जीवन की अच्छी झाँकी मिलती है। यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद से भी ऋग्वेदोत्तर आर्य जीवन पर अच्छा-प्रकाश पड़ता है। ब्राह्मणों, उपनिषदों तथा सूत्रग्रन्थों की सामग्री भी तत्कालीन इतिहास रचना के लिए उपादेय है। दो महाकाव्य, रामायण और महाभारत, कौटलीय अर्थशास्त्र, मनुस्मृति आदि स्मृति ग्रन्थ तथा पुराण प्राचीन इतिहास की जानकारी के लिए महत्वपूर्ण हैं।

बौद्ध साहित्य की अमूल्य निधि त्रिपिटक (विनयपिटक, सुत्तपिटक और अभिधम्म पिटक) हैं जिससे ऐसे बहुत-से ऐतिहासिक तथ्यों की जानकारी होती है, जिसके सम्बन्ध में ब्राह्मण साहित्य मौन है। बौद्ध साहित्य, मुख्यतया जातक, कथात्मक होने के कारण तत्कालीन जन-जीवन का अच्छा परिचय देता है। मिलिन्दपञ्हो, ललितविस्तर, बुद्धचरित, मंजुश्रीमूलकल्प आदि बौद्ध साहित्य के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ-रत्न हैं जो इतिहास-रचना में योगदान करते हैं। जैन साहित्य का भी भारतीय इतिहास की रचना में महत्त्वपूर्ण स्थान है। परिशिष्टपर्वन, भद्रबाहुचरित, वसुदेवहिण्डी, कथाकोष, भागवतीसूत्र आदि कुछ महत्त्वपूर्ण जैन-ग्रन्थ हैं, जो इतिहास की प्रचुर सामग्री से भरे हैं।

भारतीय साहित्य में कुछ ऐसे भी चरित; काव्य और जीवनियाँ हैं जो आधुनिक दृष्टि से ऐतिहासिक सामग्री का संकलन प्रस्तुत करती हैं। बाण का हर्षचरित, कल्हणकृत राजतरंगिणी, वाक्पति का गौड़वहो, पद्मगुप्त का नवसाहसाङ्कचरित, जयानक का पृथ्वीराजविजय, हेमचन्द्र का कुमारपालचरित आदि ग्रन्थों से गुप्तोत्तर और पूर्व मध्यकालीन भारत के राजनीतिक इतिहास की अच्छी जानकारी होती है। दक्षिण भारत के राजवंशों के इतिहास के लिए भी अनेक चरित और काव्य तथा नन्दिक्कलम्बकम् लोक विभाग; कलिङ्गत्तुपराणि और स्थल पुराण तथा बृहदीश्वर माहात्म्य, चोलवंशचरित आदि उपयोगी हैं। मध्यकालीन इतिहास के लिए चचनामा, तारीखे-यामिनी, तारीख-उस्त सुबुक्तगीन, तारीखे-फीरोजशाही, बाबरनामा, अकबरनामा आदि प्रसिद्ध हैं और इनसे तत्कालीन इतिहास की जानकारी में बड़ी सहायता मिलती है।

भारत में समय-समय पर विदेशियों का आगमन होता रहा। उनमें से कुछ ने भारतीयों के विषय में अपने संस्मरण लिखे हैं जो बड़े ही महत्त्वपूर्ण हैं। मेगस्थनीज का विवरण चन्द्रगुप्त मौर्य के शासनकाल के लिए बड़ा ही महत्त्व रखता है। फाहियान का विवरण चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल के इतिहास के लिए आवश्यक है। हर्ष के समय में युवानच्वाङ्ग भारत में आया था। उसका विवरण बड़ा ही मनोरंजक और ज्ञानवर्द्धक है। अलबरूनी का विवरण पूर्व मध्यकालीन भारतीय समाज, दर्शन, धर्म और राजनीतिक विवरण के लिए महत्त्वपूर्ण है।

इतिहास की रचना के लिए पुरातत्व की सामग्री भी कई प्रकार की है। पुरावस्तुएँ, जैसे पत्थरों के औजार और हथियार, बर्तन तथा इसी प्रकार के अन्य जीवनोपयोगी उपकरण और वस्तुएँ प्राचीन काल के लोगों की रहन-सहन और आर्थिक जीवन सम्बन्धी जानकारी देने के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। प्राचीन स्मारकों से उस समय की वास्तुकला तथा नागरिक जीवन की झांकी मिलती है। प्राचीन वास्तु से भारतीय धार्मिक जीवन पर भी प्रकाश पड़ता है। मध्यकालीन शासकों के बनवाये बहुत-से मकबरे, महल आदि आज भी तत्कालीन वैभव और कलात्मक रुचि का परिचायक हैं। प्राचीन अभिलेखों और मुद्राओं का इतिहास-रचना में अपेक्षाकृत प्रत्यक्ष योगदान है। अशोक के अभिलेख उसके इतिहास के लिए बहुत महत्त्व रखते हैं। समुद्रगुप्त के चरित तथा उसके विजयों की जानकारी के लिए प्रयाग की प्रशस्ति एकमात्र साधन है। दक्षिण भारत के राजवंशों के लिए अभिलेख प्रमुख आधार हैं। कुछ राजवंशों यथा पाण्डव राजवंश के इतिहास का प्रामाणिक आधार केवल उनके अभिलेख ही हैं। इसी प्रकार, असंख्य ऐसे अभिलेख उपलब्ध हुए हैं जो अपने समय के सामाजिक और राजनीतिक जीवन, राजाओं की विजयों का इतिहास, मन्दिर-निर्माण आदि धार्मिक कृत्यों का विवरण तथा तत्कालीन लिपि और भाषा का प्रामाणिक परिचय सुलभ करते हैं। मुद्राओं का भी बड़ा महत्त्व है। इनसे राजाओं की नामावली और वंशक्रम निश्चित करने में बड़ी सहायता मिलती है। सिक्कों से राजाओं के शासित-क्षेत्र का भी ज्ञान होता है। सिक्कों पर बने विभिन्न देवताओं की मूर्तियों से तत्कालीन धार्मिक जीवन की भी झांकी मिलती है।

प्रश्न

१. भारत के इतिहास की जानकारी के क्या साधन हैं ?

२. पुरातत्व का भारतीय इतिहास-रचना में क्या योग है ?

अध्याय ३

प्रागैतिहासिक काल

पाषाणयुग :—

भारत की सभ्यता विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में एक है। भारत की सभ्यता और संस्कृति का इतिहास उस समय से प्रारम्भ होता है जब कि मनुष्य आखेट और सुरक्षा के लिए हथियार और जीवनोपयोगी उपकरण के रूप में पत्थरों का ही उपयोग करता था। चूंकि उस समय की सभ्यता और संस्कृति का मुख्याधार पत्थरों के हथियार और औजार थे, अतएव उस युग का नामकरण विद्वानों ने 'पाषाणयुग' किया है। पाषाण युग के पत्थरों के औजारों और हथियारों की बनावट आदि के भेद के आधार पर तीन महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक युगों में बाँटा गया है। एक को पूर्व-पाषाणयुग कहते हैं और दूसरे को नूतन पाषाणयुग। इन दो महायुगों के बीच के सन्धिकाल को मध्यवर्ती पाषाणयुग कहते हैं।

पूर्व-पाषाणयुग में मनुष्य का जीवन प्रायः पशु की तरह रहा और उसकी आवश्यकताएँ भूख, निद्रा और मैथुन से अधिक न थी। वह प्राकृतिक गुफाओं में रहता था तथा भोजन की सामग्री जुटाकर प्रकृत रूप में ही खाता-पचाता था। वृक्षों के फल तथा आखेट से प्राप्त पशु-मांस ही उसका मुख्य भोजन था। उस समय के आदमी छोटे-छोटे झुण्डों में रहते थे और घूम-घूम कर भोजन की खोज करते थे। इनकी धार्मिक भावना का परिचय पाना कठिन है किन्तु ऐसा लगता है कि प्राकृतिक संकटों से बचने के लिए वे किसी अदृश्य सत्ता में विश्वास करते थे। पाषाणयुग की भारतीय सभ्यता के कुछ केन्द्र मदुरा, तंजोर, त्रिचनापल्ली, मैसूर, बिलारी, धारवार, गुजरात, रीवां, बुन्देलखण्ड और राजस्थान में पाये गये हैं। किन्तु प्रमुख पाषाणकालीन केन्द्र उत्तर में सोहन नदी की घाटी कश्मीर और दक्षिण में मद्रास के लगभग था। इस युग के पत्थरों के आयुध बड़े, चौड़े और मोटी धारवाले होते थे।

मध्यवर्ती पाषाणयुग में मानव सभ्यता पूर्व-पाषाणकाल की अपेक्षा विकसित थी। इस युग के हथियार छोटे होते थे। इस सभ्यता के केन्द्र भी अपेक्षाकृत अधिक थे। मिर्जापुर और मयूरभंज में इस युग की सभ्यता के प्रमुख केन्द्र थे।

नूतन पाषाणयुग पाषाणयुग का बड़ा महत्त्वपूर्ण युग था। इस युग में मानव पूर्व की अपेक्षा अधिक सभ्य हो चला था और 'स्मृति तथा अनुभव' के आधार पर अपने आर्थिक तथा सामाजिक जीवन में बहुत-कुछ प्रगति कर चुका था। यद्यपि अभी भी उनके आयुध और उपकरण पत्थर के ही थे, किन्तु इस युग के हथियार और औजार पहले की अपेक्षा सुन्दर, छोटे, सुविधाजनक और उपयोगी थे। लोग अब केवल गिरि कन्दराओं में ही नहीं रहते, बल्कि पत्थरों को जोड़-तोड़ कर दरी और गुफा की ही तरह कृत्रिम आवास भी बना लेते थे। घास-फूस की झोपड़ियाँ भी बनायी जाती थीं। तब मनुष्य पशुपालन और साधारण कृषि कर्म में भी प्रवृत्त होने लगा था। आग उत्पन्न करने की विधि भी इस युग के लोगों को ज्ञात हो चुकी थी और वे अपना भोजन पकाकर खाते थे। परवर्ती नूतन पाषाणयुग में वस्त्र बनाना भी लोग जान गये थे। सामाजिक जीवन में भी प्रगति हुई थी और पारिवारिक जीवन भी स्वस्थ था। आर्थिक और सांस्कृतिक आदान-प्रदान के हेतु एक सभ्यता केन्द्र के लोग दूसरे केन्द्रों के लोगों से मिलते-जुलते भी थे। फलतः यातायात के माध्यम और पथ-पद्धति में भी विकास होने लगा था। मृत्युत्तर जीवन में भी लोगों का विश्वास था तथा वे शव का दाह या दफनाते समय साधारण संस्कार भी करते थे।

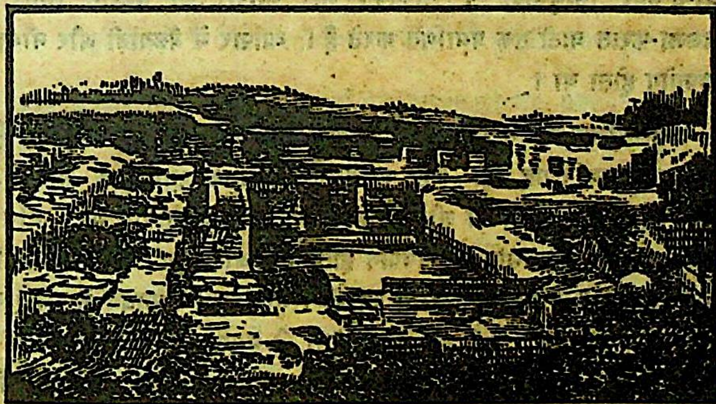
धातुयुग और सिन्धुघाटी की सभ्यता—

नूतन पाषाणयुग के अन्तिम दिनों में लोगों का परिचय कुछ धातुओं से भी हो चला। सर्वप्रथम सोने का पता लोगों को चला। किन्तु आभूषण आदि के अतिरिक्त उस धातु का कुछ अधिक उपयोग न हो सका। कहीं-कहीं जैसे सिन्ध में काँसे का भी व्यवहार होता था। कांस्ययुग के अन्तर्गत दक्षिणी अफगानिस्तान और बलूचिस्तान में भारतीय संस्कृति की विशेष उन्नति हुई। यहाँ खेतिहर किसानों के उत्पादन के आधार पर सिन्धुघाटी में बड़े-बड़े नगर उठ खड़े हुए, जिनमें हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, छन्नूदारी, कालीबंगा और लोथल अधिक प्रसिद्ध हैं। यहाँ की सभ्यता में ताँबे और पत्थरों के उपकरणों का सम्मिलित व्यवहार होता था।

सिन्धुघाटी सभ्यता की विशेषताएँ—

नगर रचना और भवन—सिन्धुघाटी सभ्यता की नगर-रचना बड़ी ही भव्य थी। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में प्रचीन इमारतों के जो अवशेष मिले हैं उनसे ऐसा लगता है कि जैसे वहाँ का नागरिक जीवन बहुत ही सभ्य और उच्चकोटि का था। इमारतों को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है। एक तो सामान्य आवास, दूसरा सार्वजनिक भवन और तीसरा विशाल स्नानागार। मकान पक्की ईंटों के बनते थे, नींव में भी ईंटें दी जाती थीं। फर्श भी ईंटों से बनती थीं। मकानों के निर्माण में सुविधा और उपयोगिता का विशेष ध्यान दिया जाता था, अलंकरण का उपयोग कम या बिलकुल नहीं था। मकानों में रोशनी और हवा के लिए खिड़कियाँ और जंगले होते थे। हर मकान में कुँआ और बगीचा होता था। कुछ मकान दो मंजिले भी होते थे। ऊपर की मंजिल पर जाने के लिए सीढ़ियाँ होती थीं और छत शहतीरों पर आधारित होती थी। मकानों का रुख प्रायः सड़कों की ओर होता था।

घरों में पानी के निकास के लिए मोरियाँ बनी थीं। सार्वजनिक उपयोग के



मोहनजोदड़ों का विशाल स्नानागार

लिए बड़े-बड़े हाल भी बनाये जाते थे। मोहनजोदड़ों में एक विशाल स्नान-कुण्ड

मिला है। यह बड़े चौकोर आँगन के बीच स्थित है जिसके चारों ओर बरामदे और कमरे हैं। पानी में उतरने के लिए सीढ़ियाँ और स्नान के लिए चबूतरे बने हुए हैं। सार्वजनिक उपयोग के लिए विशाल स्नानागार भी बने होते थे।

सड़कें सीधी, चौड़ी और एक दूसरे को चतुष्कोण पर काटती हुई गयी हैं। शहर की सुरक्षा के लिए परकोटा भी बना था।

आर्थिक जीवन—सिन्धुघाटी के नागरिक जीवन को सुदृढ़ आर्थिक आधार प्राप्त था। कृषि और पशुपालन के अतिरिक्त उद्योग और व्यापार भी विकसित थे। कृषि कर्म में फलयुक्त हल का उपयोग होता था और हल खींचने के लिए वृष उपयोगी समझा जाता था। मुख्य उपज गेहूँ, जौ, बाजरा थी और वस्त्रोद्योग विकसित था। रंगाई, कढ़ाई भी लोग करते थे। धातु के काम में यहाँ के कारीगर प्रवीण थे, विशेषकर आभूषण के निर्माण में। ऊनी वस्त्रों का भी उत्पादन और व्यापार होता था। गाय, बैल, भैंस, भेंड़, हाथी, सूअर, मुर्गियाँ यहाँ के पशुधन थे। व्यापार जल और स्थल मार्ग से होता था। सिन्धुघाटी का व्यापारिक सम्बन्ध मैसोपोटामिया तक से था। लोथल की गोदी और वहाँ से प्राप्त मुहरें सिन्धुघाटी के नौकायन और व्यापार को बेहरीन सागर तथा दजला-फरात घाटी तक प्रमाणित करते हैं। व्यापार में बैलगाड़ी और नौका का उपयोग होता था।

सामाजिक जीवन—सिन्धुघाटी के नागरिकों का सामाजिक जीवन स्वस्थ था यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि उनकी सामाजिक संस्थाएँ क्या थीं। रहन-सहन सभ्य था और आहार-विहार भी प्रशंसनीय था। भोजन में दूध, फल, अन्न और मांस का उपयोग होता था और लोग उत्तरी तथा अधोवस्त्र धारण करते थे। मूँछ-दाढ़ी रखने का भी रिवाज था। प्रसाधन के लिए दर्पण का प्रयोग होता था। स्त्री तथा पुरुष दोनों ही समान रूप से आभूषण प्रिय थे। हार, बाजू, कुण्डल, अंगूठी प्रमुख आभूषण थे तथा कीमती पत्थरों, घोंघों, सीपियों, हड्डियों से भी लोग शृङ्गार और प्रसाधन करते थे।

आमोद-प्रमोद और कला—पर्व और उत्सवों पर लोग गाना-बजाना करते थे तथा नृत्य का भी प्रचलन था। जुआ और चौपड़ खेलने की भी प्रथा

थी। इस युग की कला बहुत ही विकसित थी। मूर्तिकला में अच्छी प्रगति हो गयी थी। मूर्तियाँ मिट्टी, पत्थर और धातु की बनती थीं। बच्चों के खेलने के लिए मिट्टी की गाड़ियाँ और पशु-पक्षी की आकृतियों के बनाने का बड़ा रिवाज था। पूजा के लिए मातृदेवियों तथा पशुपति की मूर्तियों का निर्माण और





मोहनजोदड़ों से प्राप्त धरतीमाता पुरोहित की मूर्तियाँ तथा मुद्रा

व्यवहार होता था। मिट्टी के बर्तनों पर चित्रकारी का बड़ा रिवाज था। स्फटिक आदि पत्थरों के मनके, चूड़ियाँ, मुहर कलात्मक ढंग से बनाये जाते थे। लेखन-कला का भी प्रचार था।

~धार्मिक जीवन—यहाँ के लोग लिंग और योनि पूजक थे। योगिराज पशुपति की भी उपासना होती थी। मातृदेवी की अनेक मूर्तियाँ मिली हैं। पशु, वृक्ष और सर्प भी पूजे जाते थे। जल का विशेष आदर था। मोहनजोदड़ों के विशाल स्नानागार का सम्भवतः धार्मिक उपयोग ही था और विशेष पर्वों पर यहाँ सार्वजनिक स्नान होता था। मृत्यूत्तर जीवन में लोगों का विश्वास था। दाहसंस्कार भी होता था। शव दफनाये भी जाते थे। कभी-कभी दाहसंस्कार के बाद अवशिष्ट को बर्तन में रखकर जमीन में गाड़ दिया जाता था।

सिन्धुघाटी सभ्यता का समय और इसके निर्माता :—यह कहना कठिन है कि इस सभ्यता के निर्माता कौन थे। अधिकतर आधुनिक विद्वानों की



सिन्धुघाटी की सभ्यता के कुछ कलात्मक उदाहरण

यही धारणा है कि यह अनार्य सभ्यता थी तथा इस सभ्यता के निर्माता द्रविड़ थे जिनका सुमेरिया से विशेष सम्बन्ध था। सिन्धुघाटी-सभ्यता का काल चौथी-तीसरी सहस्राब्दी ई० पू० और पन्द्रह सौ ई० पू० के बीच निर्धारित किया जा सकता है। भौगोलिक व्याप्ति की दृष्टि से इस सभ्यता का विस्तार उत्तर में रूपड़ और कालीबंगन से लेकर दक्षिण में बलूचिस्तान के सुत्काजनडोर तक था। पन्द्रहवीं शती ई० पू० के बाद इस सभ्यता के साथ एक तुल्य सभ्यता का बढ़ाव गुजरात, राजस्थान और महाराष्ट्र की ओर भी हुआ।

प्रश्न

१. पाषाणयुग का क्या तात्पर्य है ? भारत के पाषाणयुग का वर्णन करो।

२. सिन्धुघाटी की सभ्यता के विषय में तुम क्या जानते हो ?

अध्याय ४

आर्य और वैदिक संस्कृति

आर्यों का मूल :— आर्यों का मूलस्थान एक विवादास्पद प्रश्न है जिसका सही-सही हल अभी तक सम्भव नहीं हुआ है। बहुत से भारतीय और अभारतीय

वैदिक काल में भारतवर्ष

विद्वानों का यह मत है कि आर्य बाहर से आकर भारत में बसे। आरम्भ में यह धारणा थी कि आर्यों का आदि देश मध्य एशिया है। मैक्समूलर इस सिद्धान्त के विशेष प्रचारक थे। भाषा-साम्य के आधार पर अनेक योरोपीय विद्वानों ने आर्यों का मूल स्थान यूरोप माना है। यूरोप में कौन-सा स्थान आर्यों का आदि देश था इसमें भी मतैक्य नहीं है। कुछ हंगरी का मैदान, कुछ जर्मनी और कुछ दक्षिणी रूस मानते हैं। बालगंगाधर तिलक ने आर्यों का आदि देश आर्कटिक प्रदेश में माना है। उनकी धारणा का आधार ज्योतिष है। अविनाशचन्द्र दास और सम्पूर्णानन्द ने सप्तसिन्धु को आर्यो का उद्गम स्थान बताया है। भारतीय परम्परा के अनुसार आर्यावर्त्त ही आर्यों का आदि स्थान था।

आर्यों का विस्तार :—सप्तसिन्धु में बहुत दिनों बसने के बाद आर्यों का विस्तार गंगा-यमुना के मैदान की ओर क्रमशः हुआ। विस्तार का क्रम 'दशराज्ञयुद्ध' के बाद हुआ। यह दस राजाओं का युद्ध सप्तसिन्धु में विभिन्न आर्यों और अनार्य दलों के बीच हुआ था। इस युद्ध में भारतवंशी आर्य विजेता हुए थे। इन्हीं भारतवंशियों के नेतृत्व में आर्यों का बढ़ाव सरस्वती और दृषद्वती नदियों से प्रारम्भ होकर प्रथम चरण में सदानीरा (गंडक) नदी तक हुआ। इस विशाल क्षेत्र में सूर्य और चन्द्रवंशीय क्षत्रियों के कई प्रमुख राजनीतिक केन्द्र स्थापित हुए जिनमें हस्तिनापुर, कान्यकुब्ज, प्रतिष्ठान और अयोध्या प्रमुख थे। सदानीरा के पूर्व के प्रदेश में आठवीं सदी ई० पूर्व के लगभग सूत और मागधों का प्रदेश था, जो आर्येतर था। आर्यों के बढ़ाव का दूसरा चरण लगभग इसी समय प्रारम्भ हुआ और फिर मगध, अङ्ग और वङ्ग भी आर्यों के शासन और संस्कृति के क्षेत्र में आया। इस क्षेत्र में आर्यो के राजनीतिक और सांस्कृतिक विस्तार का केन्द्र गया था जहाँ सौद्युम्न वंशधरों का प्रभाव था।

आर्यों ने लगभग इसी समय अपने सांस्कृतिक विस्तार की दिशा दक्षिण की ओर निर्धारित की। आर्यों के इस विस्तार को यदुवंशियों का नेतृत्व मिला।

वैदिक साहित्य :—आरम्भिक आर्यों का हाल हमें वैदिक साहित्य से ज्ञात होता है। वैदिक साहित्य के अन्तर्गत चारों वेदों, उनके ब्राह्मण, उपनिषद् और

आरण्यक तथा सूत्र ग्रन्थ भी आते हैं। वेद चार हैं—ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद। ऋग्वेद वैदिक साहित्य का आदि ग्रन्थ है। सामवेद में ऋग्वेद के गेय मन्त्रों का संगीतात्मक संकलन है। यजुर्वेद ऋग्वेद के याज्ञिक मन्त्रों के आधार पर संकलित है। अथर्ववेद कालक्रम से अन्तिम संहिता है जो शैली की दृष्टि से ऋग्वेद के निकट है। आर्यों के राजनीतिक तथा सामाजिक जीवन की झाँकी देने के लिए ऋग्वेद और अथर्ववेद विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। वेदों के बाद ब्राह्मण ग्रन्थ आते हैं। इनमें यज्ञों का विस्तार के साथ वर्णन, वैदिक मन्त्रों का प्रयोग तथा तत्सम्बन्धी आख्यान मिलते हैं। प्रमुख ब्राह्मण ग्रन्थों के नाम ऐतरेय, शतपथ, गोपथ, ताण्ड्य, पञ्चविंश आदि हैं। ब्राह्मणों के अन्तिम भाग में आरण्यकों और उपनिषदों तथा सूत्र-ग्रन्थों के नाम आते हैं। परम्परा की दृष्टि से आरण्यक और उपनिषद् वेदान्त के अन्तर्गत हैं। सूत्र-साहित्य जिसके तीन प्रमुख विभाग—कल्प, गृह्य और धर्म हैं, वैदिक साहित्य पर ही आधारित और अन्तर्गत हैं। कल्पसूत्रों में वैदिक यज्ञों का वर्गीकरण, गृह्यसूत्र में संस्कारों, कर्मकाण्डों और धर्मसूत्र में सामाजिक व्यवस्था का वर्णन है। सूत्र-साहित्य के साथ ही वेदाङ्ग भी हैं जिनके अन्तर्गत (१) शिक्षा, (२) कल्प, (३) निरुक्त, (४) व्याकरण, (५) छन्द और (६) ज्योतिष की गणना होती है।

वैदिक संस्कृति—आर्यों का समाज कई इकाइयों में बँटा था। परिवार या कुल सबसे छोटी इकाई था जिसका प्रधान पिता होता था। कई परिवार के लोग मिलकर एक गोत्र बनाते थे। जन और विश गोत्र से बड़ी इकाइयाँ थीं। सम्पूर्ण विश राष्ट्र का रूप लेता था। राजनीतिक दृष्टि से आर्य कई वंशों में बँटे थे, जिनमें यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु, अनु और पुरु—ये पाँच प्रधान थे। इनके अतिरिक्त गंधार, पकठ, अलिनास, वृष्णि, केकय आदि प्रसिद्ध थे। प्रत्येक वंश का एक प्रधान होता था, जिसे राजा कहते थे। बहुत-से राज्यों को मिलाकर बड़े-बड़े राज्यों की भी स्थापना होती थी, विशेषकर परवर्ती वैदिकयुग में। ऐसे बड़े-बड़े राज्यों को साम्राज्य, सार्वभौम राज्य या चक्रवर्ती राज्य भी कहते थे। कुछ जातियों का राजनीतिक संगठन गणतन्त्रात्मक भी था।

राजा पूर्ववैदिककाल में सर्वथा निरंकुश नहीं था। कभी-कभी उसका चुनाव

और निष्कासन भी होता था। उसका अधिकार सभा और समिति जैसी संस्थाओं द्वारा नियन्त्रित था। सभा और समिति शासन रूपी रथ के दो चक्र थे, जिनके सहयोग से राजा अपने राजत्व का निर्वाह करता था। समिति बड़ी संस्था थी, जिसमें महत्त्वपूर्ण राजकीय प्रश्नों पर विचार होता था। सभा समिति से छोटी संस्था थी जो राजा को नित्य प्रति के मसलों में सहायता देती थी। राजा शान्ति के समय में सेना का संगठन, राज्य की सुव्यवस्था और सुरक्षा तथा न्याय सम्बन्धी कार्य करता था। युद्धकाल में राजा सैन्य-संचालन भी करता था। राज्य के प्रमुख कर्मचारी, पुरोहित, सेनानी और ग्रामीण थे। राजमहिषी को भी राजकाल में भाग लेने का अवसर मिलता था।

परवर्ती वैदिक युग में जैसे-जैसे राज्यों का भौगोलिक क्षेत्र बढ़ता गया, राजाओं के अधिकार भी बढ़ते गये। राजा निरंकुश हो गया। राजकर्मचारियों की भी वृद्धि हो गयी। सभा और समितियों का अधिकार घट गया।

आर्यों का समाज मोटे तौर पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों में विभक्त था, यद्यपि प्रारम्भ में वर्ण-व्यवस्था काफी शिथिल थी। परवर्ती वैदिक युग में समाज को इन चार वर्णों ने बहुत जकड़ लिया, यद्यपि इन वर्णों के अतिरिक्त व्यावसायिक आधार पर असंख्य जातियाँ भी बन गयी थी। आरम्भ में वर्ण-व्यवस्था का आधार जीविका थी किन्तु कालान्तर में जन्म हो गया। उत्तर-वैदिक काल में आश्रमधर्म का भी बड़ा प्रभाव बढ़ गया था। ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास ये चार आश्रम थे। परिवार का आधार विवाह था। विवाह के लिए पूर्व-वैदिक काल में गोत्रादि का प्रतिबन्ध विशेष रूप से नहीं था यद्यपि पिण्ड का बन्धन था। विवाह वयस्क होने पर होता था और वर-कन्या परस्पर चुनाव भी कर सकते थे। कन्या को विवाह के समय पिता की ओर से उपहार मिलता था। समाज स्त्रियों का सम्मान करता था, वे शिक्षित होती थीं और सभा समितियों में भी भाग लेती थी। पर्दा प्रथा नहीं थी।

आर्यों की रहन-सहन और वेषभूषा सादी थी। अधोवस्त्र और उत्तरीय मुख्य वस्त्र थे, स्त्रियाँ कंचुकी भी धारण करती थीं। वस्त्र के लिए कपास के सूत का प्रयोग अधिक होता था यद्यपि ऊन और चर्म के भी वस्त्र पहने जाते थे। स्त्री

और पुरुष दोनों ही आभूषण पहनते थे। कर्णशोभन, निष्कग्रीव, खादि, रुक्म, मणिग्रीव आदि लोकप्रिय आभूषण थे।

आर्यों का भोजन सादा था। वे खाद्यान्न के रूप में गेहूँ, जौ, तिल, मसूर और चावल का उपयोग करते थे। शाक और फल तथा मांस का भी व्यवहार होता था। सुरा, आसव और सोमरस भी उनका प्रिय पेय था।

घुड़सवारी, मृगया, रथ-दौड़, जुआ उनका प्रिय मनोविनोद था। मेले और उत्सवों के आयोजनों की भी प्रथा थी। सङ्गीत से भी उन्हें प्रेम था।

वैदिक आर्य एक ईश्वर में विश्वास करते थे यद्यपि उनके देवी-देवताओं की संख्या कम न थी। उनके देववाद को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है—पृथ्वीस्थानीय, जिनमें अग्नि तथा सोम प्रधान थे, अन्तरिक्षस्थानीय जिनमें इन्द्र और रुद्र प्रधान थे तथा द्युस्थानीय जिनमें वरुण और उषा महत्वपूर्ण थे। वैदिक आर्य मन्त्रों और यज्ञों द्वारा देवाराधन करते थे। वे मूर्तिपूजक न थे। आर्येतर जातियों में लिङ्गपूजा होती थी। आरम्भ में आर्यों के यज्ञ साधारण होते थे, उनकी विधि भी सरल होती थी। किन्तु परवर्ती वैदिक काल में यज्ञों का रूप रूढ़िग्रस्त, खर्चीला और आडम्बरपूर्ण हो गया। एक-एक यज्ञ वर्षों तक चलनेवाला होता था जिसके लिए बहुत से पुरोहितों, कर्मकाण्डियों और धन की आवश्यकता होती थी। पशु-बलि भी यज्ञ का आवश्यक हो चली थी। अश्वमेध, राजसूय, वाजपेय यज्ञों का राजनीतिक महत्त्व भी और इन बड़े-बड़े यज्ञों के आगे पञ्च महायज्ञ जैसे छोटे-छोटे यज्ञों का महत्त्व घट-सा गया था।

कर्मकाण्ड से बोझिल इन यज्ञों के प्रति कुछ मनीषियों की विरक्ति भी हो चली थी। अतएव बहिरंग से विमुख होकर अतरंग की ओर अन्तश्चेतना उन्मुख हुई। आत्मचिन्तन एवं मनन की प्रक्रिया को विशेष बल मिला। आरण्यक और उपनिषदों का दर्शन इसी प्रकार के आत्मचिन्तन का फल है।

आर्यों की प्रगति का आधार उनका सुदृढ़ आर्थिक जीवन था। पशुपालन

का महत्त्व था और गोधन का संग्रह प्रमुख रूप से किया जाता था। बैल, घोड़े, गधे बोझा ढोने के काम आते थे। खेती का अच्छा विकास था। सिंचाई का भी सुचारु प्रबन्ध था। कृषि-कर्म के लिए हल आदि का प्रयोग होता था। बढ़ई, लुहार, सोनार, चमार, तन्तुवाय आदि प्रमुख व्यवसायी थे। व्यापार दूर-दूर तक होता था। गेहूँ, जौ, उड़द, मसूर, तिल, धान आदि की खेती होती थी। विनिमय के लिए स्वर्ण, निष्क और शतमान नामक सिक्कों का व्यवहार होता था।

प्रश्न

१. आर्य कौन थे। वैदिक सभ्यता का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करो।

२. वैदिक साहित्य पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखो।



अध्याय ५

धार्मिक सुधारों का युग तथा बुद्धकालीन संस्कृति

प्रतिवैदिक युग की राजनीति और संस्कृति :—उत्तर-वैदिक काल में ही राज्यों को सुनिश्चित भौगोलिक आधार मिल चुका था और राज्यों का स्वरूप जातीय न होकर जनपदीय हो गया था। अनेक राजवंश एक-दूसरे से टकरा कर अपेक्षाकृत बड़ी-बड़ी भौगोलिक सीमाओं में सिमट रहे थे। फलतः आठवीं शती ई० पू० के बाद कुछ महत्त्वपूर्ण जनपदीय राज्य खड़े हुए जिनमें 'षोडश जनपदों' का विशेष महत्त्व है। इन सोलहों जनपदों के नाम ये हैं :—

(१) अङ्ग (आधुनिक भागलपुर के आसपास) (२) मगध (३) काशी (४) कोसल (५) वज्जि (पश्चिमोत्तर बिहार) (६) मल्ल (देवरिया-गोरखपुर (७) वत्स (प्रयाग के पास) (८) चेदि (बुन्देलखण्ड) (९) कुरु (दिल्ली के आसपास) (१०) पंचाल (गंगा-यमुना का द्वाब) (११) मत्स्य (जयपुर, भरतपुर, अलवर का क्षेत्र) (१२) शूरसेन (मथुरा के आस-पास) (१३) अवन्ति (मालवा का क्षेत्र) (१४) गन्धार (अफगानिस्तान और पश्चिमोत्तर पाकिस्तान) (१५) कम्बोज (कश्मीर के पश्चिमोत्तर में) और (१६) अश्मक (गोदावरी का निचला भाग)।

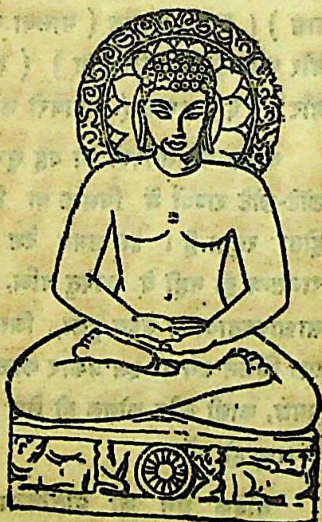
षोडश महाजनपदों की यह सूची स्पष्ट करती है कि उस समय भारत अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था जिसमें प्रभुता के लिए परस्पर निरन्तर संघर्ष होता रहता है। इस समय देश में केवल अङ्ग, मगध, काशी, कोशल, जैसे राजतन्त्र ही नहीं थे अपितु वज्जि, मल्ल जैसे गणतन्त्र भी थे। इसी संघर्ष से साम्राज्यवाद का उदय हुआ, जिसके परिणाम से ये जनपद टूट-टूटकर एक में एक मिलने लगे। इस प्रकार कालान्तर में षोडश महाजनपदों की जगह अंग, मगध, काशी और कोशल ही शेष रहे, शेष सभी जनपद इन्हीं चार महाजनपदों के अङ्ग हो गये।

वैदिक धर्म की प्रतिक्रिया :—उत्तर-वैदिककाल का धर्म बहुत कुछ जटिल, बोझिल और खर्चीला हो गया था। वर्षों चलनेवाले यज्ञ सब के मान के न थे। अश्वमेध, राजसूय आदि यज्ञ केवल एकाध ही कर सकते थे। यज्ञ में

होनेवाली पशुवलि से भी यज्ञों के प्रति लोगों की वितृष्णा हो चली थी। अत्यधिक वेदवाद और कर्मकाण्ड से साधारण मनुष्य की धार्मिक उत्कण्ठा दब-सी गयी थी और लोग नयी राह की खोज में थे। उपनिषदों की भावधारा भी बुद्धिप्रधान थी जो सबके लिए सहज न थी। चिन्तन और मनन से आत्मा और ब्रह्म की खोज तथा धार्मिक जिज्ञासा की शान्ति केवल थोड़े-से बुद्धिवादियों के लिए ही साध्य थी। ऐसी धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों में महावीर और बुद्ध दो महान् सुधारक प्रकट हुए जिनके सुधारवादी आन्दोलनों का लोकप्रिय प्रभाव बड़ा ही व्यापक रहा।

(2) **महावीर और उनके उपदेश** :—जैनियों की परम्परा के अनुसार महावीर चौबीसवें तीर्थंकर थे, इनके पूर्व तेइस अन्य तीर्थंकर हो चुके थे। इन तीर्थंकरों में ऋषभदेव प्रथम थे और जैनियों की धारणा में जैनधर्म के प्रवर्तक थे। महावीर के पूर्व तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ भी बड़े प्रसिद्ध थे और इन्हीं के अनुयायिओं ने श्वेताम्बर सम्प्रदाय का संघटन किया था।

महावीर का जन्म वैशाली के समीप कुण्डग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम सिद्धार्थ और माता का नाम त्रिशला था। त्रिशला लिच्छवि कन्या थीं और चेटक की बहन थीं, जिसकी एक और बहन मगध के राजा बिम्बिसार से व्याही थी। तीस वर्ष की अवस्था में महावीर ने गृहत्याग किया और संन्यासी हो गये तथा बारह वर्षों की घोर तपस्या से उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ और वे 'निर्ग्रन्थ' (बन्धनों से मुक्त) हुए। ज्ञान प्राप्त होने के बाद वे लगातार घूम-घूमकर धर्मोपदेश करते रहे। बहत्तर वर्ष की अवस्था में ५२७ ई० पू० के लगभग उनको निर्वाण प्राप्त हुआ।



भगवान् महावीर

महावीर के पूर्ववर्ती तीर्थंङ्कर पार्श्वनाथ ने अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह चार व्रतों को जैनियों के लिए आवश्यक बताया था। महावीर ने इन चार व्रतों को स्वीकार करते हुए पाँचवें व्रत ब्रह्मचर्य पर भी जोर दिया। कर्म का प्रवाह रोकने के लिए इन पाँचों महाव्रतों का पालन आवश्यक है। वे तपस्या को बहुत महत्त्व देते थे। यह तपस्या दो प्रकार से की जा सकती है—बाह्य तपस्या और आभ्यन्तर तपस्या। बाह्य तपस्या का अर्थ है अनशन, भिक्षाटन, कायक्लेश आदि। आभ्यन्तर तपस्या के अन्तर्गत प्रायश्चित्त, विनय, सेवा, स्वाध्याय, ध्यान आदि हैं। आचार और अहिंसा पर महावीर का विशेष बल था।

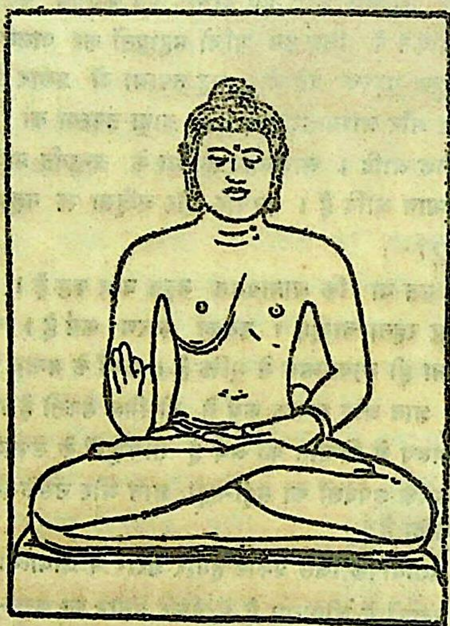
महावीर का मत था कि आवागमन बहुत बड़ा कष्ट है। इससे मुक्ति के लिए सबको सचेष्ट रहना चाहिए। इसका कारण कर्म है। अतएव कर्मों के बन्धन से मुक्त होना ही आवागमन से मुक्ति है। कर्मों के बन्धन से मुक्ति सम्यक् विश्वास, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् कर्म से ही मिल सकती है। ये जैनियों के 'त्रिरत्न' हैं। सूत्ररूप में विश्वास का अर्थ है तीर्थंङ्करों के उपदेशों पर विश्वास, ज्ञान का अर्थ है उनके उपदेशों का सही-सही ज्ञान और उसके अनुसार आचरण कर्म के अन्तर्गत आता है।

महावीर ने बताया कि जिस प्रकार हमारे शरीर में जीवात्मा है उसी प्रकार संसार के सभी पदार्थों में जीवात्मा हैं। ईश्वर संसार का कर्त्ता-धर्त्ता नहीं हैं। उन्होंने वेद की प्रामाणिकता और यज्ञों की उपयोगिता का भी विरोध किया। जाति-पाँति के बन्धनों को भी वे नहीं मानते थे।

बुद्ध और उनके उपदेश :—भगवान् बुद्ध का जन्म ५६३ ई० पू० के लगभग लुम्बिनी ग्राम में हुआ था। ये कपिलवस्तु के शाक्यवंशीय राजा शुद्धोदन के पुत्र थे। इनकी माता का नाम माया था। जन्म के थोड़े ही दिनों बाद उनकी माता का देहान्त हो गया। उनका लालन-पालन उनकी विमाता और मौसी ने किया।

गौतम बुद्ध बचपन से ही शान्त और चिन्तनशील प्रवृत्ति के थे। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा राजोचित विधि से हुई थी और वे राजोचित गुणों के ग्रहण में भी प्रतिभावान् सिद्ध हुए थे। उनके गुणों पर रीझ कर ही रामग्राम

को कोलियगण की सुन्दरी राजकुमारी यशोधरा ने उनका वरण किया था। सोलह वर्ष की अवस्था में विवाहित हुए। फिर भी वे संसार के माया-मोह



भगवान बुद्ध

में न फँस सके और जरा-मरण और व्याधि की आशंका से दुःखी रहने लगे। जिस दिन उन्हें पुत्र हुआ और लोग आनन्द-मंगल में व्यस्त थे, उसी समय बुद्ध ने ममता पर विजय प्राप्त करके गृह त्याग दिया। इस घटना को महाभिनिष्क्रमण' कहते हैं।

घर त्यागने के बाद बुद्ध ज्ञान की खोज में इधर-उधर घूमते रहे किन्तु कहीं भी उन्हें न तो शान्ति ही मिली और न ज्ञान। अतएव उन्होंने निरञ्जना नदी के तट पर (गया के पास) कठिन तपस्या की। तपस्या से उनका शरीर सूख गया, फिर भी वे सच्चे ज्ञान से वंचित ही रहे। एक दिन जब वे विशेष खिन्न और उदास थे, एक पीपल के पेड़ के नीचे बैठ गये और भूमि को स्पर्श करके प्रतिज्ञा की कि जब तक उन्हें सच्चा ज्ञान प्राप्त न होगा, वे न उठेंगे।

संयोग से जब वे इस प्रकार ध्यान मग्न हुए तो उन्हें ज्ञान का प्रकाश मिला। इस घटना को 'सम्बोधि' कहते हैं।

ज्ञानी होने पर बुद्ध ने निश्चय किया कि अपने ज्ञान से सारे संसार के लिए निर्वाण और मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करेंगे। अतएव वे गया से चलकर सारनाथ आये। यहीं पर उन्होंने अपने पाँच शिष्यों को उपदिष्ट किया। यह उनका सर्वप्रथम उपदेश था अतएव इस घटना को 'धर्मचक्रप्रवर्त्तन' कहते हैं।

इस घटना के बाद बुद्ध का धर्म-प्रचार बड़ी तेजी से होने लगा और उनके संघ की लोकप्रियता बढ़ने लगी। शेष जीवन वे घूम-घूमकर राजा से रंक तक को अपने उपदेशों का पीयूष पिलाते रहे। अस्सी वर्ष की अवस्था में ४८३ ई० पू० में कुशीनगर में उन्हें निर्वाण प्राप्त हुआ।

बुद्ध के उपदेश सरल और आचारपरक थे। उन्होंने जगत् के सम्बन्ध में चार सत्य निर्धारित किये जो 'चत्वारि आर्यसत्यानि' के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये चार आर्यसत्य दुःख, समुदय, निरोध और निरोधमार्ग हैं। उन्होंने बताया कि संसार में दुःख ही दुःख है और सांसारिक दुःखों के कुछ कारण हैं। इन कारणों को दूर भी किया जा सकता है। दुःख के निरोध का उपाय भी उन्होंने बताया। दुःख का निरोध ही निर्वाण है। मध्यम मार्ग (मज्झिमा पटिपदा) ही श्रेष्ठ मार्ग है और अतिवाद ही दुःख का कारण है। उनके बताये 'आठ मार्ग' और 'दस शील' का अनुगमन करने से ही दुःख का उन्मूलन सम्भव है। ये आठ मार्ग (अष्टांग मार्ग) निम्नलिखित हैं :—

(१) सम्यक् दृष्टि (२) सम्यक् संकल्प
(३) सम्यक् वाक् (४) सम्यक् कर्मान्त
(५) सम्यक् आजीव (६) सम्यक् व्यायाम
(७) सम्यक् स्मृति और (८) सम्यक् समाधि

दस शील ये हैं—

(१) अहिंसा (२) सत्य
(३) अस्तेय (४) अपरिग्रह
(५) ब्रह्मचर्य (६) नृत्यगान का त्याग
(७) सुगन्ध माला का त्याग (८) असमय भोजन का त्याग
(९) कोमल शय्या का त्याग (१०) कामिनी-काञ्चन का त्याग

बुद्ध ने वेदों की प्रामाणिकता को नहीं माना। ईश्वर की सत्ता के विषय में वे मौन थे। वे अनात्मवादी भी थे किन्तु पुनर्जन्म और कर्म के सिद्धान्त को को मानते थे। उन्होंने दार्शनिक प्रश्नों को गौण महत्त्व दिया। उनका विशेष आग्रह नैतिक और मानवतावादी आदर्शों के प्रति था। व्यावहारिम होने के कारण उनके उपदेश विशेष लोकप्रिय हुए। वे कथा, कहानियों तथा उदाहरण की शैली में जनता की भाषा और बोली (पालि) में उपदेश देते थे। इससे उनके उपदेशों की लोकप्रियता बहुत बढ़ी। जाति-पाँति का बन्धन भी वे अस्वीकार करते थे और उनके 'धर्म' और 'संघ' का मार्ग मानवमात्र के लिए खुला था। स्त्रियाँ भी संघ की सदस्यता ले सकती थीं। उनका आकर्षक शरीर और व्यक्तित्व तथा निष्कलंक चरित्र भी उनकी लोकप्रियता की वृद्धि में सहायक था।

बौद्धधर्म जैनधर्म की अपेक्षा कहीं अधिक लोकप्रिय हुआ। इसका प्रधान कारण यह था कि सुधारवादी होते हुए भी जैन धर्म बौद्ध धर्म की अपेक्षा व्यावहारिक न था। जैनियों ने 'अतिवाद' का परित्याग नहीं किया था। जैनियों के 'अति अहिंसावाद' और 'कायोत्सर्ग' जैसी कठिन तपस्या का व्रत सबके लिए ग्राह्य नहीं था। सामाजिक रूढ़ियों की आलोचना में बौद्धमत जैनधर्म की अपेक्षा क्रान्तिकारी था, अतएव इसका प्रभाव सामाजिक जीवन पर विशेष रूप से पड़ा।

वैदिक धर्म के प्रतिवाद की ओर यद्यपि दोनों का लक्ष्य था; किन्तु दोनों ही धर्मों का उद्देश्य आरम्भ में सुधार था, किसी नये सम्प्रदाय या धर्म का संगठन नहीं। फलतः महावीर और बुद्ध पुनर्जन्म, कर्म और मोक्ष के विषय में कोई क्रान्तिकारी कदम न उठा सके। उपनिषदों के 'यति-धर्म' का बौद्धों ने 'भिक्षु धर्म' के रूप में अपनाया और इसे विशेष रूप से संगठित किया।

बुद्धकालीन समाज और संस्कृति :—बौद्ध ग्रन्थों से ई० पू० छठी शती की सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति का अच्छा परिज्ञान होता है। राजनीतिक दृष्टि से पश्चिमोत्तर भारत की अपेक्षा मध्य देश बड़ा महत्त्वपूर्ण था तथा षोडश महाजनपद परस्पर टकराकर केवल चार जनपदों में शेष रह गये थे। ये चार जनपद मगध, कोशल, वत्स और अवन्ती थे। इन प्रमुख

राजतन्त्रों के अतिरिक्त शाक्य, कोलिय, मौर्य्य, लिच्छवि आदि गणतंत्र भी महत्ता को प्राप्त थे। इनका गणतान्त्रिक संविधान बड़ा ही प्रगतिशील था और बहुत-कुछ आजकल की गणतान्त्रिक प्रणाली से मिलता-जुलता था।

जैन और बुद्ध सुधारवादी आन्दोलनों से बुद्धकालीन समाज की रूढ़िवादिता पर गहरा आघात लगा था। जाति-पाँति के बन्धन ढीले पड़ गये थे। यद्यपि बौद्धेतर समाज में अभी इसका व्यापक प्रभाव था। स्त्रियों का समाज में स्थान ऊँचा था। पालि साहित्य में इसके प्रमाण मिलते हैं कि इस समय स्त्रियों को पुनर्विवाह का अधिकार था। स्त्रियाँ अपने वर के चुनाव में भी स्वतन्त्र थीं। पर्दा प्रथा न थी। स्त्रियों को 'प्रव्रज्या' लेकर भिक्षुणी बनने का भी अधिकार था। आंशिक रूप में बहुविवाह, सगोत्र विवाह और गणिका वृत्ति का भी प्रचलन था।

आर्थिक जीवन के केन्द्र ग्राम और नगर थे जहाँ कृषक और व्यापारी अनेक 'श्रेणियों' और 'निकायों' में विभक्त होकर उत्पादन तथा विनिमय करते थे। ग्राम का प्रमुख 'ग्रामभोजक' कहलाता था जो एक ग्रामसभा की सलाह से ग्राम की सुरक्षा और समृद्धि का प्रबन्ध करता था। खेती आय का प्रमुख साधन था। कृषि उत्पादन का $\frac{1}{6}$ कर के रूप में दिया जाता था। बेगार की प्रथा न थी। सिंचाई का प्रबन्ध अच्छा था। किसानों को अपने खेतों पर कृषिकर्म के लिए तो पूर्ण अधिकार था किन्तु वे उसे बिना ग्रामसभा की अनुमति के बेच नहीं सकते थे।

चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, काशी, मथुरा, कौशाम्बी, अयोध्या, मिथिला, उज्जैन, वैशाली, तक्षशिला आदि प्रसिद्ध नगर थे जो व्यापार और उद्योग के भी केन्द्र थे। खेती और पशुपालन के अतिरिक्त उद्योग धन्धे भी बहुत प्रचलित थे। उद्योग व्यवसायों के 'अठारह शिल्प' बहु प्रचलित थे। इनमें कुछ ऐसे थे, जैसे चर्मकार या इसी तरह का काम जो हीन समझा जाता था, और ऐसे शिल्पों को 'हीन शिल्प' के नाम से जाना जाता था। बढ़ई, सोनार, लोहार, रंगरेज, हाथी-दाँत का काम करनेवाले, तन्तुवाय आदि प्रचलित उद्योग और पेशेवर थे।

व्यापार का क्षेत्र देश ही में सीमित न था, बल्कि इस देश का व्यापार भरुकच्छ और सुप्पारक से होकर बावेरू (बैबिलोनिया) आदि देशों से भी होता था।

देश के व्यापार के महापथ सुरक्षित थे। तक्षशिला से एक महापथ जिसे उत्तरापथ कहते थे, चलकर साकल, मथुरा, कान्यकुब्ज, कौशाम्बी, राजगृह होता हुआ चम्पा और ताम्रलिप्ति तक जाता था। इस पथ का सम्बन्ध कई उपपथों के द्वारा अन्य व्यापारिक नगरों से भी था। उत्तरापथ का सम्बन्ध श्रावस्ती और साकेत से भी था। एक पथ श्रावस्ती को राजगृह से वैशाली होकर जोड़ता था। श्रावस्ती से एक महापथ चलकर कौशाम्बी और उज्जैन होकर पैठन (प्रतिष्ठान) और भरुकच्छ को जोड़ता था। इन रास्तों पर सुसंगठित कारवाँ (सार्थवाह) चला करते थे। व्यापारिक विनिमय के लिए कार्षापण, निष्क, शतमान, सुवर्ण आदि सिक्के चलते थे। उद्योग व्यापार में पूँजी की व्यवस्था के लिए श्रेष्ठी और नगरश्रेष्ठी भी थे।

प्रश्न

१. महावीर के चरित्र और कार्यों पर प्रकाश डालो।
२. भगवान् बुद्ध कौन थे? उनके क्या उपदेश थे।
३. बौद्धकालीन संस्कृति पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखो।



अध्याय ६

मगध साम्राज्य का उदय और विदेशी आक्रमण

मगध साम्राज्य :—भगवान् बुद्ध के समय में 'षोडश महाजनपद' मगध, कोशल, वत्स और अवन्ति इन चार महाजनपदों में परिवर्तित हो गये थे। बढ़ती हुई साम्राज्यवादी प्रवृत्ति के कारण इन चार जनपदों में बड़ी प्रतिद्वन्द्विता और कशमकश थी। मगध की ताकत दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। सातवीं शती ई० पू० में ही मगध एक शक्तिशाली साम्राज्य हो गया था। इसकी तुलना में कोशल, वत्स और अवन्ति की शक्तियाँ दिन-प्रतिदिन क्षीण होती जा रही थीं। पाँचवी और चौथी शती ई० पू० में मगध उत्तरी भारत का सबसे शक्तिशाली साम्राज्य हो गया था।

मगध राज्य की नींव वृहद्रथ ने डाली थी। मगध की सत्ता का आरम्भिक विकास हर्यक वंश के अन्तर्गत हुआ। बिम्बसार मगध का सर्वप्रथम प्रतापी राजा था जिसके शासन-काल में अंग मगध के अधीन हुआ। यह पन्द्रह वर्ष की अवस्था में (५४३ ई. पू०) मगध का राजा हुआ था। इसने कोशल और लिच्छवि, विदेह तथा भद्र देश के राजघरानों से वैवाहिक सम्बन्ध जोड़कर मगध राज्य की सत्ता और सम्मान में अभिवृद्धि की। इसका मैत्री सम्बन्ध वत्स, गंधार और कम्बोज देश से भी था। इसने विजय आदि से अपने समय में मगध साम्राज्य को द्विगुणित कर दिया। यह महावीर और बुद्ध का समकालीन था और जैन तथा बौद्ध दोनों ही धर्मों के प्रति उदार दृष्टिकोण रखता था। जीवन के अन्तिम समय में इसे बड़ा दुःखी होना पड़ा। इसके पुत्र अजातशत्रु ने उसे बन्दी बना लिया था और कारागार ही में इसकी मृत्यु हुई।

बिम्बिसार का पुत्र अजातशत्रु भी बड़ा प्रतापी था। इसने अपने शासनकाल में बज्जिसंघ के लिच्छवियों को अपने अधीन किया तथा काशी को कोशल से छीन कर मगध राज्य में मिलाया। पाटलिपुत्र को मगध साम्राज्य का केन्द्र बनाया। आरम्भ में यह बुद्ध और बौद्धधर्म का विरोध तथा जैनियों का समर्थक था। किन्तु जीवन के अन्तिम दिनों में वह बौद्ध धर्म से प्रभावित हुआ तथा बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद बौद्ध धर्म की पहली सभा संगीति की। इसकी भी हत्या इसके पुत्र उदायी ने की।

उदायी भी प्रतापी राजा था। इसने पाटलिपुत्र को बसाया और इसे मगध की राजधानी बनाया। उदायी के उत्तराधिकारी अनिरुद्ध, मुण्ड और नागदासक थे। नागदासक हृर्यक वंश का अन्तिम राजा था और इसके शासन-काल में प्रजा में बड़ी अशान्ति और असन्तोष था। इसके बाद मगध का साम्राज्य शिशुनाग वंश के अधीन हुआ। शिशुनाग काशी का था और नागदासक को राज्यच्युत करके इसने मगध को प्राप्त किया था।

शिशुनाग का शासन-काल मगध के लिए बड़ा यशस्वी था। इसने अपने पराक्रम से कोशल, वत्स और अवन्ती को अधीन किया। इस प्रकार मगध के सभी शत्रु और प्रतिद्वन्द्वी इसके हाथों परासूत हुए। इसकी उपराजधानियाँ काशी और वैशाली थीं। अठारह वर्ष शासन करने के बाद इसकी मृत्यु हुई। इसका उत्तराधिकारी अशोक (कालाशोक) हुआ जिसके समय की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना द्वितीय बौद्धसभा (संगीत) है। यह सभा ४८३ ई० पू० में हुई थी जिससे परिणाम से बौद्ध संघ थेरवाद और महासांघिक दो सम्प्रदायों में विभक्त हो गया था।

कालाशोक के दस पुत्र थे जिनमें नन्दवर्धन ही प्रतापी था। इसी की शूद्र स्त्री से महापद्मनन्द उत्पन्न हुआ जिसने चौथी शती ई० पू० के मध्य में शिशुनाग वंश का अन्त करके नया वंश, नन्दवंश के नाम से चलाया।

नन्दवंश का संस्थापक महापद्मनन्द बड़ा ही प्रतापी था। साथ ही बड़ा लोभी, क्रूर और अप्रिय भी था। इसने इक्ष्वाकुवंशियों, पाञ्चालों, कौरवों, हैहयों, कालकों, एकलिङ्गों, शूरसेनों और मैथिलों को अपने अधीन किया था। इसके पास 'महापद्मसंख्यक' एक विशाल सेना थी तथा उसके कोष में अपार धन था। इसके उत्तराधिकारियों में घननन्द बड़ा प्रसिद्ध था। इसके पास भी बहुत बड़ा साम्राज्य और बहुत बड़ी सेना थी। कहा जाता है कि इसकी सेना में दो लाख पैदल, बीस हजार घुड़सवार, दो हजार रथ और तीन हजार हाथी थे।

नन्दों का शासन जनप्रिय नहीं था, फलतः सैन्य और कोष बल के रहते हुये भी इस राजवंश का पतन हुआ। चन्द्रगुप्त मौर्य ने ३२१ ई० पू० में

धननन्द को मार कर मगध साम्राज्य पर अधिकार कर मौर्य वंश की स्थापना की।

विदेशी आक्रमण

हर्यंक, शिशुनाग और नन्दों के शासनकाल में आन्तरिक असन्तोष गृहकलह और राजवंशों के उलटफेर के बावजूद मगध-साम्राज्य के अन्तर्गत मध्यदेश सुरक्षित था। किन्तु पश्चिमोत्तर भारत की स्थिति अच्छी नहीं थी। पश्चिमोत्तर भारत मध्यदेश की साम्राज्यवादी गतिविधि से अछूता रह गया था और छोटे छोटे राज्यों में विभक्त था। छठी शती में फारस में पारसीक साम्राज्य का संगठन हो चुका था। ५५० ई० पू० में कुरुष ने मकरान के रास्ते भारत को आक्रान्त किया किन्तु असफल होकर भागा। उसने पुनः एक बार आक्रमण किया और काबुल के कुछ अंश को जीता। ५२१ ई० पू० में दारा द्वितीय ने भारत पर आक्रमण किया और गंधार, कम्बोज, पश्चिमी पंजाब और सिन्ध को जीता। ये उसके करद राज्य हुए।

सिकन्दर का आक्रमण :—ईरानी आक्रमण का प्रभाव देश पर क्षणिक और सीमित रहा। किन्तु इन आक्रमणों से भारत पश्चिम के विदेशी शासकों की नजर में आ चुका था। फलतः ३२७ ई० पू० के लगभग फारसी साम्राज्य का अन्त करके अगले वर्ष सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया। सिकन्दर मकदुनियाँ के राजा फिलिप का बेटा था और बहुत बड़ा वीर तथा साहसी था।

जिन दिनों सिकन्दर के हाथों विशाल फारसी साम्राज्य विनष्ट हो रहा था, पश्चिमोत्तर भारत के अनेक राज्य आपस में लड़-झगड़ रहे थे। पश्चिमोत्तर भारत अनेक छोटे-छोटे गणराज्य और राजतन्त्रों में विभक्त था। गणराज्यों की राजतन्त्रों से स्वाभाविक प्रतिद्वन्द्विता थी। राजतन्त्रों में भी परस्पर संघर्ष था। इस प्रकार की राजनीतिक परिस्थिति में देश की पश्चिमोत्तर सीमा बड़ी अरक्षित थी। फलतः सिकन्दर को देश में घुस-पैठ करने में बड़ी सरलता मिली। सिन्धु के पश्चिम के कई भारतीय राज्यों ने, जिनमें अश्वक, अश्वकायन और हस्तिनायन प्रमुख थे, सिकन्दर का प्रतिरोध किया था। किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली और सिकन्दर ३२६ ई० पू० के लगभग सिन्धु नदी तक पहुँच गया। तक्षशिला का राजा आम्भि अपने साम्राज्यवादी प्रतिद्वन्द्वी पुरु की प्रतिस्पर्धा में सिकन्दर से मिल गया और सिकन्दर को पुरु की राज्यसीमा झेलम

तक बढ़ आने दिया। झेलम के तट पर पुरु ने सिकन्दर का सामना वीरता से किया। घोर युद्ध के बाद विपरीत प्राकृतिक परिस्थियों तथा त्रुटिपूर्ण सैन्य व्यवस्था के कारण पुरु को सिकन्दर से सन्धि कर लेनी पड़ी। अब झेलम युद्ध के बाद पुरु सिकन्दर का उसी प्रकार साथी हो गया जैसा अम्भि। दोनों ने मिलकर सिकन्दर को झेलम के पूर्व बढ़ने के लिए उकसाया। फलत: सिकन्दर के आक्रमण के शिकार पुरु का स्वयं भतीजा जो मद्र का शासक था और कठ हुए इन्हें रौंदकर सिकन्दर व्यास के पश्चिमी तट तक पहुँच गया। व्यास के पूर्व में यौधेयों का गणतन्त्र और घननन्द का विशाल शक्तिशाली मगध साम्राज्य था। सिकन्दर के सैनिकों को व्यास पार करने की हिम्मत न पड़ी। सिकन्दर को विवश होकर सेना सहित लौटना पड़ा। लौटती बार वह सिन्धु नदी का तट पकड़े-पकड़े सिन्धु नदी के मुहाने तक गया। इस मार्ग पर भी उसका संघर्ष अनेक राजतन्त्रों और गणराज्यों से हुआ। मालव और क्षुद्रक गणराज्यों ने सिकन्दर का घोर विरोध किया। युद्ध में सिकन्दर किसी प्रकार अपने प्राणों की रक्षा कर सका। इस प्रकार किसी तरह वह ३२५ ई० पू० में सिन्धु के मुहाने पर स्थित पट्टन नगर तक पहुँचा जहाँ से उसकी सेना जल और थल मार्ग से होकर बैबीलोनियाँ पहुँची। वहीं उसकी ३२३ ई० पू० में मृत्यु हो गई।

सिकन्दर के मरते ही उसका भारतीय विजित प्रदेश यूनानी कब्जे के बाहर हो गया। सिकन्दर द्वारा नियुक्त क्षत्रप मार भगाये गये तथा पश्चिमोत्तर भारत भी धीरे-धीरे चन्द्रगुप्त मौर्य और चाणक्य के प्रयत्न से मगध साम्राज्य के अन्तर्गत हो गया।

सिकन्दर के भारत आक्रमण का कोई प्रत्यक्ष प्रभाव देश पर नहीं पड़ा। वह कुछ ही समय भारत में रहा और जब तक रहा, युद्ध ही करता रहा। इस आक्रमण का एक अप्रत्यक्ष राजनीतिक प्रभाव यह अवश्य हुआ कि पश्चिमोत्तर के छोटे-छोटे राज्य की शक्तियाँ क्षीण हो गयीं और चन्द्रगुप्त मौर्य को इन्हें अपने अधीन करने में सफलता मिली।

प्रश्न

१. सिकन्दर के भारत आक्रमण का विवरण प्रस्तुत करो। उसके आक्रमण का भारत पर क्या प्रभाव पड़ा।

मौर्य-काल

३२१ ई० पू० के लगभग नन्द-शासन का उन्मूलन चन्द्रगुप्त और चाणक्य द्वारा सम्भव हुआ था। इन दोनों का मिलन और सहयोग मौर्य इतिहास के लिए बड़ा महत्त्व रखता है। चन्द्रगुप्त शक्ति का प्रतीक था और चाणक्य बुद्धि का। शक्ति और बुद्धि ने मिलकर मौर्य साम्राज्य की न केवल स्थापना की अपितु उसे स्थायित्व भी दिया।

चाणक्य तक्षशिला का स्नातक था। मगध राजा नन्द से इसकी अनबन हो गयी थी अतएव यह व्यक्तिगत तथा राजनीतिक कारणों से नन्दवंश का उन्मूलन चाहता था। यह बड़ा विद्वान् और तेजस्वी ब्राह्मण था। इसने 'अर्थशास्त्र' की रचना की जो भारतीय राजशास्त्र की एक अमूल्य निधि है।

चन्द्रगुप्त मौर्य

चन्द्रगुप्त मौर्य क्षत्रिय था। इसका बचपन साधारण परिस्थितियों में बीता। इसके पिता की हत्या घननन्द ने करा दी थी, अतएव नन्दवंश से इसकी भी पैतृक शत्रुता थी। इस प्रकार चन्द्रगुप्त और चाणक्य में मैत्री होना स्वाभाविक था। दोनों ने पहले सेना इकट्ठी की और पाटलिपुत्र पर धावा कर दिया। इनको इस पहले प्रयास में सफलता न मिली। इसके बाद मगध साम्राज्य के दूर-दूर के प्रदेशों को एक-एक कर चन्द्रगुप्त ने जीता। इस प्रकार जब इसकी शक्ति काफी बढ़ गयी तो पाटलिपुत्र पर इसने दूसरा धावा किया। नन्द को मारकर चन्द्रगुप्त ने मगध साम्राज्य को अपने अधीन किया। फिर उसने सुराष्ट्र से लेकर आसाम और बंगाल तक के प्रदेश को रौंदकर समस्त उत्तरी भारत को मौर्य साम्राज्य के अन्तर्गत किया। सम्भवतः इसी के समय में मौर्य साम्राज्य की सीमा सुदूर दक्षिण में मैसूर तक फैली हुई थी।

३०५ ई० पू२ में सिकन्दर के सेनापति सिल्युकस ने सिकन्दर के विजित प्रदेशों को पुनः अधिकृत करने के लिए भारत पर आक्रमण किया। किन्तु इस

समय भारत के राजनीतिक आकाश में प्रतापी चन्द्रगुप्त का सूर्य तप रहा था। भारत की सीमा में सिल्युकस प्रविष्ट न हो सका और सिन्धु के उस पार ही पराजित होकर चन्द्रगुप्त से सन्धि के लिए विवश हुआ। सन्धि के फलस्वरूप चन्द्रगुप्त को काबुल, कन्धार, हेरात और बलूचिस्तान का प्रदेश मिला। सिल्युकस की कन्या चन्द्रगुप्त से विवाहित हुई। मैत्री और वैवाहिक सम्बन्ध हो जाने पर चन्द्रगुप्त की ओर से सिल्युकस को ५०० हाथियों की भेंट मिली। सिल्युकस की ओर से मेगस्थनीज नामक एक राजदूत चन्द्रगुप्त के दरबार में रहने लगा।

चन्द्रगुप्त ने २४ वर्षों तक राज्य किया। जीवन के अन्तिम वर्षों में वह जैन धर्म से विशेष प्रभावित हो गया। कहते हैं कि उसने श्रावणबेलगोल (मैसूर) में जाकर २९७ अथवा ३०० ई० पू० के लगभग 'कायोत्सर्ग' किया था।

चन्द्रगुप्त मौर्य का शासन-प्रबन्ध

चन्द्रगुप्त मौर्य विजेता ही नहीं, सुशासक भी था। उसने चाणक्य की शासन सम्बन्धी योजना को कार्य रूप में परिणत किया था। उसके शासन का विवरण कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' और मेगस्थनीज के 'इंडिका' नामक ग्रन्थ से जाना जाता है।

चन्द्रगुप्त मौर्य निरंकुश शासक था किन्तु वह शासन का कार्य 'मन्त्रिपरिषद' की सहायता से करता था। सम्पूर्ण राज्य विभिन्न प्रान्तों में बँटा था। गृहराज्य (मगध और उसके आस-पास) के अतिरिक्त उत्तरापथ, सुराष्ट्र, अवन्ति और दक्षिणापथ मौर्य साम्राज्य के प्रमुख प्रांत थे। गृहराज्य का केन्द्र पाटलिपुत्र ही था, किन्तु शेष प्रांतों के केन्द्र क्रमशः तक्षशिला, गिरिनार, उज्जयिनी और सुवर्णगिरि थे। शासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम थी जिसका प्रधान ग्रामिक या ग्रामभोजक होता था। ग्राम स्वायत्त शासन में काफी स्वतन्त्र थे और सार्वजनिक हित के कार्य तथा सुरक्षा की व्यवस्था स्वयं कर लेते थे।

केन्द्रीय शासन १८ विभागों में, जिन्हें तीर्थ कहते थे, बँटा हुआ था। प्रत्येक विभाग एक-एक मन्त्री के अधीन होता था। इन अठारह मन्त्रियों के पदवाची नाम इस प्रकार हैं—

(१) प्रधान मन्त्री अथवा पुरोहित	(१०) मन्त्रिपरिषद् का अध्यक्ष
(२) समाहर्ता	(११) दण्डपाल
(३) सन्निधाता	(१२) अन्तपाल
(४) सेनापति	(१३) दुर्गपाल
(५) युवराज	(१४) पौर
(६) प्रदेष्टा	(१५) प्रशस्ता
(७) व्यावहारिक	(१६) दौवारिक
(८) नायक	(१७) आन्तर्वंशिक
(९) कर्मान्तिक	(१८) आटविक

मौर्य-शासन की अर्थनीति बड़ी सुदृढ़ थी। आय के साधन कई थे जिनमें भूमिकर, वाणिज्यकर, सिंचाईकर आदि प्रमुख थे। कृषिकर सामान्यतया उपज का $\frac{1}{4}$ था। विशेष परिस्थिति में यह $\frac{1}{10}$ भी हो जाता था। न्याय विभाग सुव्यवस्थित था। दीवानी और फौजदारी दो तरह की अदालतें थीं जिन्हें क्रमशः धर्मस्थानीय और कण्टक शोधन कहते थे। दण्ड-विधान कड़ा था। अपराध कम होते थे। पुलिस और गुप्तचर विभाग विशेष रूप से संगठित थे। शासन का ध्यान लोकोपयोगी कार्यों पर विशेष रूप से था। सिंचाई का प्रबन्ध भी राज्य करता था। चन्द्रगुप्त के एक प्रांतीय शासक ने गिरिनार में सुदर्शन नामक तालाब सिंचाई और पेय जल के लिए निर्मित कराया था। सेना का संगठन अच्छा था। मेगस्थनीज के अनुसार सेना का प्रबन्ध एक समिति द्वारा होता था जिसके तीस सदस्य होते थे। वे सदस्य छः उपसमितियों में विभक्त होकर सेना सम्बन्धी प्रबन्ध करते थे। पहली समिति पैदल सेना, दूसरी समिति अश्वारोही सेना, तीसरी समिति रथ-सेना, चौथी समिति हस्ति-सेना, पाँचवीं समिति नौ सेना और छठी समिति सेना के विविध अंगों को रसद पहुँचाने की व्यवस्था करती थी। चन्द्रगुप्त मौर्य की सेना बहुत बड़ी थी जिसमें ६ लाख पैदल सिपाही, ३०००० घुड़सवार, ८००० रथ और ९००० हाथी थे।

सेनापति और नायक के अतिरिक्त अन्य सैनिक कर्मचारी अन्तपाल और दुर्गपाल थे। ये सीमा की रक्षा करते थे।

मौर्य-शासन की सबसे बड़ी विशेषता नगर-शासन थी। पौर या नागरिक नगर का प्रमुख अधिकारी होता था। मेगस्थनीज ने पाटलिपुत्र के नगर-शासन का विवरण प्रस्तुत किया है। सम्भवतः इसी प्रकार का नगर-प्रशासन अन्य नगरों में भी प्रचलित था।

मेगस्थनीज के अनुसार नगर-शासन के लिए ३० सदस्यों की एक समिति थी जो ६ उपसमितियों में विभक्त थी। प्रत्येक उपसमिति में पाँच सदस्य होते थे। ये उपसमितियाँ क्रमशः (१) शिल्प, (२) विदेशियों, (३) जनगणना, (४) वाणिज्य, (५) उद्योग और (६) कर से सम्बन्धित कार्यों की देख-भाल करती थीं।

प्रत्येक नगर चार क्षेत्रों में विभक्त था जिसका प्रशासन स्थानक नामक कर्मचारी करते थे। स्थानकों के अधीनस्थ कर्मचारी गोप थे जो १० या १५ परिवारों की निगरानी करते थे।

बिन्दुसार—चन्द्रगुप्त का उत्तराधिकारी उसका पुत्र बिन्दुसार हुआ। इसके विजयों और पराक्रमों का विवरण ज्ञात नहीं है किन्तु यह प्रतापी था और इसका विरुद 'अमित्रघात' था जो इसके विजयों और सामरिक गुणों का ही द्योतक है। सम्भवतः दक्षिण का कुछ भाग इसी के शासन-काल में मौर्य साम्राज्य के अन्तर्गत हुआ हो। इसके शासन-काल में तक्षशिला में विद्रोह हुआ जिसका दमन उसके प्रतिनिधि अशोक ने किया। सीरिया के राजा से इसकी मित्रता थी। इसने उससे मदिरा, अञ्जीर और दार्शनिक माँगा था। चाणक्य इसके शासन-काल में भी मौर्य साम्राज्य का मन्त्री था। इसने २५ वर्ष तक शासन किया। इसकी मृत्यु २७२ अथवा २७३ ई० पू० के लगभग हुई।

अशोक

अशोक भारत के ही नहीं अपितु विश्व के इतिहास में अप्रतिम है। संसार में इसकी तुलना और किसी सम्राट से नहीं हो सकती। इतिहासकार एच०जी० वेल्स ने तो यहाँ तक लिखा है कि 'इतिहास की सूची को भरने वाले राजाओं, सम्राटों, धर्माधिकारियों, सन्त-महात्माओं आदि के बीच अशोक का नाम प्रकाशमान है और वह आकाश में प्रायः एकाकी तारा की तरह चमकता है।'

अशोक का प्रारम्भिक जीवन सामान्य राजाओं की तरह ही बीता। कहते हैं कि इसके ९९ भाई थे और इसने सबको मौत के घाट उतारकर राजगद्दी प्राप्त की थी। किन्तु बौद्ध-ग्रन्थों का यह कथन अतिशयोक्ति पूर्ण है। संभव है कि अशोक को, बिंदुसार का जेष्ठ पुत्र न होने के कारण अपने भाइयों से संघर्ष करना पड़ा हो, किन्तु इसकी वजह से अशोक के सिर इतना बड़ा हत्याकांड नहीं मढ़ सकते। सच तो यह है कि अशोक के राजत्व-काल में भी उसके कई भाई जीवित थे और सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे थे।



अशोक महान्

अशोक ने राज्यारोहण २७२ अथवा २७३ ई० पू० किया था किन्तु सम्भवतः गृहकलह और भाइयों से संघर्ष के कारण अशोक का राजत्व बहुत कुछ संदिग्ध रहा। किन्तु ढाई-तीन वर्षों में ही अशोक की स्थिति सुदृढ़ हो गयी और २६९ ई० पू० में उसने विधिवत् अपना अभिषेक किया।

अभिषेक के आठवें वर्ष (२६१ ई० पू०) में अशोक ने कलिङ्ग पर आक्रमण किया। इसके पूर्व ही वह कश्मीर को अधिकृत कर चुका था। कलिङ्ग का राज्य मौर्यों का प्रतिद्वन्दी राज्य था और बिना कलिङ्ग को आत्मसात् किये मौर्य साम्राज्य को पूर्णता नहीं मिल सकती थी। अतएव अशोक ने राजनीतिक दृष्टि से कलिङ्ग पर आक्रमण कर दिया। किन्तु अशोक की मानवतावादी दृष्टि ने यह सिद्ध किया कि कलिङ्ग पर आक्रमण करना उसकी एक भूल थी। इस युद्ध में एक लाख मनुष्य मारे गये, डेढ़ लाख बन्दी बनाये गए

और इससे कई गुना लोग युद्धोत्तर महामारी के शिकार हुए। युद्ध की इस विभीषिका से अशोक का हृदय द्रवित हो गया। उसमें क्रांतिकारी परिवर्तन



सारनाथ का अशोकस्तम्भ
(सिंह-शीर्ष)



अशोक की लाट

आया। उसने 'भेरीघोष' को 'धम्मघोष' में परिणत कर दिया तथा युद्ध और हिंसा की जगह 'लोक-हित' और 'भूतदया' उसका आदर्श हो गया।

अशोक का नीति परिवर्तन उसकी सच्ची निष्ठा का परिणाम था। इसने

उसकी राजनीति, धर्मनीति और व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित किया। वह, अपने व्यक्तिगत जीवन में पहले की अपेक्षा कहीं अधिक अहिंसक, सदाचारी कृपालु तथा प्रजावत्सल हो गया। उसके हृदय परिवर्तन के अनुकूल बौद्ध धर्म की मान्यतायें पड़ीं, अतएव वह बौद्ध हो गया। किन्तु बौद्ध धर्म का अनन्य 'उपासक' होने पर भी उसमें साम्प्रदायिकता न आई और न उसने बलपूर्वक अपना धर्म प्रजा पर लादा। उसने सभी धर्मों की 'समृद्धि' की कामना



अशोक का शिलालेख

की। उसने अपने अभिलेखों में स्पष्ट कहा कि जो दूसरे के धर्म की निन्दा करता है वह स्वयं अपने धर्म की क्षति करता है। उसके समान रूप से आजीवकों ब्राह्मणों और श्रमिकों को दान दिया और उनके साथ उचित व्यवहार किया। उसने घोषित किया कि मेल-मिलाप से ही धर्म की उन्नति है और इसी से कल्याण का मार्ग प्रशस्त होता (समवाय एवं साधु) है। वाणी का सयम (वाचोगुप्ति और बहुश्रुत होना ये दोनों गुण धर्म की वृद्धि करते हैं और यही भावशुद्धि का मूल है।

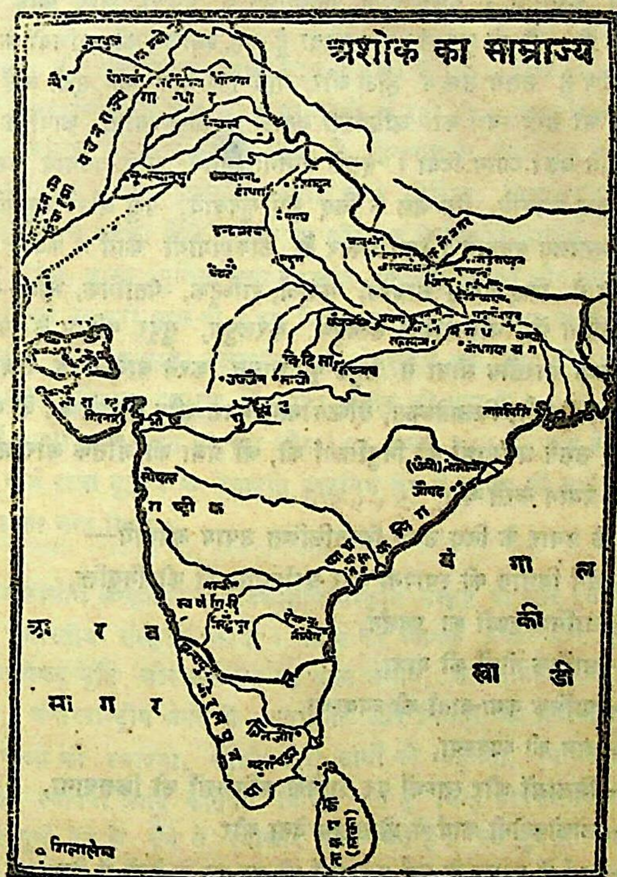
बुद्ध धर्म और संघ के प्रति उसकी सच्ची निष्ठा थी और उसने अपनी प्रजा को कतिपय बौद्ध ग्रन्थों के परायण की सम्मति भी दी। किन्तु ये ग्रन्थ

बौद्ध सिद्धान्तों के प्रतिपादक नहीं अपितु सार्वभौम धर्म के तत्वों के प्रतिपादक थे। उसने अपनी प्रजा को वही करने को कहा जो सभी धर्मों की दृष्टि में सबके लिए श्रेयस्कर है। शिला-लेखों में प्रतिपादित अशोक का 'धर्म' बौद्ध धर्म नहीं था। उसके 'धम्म' के प्रमुख तत्व दया, दान, सत्य, शौच, मृदुता, साधुता, अहिंसा, मैत्री, माता-पिता की सेवा, गुरु का आदर, ब्राह्मण और श्रमणों का सत्कार, दास और भृत्यों के प्रति सद्व्यवहार, अल्पव्ययता और अपभण्डता
सत्कार, दास और भृत्यों के प्रति सद्व्यवहार, अल्पव्ययता और अपभण्डता
(अल्प संग्रह) थे।

अशोक केवल धर्मोपदेशक ही नहीं था वल्कि जो कुछ वह दूसरों के लिए ठीक समझता था वह अपने लिए भी ठीक समझता था। उसने अपने राज्य में जीव हिंसा का निषेध किया था। स्वयं अपने लिए भी उसने अहिंसा का व्रत लिया। उसकी पाठशाला में हजारों पशुओं की नित्य बलि होती थी, जिसको उसने आंशिक रूप से रोक दिया। हिंसा से बचने के लिए उसने 'मृगया' और 'विहार-यात्रा' को भी बन्द कर दिया। 'विहार-यात्रा' की जगह उसने धर्मयात्रा की प्रथा चलाई। 'धर्मयात्रा' में वह तीर्थों की यात्रा करता, ब्राह्मणों एवं श्रमणों का दर्शन करता, तथा प्रजा के दुःख-सुख को सुनाता था। इसी प्रकार उसने बहुत से सामाजिक 'मंगलों' को बन्द करके 'धर्ममंगल' और 'धर्मज्ञान' की प्रथा चलाई जिससे समाज में फैले अनेक अन्धविश्वास निर्मूल हुए।

राजा के रूप में अशोक अपने पितामह चन्द्रगुप्त से कम प्रतिभाशाली नहीं था। तक्षशिला और कलिंग को मौर्य साम्राज्य के अन्तर्गत लाकर उसे चन्द्रगुप्त मौर्य के अधूरे कार्य को पूरा किया। साथ ही वह बहुत बड़ा सुशासक भी था। कलिंग विजय प्राप्त होने के बाद अशोक ने अनुभव किया कि चन्द्रगुप्त और चाणक्य की शासन व्यवस्था उसके बदले हुए मानवतावादी दृष्टिकोण के अनुकूल नहीं है। अतएव उसने पैतृक शासन व्यवस्था में कुछ सुधार अपेक्षित समझा। शासन का ऊपरी ढाँचा उसने सुकेन्द्रित ही रखा किन्तु अपने अन्य अधिकारियों को प्रजा के अधिक से अधिक निकट लाने के लिए चेष्टावान् हुआ। राज्य के उच्च पदाधिकारियों को दौरों का आदेश दिया। रज्जुक, युक्त, प्रादेशिक और महामात्र नामक राज्य कर्मचारी

प्रति पाँचवें वर्ष प्रजा की देखभाल तथा 'धर्मानुशासन' के लिए अपने-अपने अधिकार क्षेत्र में दौरा (अनुसयान) करते थे। 'प्रतिवेदकों' को उसने यह



आदेश दिया कि चाहे वह भोजन कर रहा हो, अन्तःपुर में हो, शयनागार में हो या उद्यान में हो, प्रजा के कार्यों की सूचना उसे दें। प्रजा का अधिक से अधिक हित सम्पादन उसका ध्येय हो गया। अपनी शासन नीति के विषय में उसने यह कहा कि 'सब मनुष्य मेरे पुत्र हैं और जिस प्रकार मैं अपने पुत्रों का

हित चाहता हूँ उसी प्रकार मैं लोक के ऐहिक और पारलौकिक हित और सुख की कामना करता हूँ। सर्वलोक के हितसाधन से बढ़कर और कोई परम कर्तव्य नहीं है। मैं जो कुछ पराक्रम करता हूँ वह इसलिए की प्राणियों के प्रति जो मेरा ऋण है उससे उऋण होऊँ और यहाँ कुछ लोगों को सुखी करूँ तथा परलोक में भी उन्हें स्वर्ग का अधिकारी बनाऊँ। लोकोपयोगी कार्यों के प्रति भी अशोक ने बड़ा ध्यान दिया। इसके अन्तर्गत उसने रास्ते बनवाये उस पर छायादार वृक्ष लगवाये, पेय जल के लिए कुएँ खुदवाये, पशु और मनुष्यों के लिए चिकित्सालय बनवाये। इस प्रकार के लोकोपयोगी कार्य न केवल उसने अपने राज्य में किए अपितु क़म्बोज, गन्धर्व, राष्ट्रिक, पैतानिक, भोज, आंध्र, पुलिन्द जातियों में, चोलापांड्य, सत्यपुत्र, केरलपुत्र, सुदूर पश्चिम के पड़ोसी राज्यों में तथा भारतीय सीमा से बहुत दूर शासन करने वाले यवन राजा जैसे ऐण्टिओकस, टोलमी, फिलाडेल्फस, ऐण्टिगोनस, मेगस और एलेक्जेण्डर के राज्यों में किए। उसने धर्ममात्रों की नियुक्तियाँ की, जो प्रजा की नैतिक और भौतिक उन्नति का प्रयत्न करते थे।

धर्म के प्रचार के लिए उसने निम्नलिखित उपाय अपनाये—

१—धर्म विभाग की स्थापना और धर्ममहामात्रों की नियुक्ति,
२—धार्मिक दृश्यों का प्रदर्शन,
३—धार्मिक तीर्थों की यात्रा,
४—धार्मिक कथा-वार्ता की व्यवस्था,
५—दान की व्यवस्था,
६—शिलाओं और स्तम्भों पर धार्मिक अभिलेखों को लिखवाना,
७—लोकोपयोगी कार्य में प्रोत्साहन देना और
८—धर्म के प्रचार के धर्म प्रचारकों को दूर-दूर के देशों में भेजना।

बौद्ध ग्रन्थों का दावा है कि अशोक ने बौद्ध-धर्म के प्रचार के लिए आचार्य मध्यन्तिक को कश्मीर और गांधर्व महारक्षित को यवन देश में, महादेव रक्षित, यवन धर्मरक्षित और महाधर्मरक्षित को दक्षिण भारत में, मज्झिम को हिमालय के क्षेत्र में, सोण और उत्तर को सुवर्णभूमि में और महेन्द्र तथा संघमित्रा

को सिंघल में भेजा। बौद्ध परम्परा के अनुसार बौद्ध धर्म की तृतीय संगीति भी इसी के समय हुई थी।

अशोक की मृत्यु २३२ अथवा २३६ ई० पू० में हुई। इसके शासन काल में मौर्य साम्राज्य की प्रतिष्ठा चरम सीमा को छु रही थी। उत्तर में नेपाल की तराई से दक्षिण में मैसूर तक पश्चिम में हिन्दकुश से लेकर पूर्व में बंगाल की खाड़ी तक इसका साम्राज्य व्याप्त था। सीरिया, मिश्र आदि पश्चिमी एशियाई देशों से इसका मैत्री सम्बन्ध था और देश में कम्बोज, गन्धर्व, राष्ट्रिक, पैतनिक, भोज, आन्ध्र, पुलिन्द तथा केरलपुत्र, सत्यपुत्र, चोडच और पाण्डच जैसे पड़ोसी राज्यों पर पूरी धाक थी। इस विशाल साम्राज्य का बोझ इसके कमजोर और संकीर्ण दृष्टिकोण वाले उत्तराधिकारी सँभाल न सके और मौर्य साम्राज्य इनके कन्धों से गिरकर टूक-टूक हो गया। अशोक की मृत्यु के ५० वर्ष बाद तक भी मौर्य साम्राज्य सुरक्षित न रहा और १८४ अथवा १८५ ई० पू० के लगभग अन्तिम मौर्य राजा वृहद्रथ के सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने वृहद्रथ को मारकर मौर्य साम्राज्य का अन्त किया।

मौर्यकालीन संस्कृति :—मौर्यकालीन संस्कृति उत्कृष्ट थी और इस युग की कई देन भारतीय संस्कृति को है। लिपि का व्यापक प्रचार और विकास, कला विशेषकर मूर्ति और स्थापत्य का नूतन उन्मेष, शासन प्रबन्ध की उत्कृष्ट व्यवस्था, अन्तरराष्ट्रीय जगत में सद्भावना और मित्रता का प्रसार, देश में एकछत्र राज्य की स्थापना, लोकोपकारी कार्यों की बहुलता, विविध धर्मों में एकता की स्थापना आदि कतिपय विशिष्ट बातें हैं जिन्हें मौर्यकालीन संस्कृति की महत्त्वपूर्ण देन के रूप में स्वीकार कर सकते हैं। इस युग में भारत में सुकेन्द्रित शासन व्यवस्था थी तथा समाज वर्णानुसार विभक्त था। फिर भी बौद्धधर्म के प्रभाव से वर्णाश्रम धर्म रूढ़िग्रस्त न था। ब्राह्मण, श्रमण (जैन), बौद्ध और आजीवक आदि अनेक धार्मिक सम्प्रदाय देश में फल-फूल रहे थे, जिनमें पारस्परिक मेल-मिलाप था। आर्थिक दृष्टि से देश सुसम्पन्न था। देश का कृषि व्यापार उन्नत था तथा मौर्य शासन की छत्रछाया में बल और

स्थल मार्ग सुरक्षित थे और व्यापार दूर-दूर तक के देशों में होता था। साहित्य के क्षेत्र में भी प्रगति थी। त्रिपिटक साहित्य इसी युग की देन है, रामायण और महाभारत के कुछ अंशों का संकलन भी इसी युग में हुआ। तक्षशिला, राजगृह, वाराणसी, पाटलिपुत्र आदि प्रसिद्ध शिक्षा और व्यापार के केन्द्र थे। इस युग में विशेषकर अशोक के समय में पश्चिमोत्तर भारत में खरोष्ट्री और मध्यदेश तथा दक्षिणापथ में ब्राह्मी लिपि का प्रचलन था। कला की दो धाराएँ अशोक द्वारा पोषित हुई। एक तो राजाश्रयी और दूसरी लोकाश्रयीकला। राजाश्रयीकला को अशोक के द्वारा विशेष प्रश्रय मिला। चमकदार पालिश इस कला की विशेषता है। अशोक के बनवाये स्तम्भों पर यह पालिश पायी जाती है। इस कला में अनेक स्तूप और गुफाएँ भी बनीं।

लोकाश्रयी-कला के उदाहरणों में यक्ष-यक्षिणियाँ आती हैं; परवर्ती शुङ्ग-कालीन कला में इसी लोककला का पल्लवन हुआ, अशोक द्वारा पोषित राजाश्रयी कला का नहीं।

प्रश्न

१. चन्द्रगुप्त मौर्य कौन था ? उसके शासन-प्रबन्ध का विवरण प्रस्तुत करो।
२. अशोक का धर्म क्या था ? उसके धर्म का वर्णन करो और सिद्ध करो कि वह सार्वभौम का प्रचारक था।
३. अशोक को महान् क्यों कहते हैं ? उसने प्रजा की भलाई के लिए क्या किया ?
४. मौर्यकालीन संस्कृति पर टिप्पणी लिखिए।

अध्याय ८

मौर्य-साम्राज्य का विकेन्द्रीकरण

अशोक की मृत्यु के बाद का भारतीय इतिहास मौर्यों के साम्राज्य के विकेन्द्रीकरण का इतिहास है। यह विकेन्द्रीकरण दो तरह से हुआ—केन्द्रीय शासन के कमजोर होने पर प्रान्तीय शासक स्वतन्त्र होने लगे और अपने-अपने अधिकार क्षेत्रों में स्वतन्त्र राज्य की स्थापना करने लगे। अर्द्धशासित पड़ोसी राज्य भी मौर्य साम्राज्य से अपना नाता तोड़ने लगे। सीमांत क्षेत्रों के अरक्षित होने पर बलख की ओर से यवनों का आक्रमण देश पर होने लगा और उत्तरापथ का मथुरा तक का भाग उनके अधिकार में हो गया। कालान्तर में यवनों का अनुगमन करते हुए शक, पह्लव और तुषार जाति के भी लोग भारत में आये और शासन किया। इस प्रकार सम्पूर्ण देश छोटे-छोटे देशी और विदेशी शासकों के शासन क्षेत्र में बँट गया।

शुङ्ग वंश—शुङ्ग वंश का संस्थापक पुष्यमित्र शुङ्ग था। पुष्यमित्र शुङ्ग वृहद्रथ का सेनापति था। उसने वृहद्रथ की दुर्बलताओं का लाभ उठाया। उसे मारकर राज्य प्राप्त कर लिया। यह स्वयं भारद्वाज ब्राह्मण था और ब्राह्मण धर्म का अनुयायी था। वैदिक धर्म के पुनरुद्धार की चेष्टा इसने की और दो अश्वमेध यज्ञ किये। संस्कृत विद्या एवं साहित्य का पुनरुद्धार किया तथा वर्णाश्रम के आदर्शों के अनुसार समाज का संगठन किया। इसी काल में मनुस्मृति का वर्तमान संस्करण प्रस्तुत हुआ और पतञ्जलि ने महाभाष्य तैयार किया। भास भी इन्हीं के समकालीन थे। पुष्यमित्र शुङ्ग ने विदिशा पर आक्रमण किया और उस पर अपना प्रभाव स्थापित किया था। इसके समय में मिनाण्डर अथवा डिमेट्रियस ने आक्रमण करके माध्यमिका, साकेत और पाटलिपुत्र तक को घेर लिया था, किन्तु इसने अपने पौत्र वसुमित्र को यवनों के

विरोध में भेज कर साम्राज्य की रक्षा की थी। इसने अश्वमेध यज्ञ भी किया था। पुष्यमित्र शुङ्ग का शासनकेन्द्र पाटलिपुत्र था। मगध साम्राज्य गृहराज्य उसके हाथ में था। अयोध्या, विदिशा और शाकल भी उसके शासन क्षेत्र में थे। इस प्रकार उसका साम्राज्य पूर्व में मगध से लेकर पश्चिम में साकल तक और उत्तर में हिमालय से दक्षिण में विदर्भ तक था।

पुष्यमित्र का उत्तराधिकारी अग्निमित्र था। अग्निमित्र के विषय में विशेष कुछ ज्ञात नहीं, केवल इतना ही ज्ञात है कि उसने अपने पिता के समय ही विदर्भ पर आक्रमण किया था और विदिशा का प्रांतीय शासक भी था। पुराणों के अनुसार शुङ्ग वंश का शासन ११२ वर्ष था और इसमें केवल १० राजा हुए। पुराणों से केवल इन राजाओं का नाम ज्ञात होता है शेष वृत्त नहीं। अग्निमित्र के उत्तराधिकारियों में वसुमित्र और भागभद्र विशेष प्रसिद्ध हैं। भागभद्र के समय में तक्षशिला के यूनानी राजा अतिलिखित हेलियदोर विदिशा में आया था और गरुडध्वज की स्थापना की थी। यह भागवतधर्म का अनुयायी था। शुङ्ग वंश का अन्तिम राजा देवभूति था जिसे वासुदेव कण्व ने मार कर मगध में काण्व वंश की स्थापना लगभग ७२ ईसा पूर्व में की।

काण्व वंश—राजनीतिक दृष्टि से काण्व वंश का महत्व विशेष नहीं है। इस वंश के शासकों में वासुदेव के अतिरिक्त अन्य शासक भूमिमित्र, नारायण और सुशर्मा थे। सुशर्मा अत्यन्त निर्बल राजा था जिसे इसके मन्त्री आन्ध्रशिमुक ने मार कर राज्य पर अधिकार कर लिया।

आन्ध्र-सातवाहन—पुराणों के अनुसार आन्ध्र काण्व के भृत्य थे। आन्ध्र-वाहनों का केन्द्र गोदावरी का कांठा था। इस राज्य वंश का भारतीय राजनीति पर प्रभाव अधिक रहा है और यह दक्षिण भारत की सबसे बड़ी शक्ति थी। शिमुक के बाद उसका भाई कृष्ण गद्दी पर बैठा। उसका उत्तराधिकारी सातकर्णि हुवा जो इस वंश का सबसे प्रथम प्रतापी राजा था। इसका प्रभाव महाराष्ट्र तथा कई अन्य देशों पर था। यह ब्राह्मण धर्म का अनुयायी था किन्तु बौद्धों के प्रति भी उदार दृष्टिकोण रखता था। विदिशा पर

इसका अधिकार था। सातकर्णि के मरने के बाद सातवाहनों की शक्ति पुनः क्षीण हुई किन्तु ईसवी की पहली शती के अन्त में इस राज्य वंश ने अपनी प्रभुता को पुनः सँभाल लिया। गौमती पुत्र सातकर्णि इस वंश का सबसे प्रतापी राजा था जिसने शकों से युद्ध करके आन्ध्र साम्राज्य का विस्तार किया। उसका राज्य गोदावरी के निचले काँठे से लेकर सुराष्ट्र, अपरान्त, अनूप, विदर्भ, आकर और अवन्ती तक फैला हुआ था। गौतमीपुत्र सातकर्णि के बाद उज्जयिनी के शकों के हाथों सातवाहन वंश को पुनः क्षति उठानी पड़ी। गौतमीपुत्र के उत्तराधिकारी वासिष्ठीपुत्र, पुलवावी और यज्ञश्री सातकर्णि थे। इनके शासन काल में सातवाहन की प्रतिष्ठा किसी तरह बनी रही। किन्तु ज्यों-ज्यों शकों का दबाव बढ़ता गया सातवाहन वंश क्षीण होता गया। इस वंश के अन्तिम शासक विजय, चन्द्रश्री और चतुर्थ पुलभावि थे। ये नाममात्र के राजा थे। धीरे-धीरे सातवाहन शकों, सुराष्ट्र के आभीरों और सुदूर दक्षिण के पल्लवों द्वारा छिन्न-भिन्न कर दिया गया।

खारवेल—खारवेल कलिंग का चेदिवंशीय राजा था। इसका पूरा नाम महामेघवाहन खारवेल था। उदयगिरि के पास हाथीगुम्फा लेख में इसका विवरण मिलता है। इस लेख के अतिरिक्त इसकी ऐतिहासिकता का अन्य कोई प्रमाण नहीं मिलता। वह सातवाहन राजा सातकर्णि का समकालीन था और इसने अपने शासन के तेरहवें वर्ष में सुदूर दक्षिण तक हमला किया था। इस लेख से पता चलता है कि इसके अधिकार में उत्तरी भारत और दक्षिणापथ का बहुत बड़ा हिस्सा था। इसका शासनकाल सम्भवतः चिरस्थायी न था तथा इसके उत्तराधिकारी भी प्रसिद्ध न हुए। इसके उत्तराधिकारी के विषय में जानकारी नहीं मिलती। यह जैन धर्मावलम्बी था।

विदेशी आक्रमण

बख्त्रीयवन—मौर्योत्तरकालीन विकेन्द्रित भारतीय राज्यों के अतिरिक्त भारत के पश्चिमी और पश्चिमोत्तर भाग पर कुछ विदेशियों का भी आधिपत्य था। सिल्युकस के उत्तराधिकारी बलख में राज्य कर रहे थे। लगभग २०० ई० पूर्व में बलख में यूथिडेमस ने स्वतन्त्र रूप से एक राज्य की स्थापना की।

इसके उत्तराधिकारी डिमिट्रिया ने १८३ ई० पूर्व में भारत पर आक्रमण किया तथा अपालोडोटस और मिनाण्डर के नेतृत्व में यवनों ने भारत में आधिपत्य स्थापित किया। मिनाण्डर के नेतृत्व में यवनों की सेना साकल (स्यालकोट), मथुरा, पाञ्चाल होते हुए पाटलिपुत्र तक पहुँची और अपालोडोटस के नेतृत्व में यवनों की सेना सिन्धु और अवन्ती होती हुई माध्यमिका तक पहुँची। शुङ्गों ने बड़े प्रयत्न से यवनों को परास्त किया और उन्हें पाटलिपुत्र, पाञ्चाल, मथुरा तथा माध्यमिका और अवन्ती से खदेड़ दिया। किन्तु मिनाण्डर की सत्ता साकल में प्रबल रही और वह पश्चिमोत्तर भारत में प्रभावशाली ढंग से शासन करता रहा।

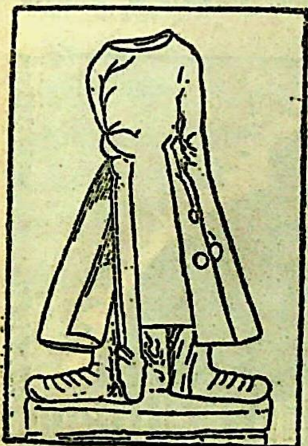
मिनाण्डर यवन राजाओं में बड़ा प्रसिद्ध हुआ। इसने बौद्धधर्म को स्वीकार किया था। इसका गुरु नागसेन था, जिससे उसका शास्त्रार्थ होता रहता था। नागसेन और मिलिन्द के प्रश्नोत्तरों का संकलन 'मिलिन्दपञ्हो' नामक ग्रंथ में हुआ है।

शक—यह मध्य एशिया की एक बर्बर जाति थी जिसने १४० ई० पू० और १२० ई०पू० के बीच में बलख पर अधिकार करके बख्त्री यवन शक्ति को विनष्ट कर दिया और धीरे-धीरे भारत में अपना प्रभाव बढ़ाने लगी। भारत में शक सत्ता के चार केन्द्र थे—(१) उज्जयिनी, (२) महाराष्ट्र, (३) तक्षशिला और (४) मथुरा। इन सभी में उज्जयिनी का क्षत्रप रुद्रदामन विशेष प्रसिद्ध हुआ। पह्लव जाति शकों की ही एक शाखा थी जो पार्थिया से होकर भारत आयी थी, अतएव इनकी भाषा और संस्कृति पर पह्लवी छाप थी। इनका राजनीतिक प्रभाव दक्षिणी अफ़गानिस्तान और पश्चिमोत्तर भारत ही में सीमित रहा। वोनोनीज और गुदफर्न इस वंश के प्रसिद्ध शासक थे।

कुषण—मध्य एशिया की यूची जाति की एक शाखा कुषण थी जिसका प्रबल राजनीतिक प्रभाव भारत पर रहा। पहली शती ईसवी में इसका प्रभाव बहुत बढ़ गया और इस जाति ने कुजुल कदफिस के नेतृत्व में यवनों और शकों की भारतीय सत्ता को विनष्ट किया। इस वंश का दूसरा राजा विम कदफिस था किन्तु इस वंश का सबसे प्रतापी शासक कनिष्क था।

कनिष्क

कनिष्क का शासनकाल बड़ा विवादास्पद है। कुछ इसे ७८ ई० मानते हैं और कुछ १२० ई०। बहुमत ७८ ई० के पक्ष में है। इसकी राजधानी पेशावर थी किन्तु मथुरा और वाराणसी इसकी उप-राजधानियाँ थीं। यहाँ इसके क्षत्रप जिनके नाम क्रमशः महाक्षत्रप खरपल्लव और क्षत्रप वनस्पर थे, शासन करते थे। इसके अधिकार में कश्मीर भी था तथा इसने पाटलिपुत्र तक धावे किये थे। इसने चीनी सेनापति पैन-यांग को हराकर काशगर, खोतान और यारकन्द पर भी अपना राजत्व स्थापित किया था।



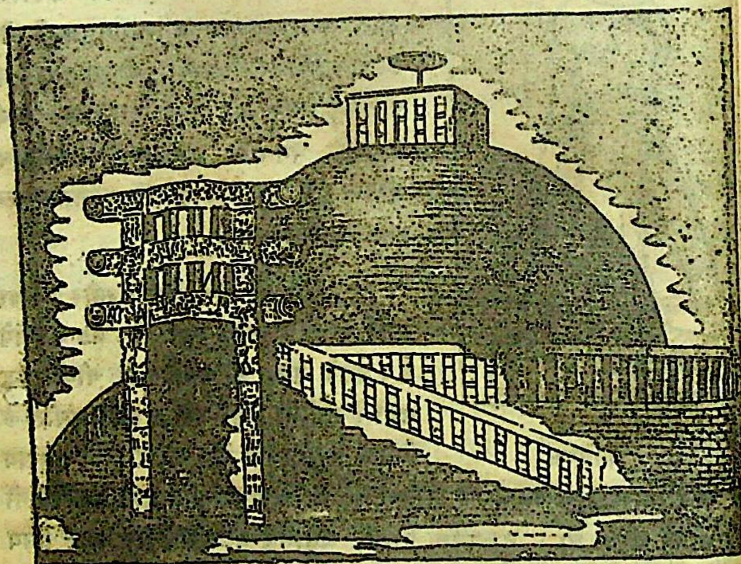
कनिष्क

यह बौद्ध था और इसने कश्मीर, पेशावर आदि नगरों में अनेक स्तूप और मठ बनवाये थे। इसके समय में कश्मीर में चौथी बौद्ध सभा (संगीति) हुई थी। इसी संगीत के विवाद से हीनयान और महायान-दो संप्रदाय हो गये। महायान सम्प्रदाय को कनिष्क का विशेष प्रश्रय प्राप्त था। यह विद्वानों का आदर करता था। नागार्जुन, पार्श्व, वसुमित्र और अश्वघोष इसके समय प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता और विद्वान् थे। कला को भी इसका प्रश्रय प्राप्त हुआ। गंधार और मथुरा इसके समय के दो प्रसिद्ध कला-केन्द्र थे।

इसने २३ वर्षों तक राज्य किया। अन्त में मन्त्रियों के षड्यन्त्र से इसकी हत्या हो गई। इसका उत्तराधिकारी हुविष्क था, जो पिता के समान ही योग्य और प्रतापी था। उसके शासनकाल में साम्राज्य अक्षुण्ण रहा। इसके बाद के कुषाणवंशीय शासक कमजोर थे, अतः इस राजवंश का पराभव प्रारम्भ हुआ। वासुदेव इस वंश का अन्तिम योग्य शासक था।

शुङ्ग, सातवाहन और कुषाण काल की संस्कृति—शुङ्गों और सातवाहनों के नेतृत्व में भारतीय संस्कृति ने नया मोड़ ले लिया। मौर्य-पूर्व वैदिक

मान्यताओं, आदर्शों और सामाजिक मानदण्डों का मौर्योत्तर बदली हुई परिस्थिति में फिर से मूल्यांकन किया गया तथा उन्हें नया स्वरूप दिया गया। वैदिक यज्ञों का पुनरुद्धार किया गया, किन्तु उससे सम्बद्ध कर्मकाण्ड का बोझ हटाकर। वैदिक विवाद के आधार पर नूतन देवसंघ का सङ्गठन किया गया। नये-नये देवताओं की कल्पना का आधार वैदिक प्रतीकवाद के अतिरिक्त

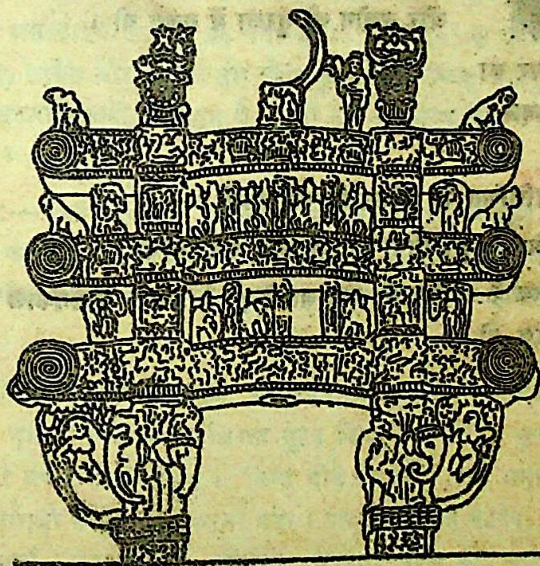


सांची का स्तूप

भक्ति और लोकधर्म माना गया। शिव, स्कन्द, विशाल, वासुदेव, संकर्षण आदि देवताओं की मान्यता बहुत बढ़ी और इनकी पूजा और भक्ति का प्रचलन बढ़ा। भक्ति धर्म का बहुविधि प्रसार इस युग की विशेषता है, जिसका प्रभाव बौद्धों और जैनों पर भी पड़ा। कुषाणों ने भक्ति के आधार पर संगठित महायानी देवसंघों को विशेष रूप से प्रचलित किया। मूर्तिपूजा का इतिहास वैसे तो पुराना है, किन्तु शुङ्ग, सातवाहन तथा कुषाण युग में मूर्ति-निर्माण और मूर्ति-पूजन का प्रचलन बहुत बढ़ गया, न केवल हिन्दू धर्म में बल्कि जैन

और बौद्ध धर्म में भी। इस युग के मूर्तिविधान और देव-कल्पना में तत्कालीन लोक-धर्म का विशेष हाथ है। इस युग के मूर्तिवाद का कला पर भी प्रभाव पड़ा। शुङ्ग—सातवाहन काल में मूर्तिकला और स्तूप-निर्माण की प्रधानता थी। भरहुत, साँची और अमरावती के स्तूपों से उस युग की स्थापत्य और मूर्तिकला की उत्कृष्टता का प्रमाण मिलता है। कुषाणों के काल में गांधार शैली में बुद्ध और बोधिसत्व की मूर्तियों का निर्माण और मथुरा शैली में यक्ष-यक्षिणियों, बुद्ध, तीर्थंङ्कर, शिव और विष्णु की मूर्तियों की रचना न केवल उस युग की मूर्तिकला की लोकप्रियता का प्रमाण है, अपितु उसकी उत्कृष्टता का भी।

इस काल में वर्णाश्रम धर्म की नयी परिभाषा करके उसे पुनः प्रचलित



साँची स्तूप का तोरण

किया गया तथा वर्णाश्रम धर्म की नयी परिभाषा और व्यवस्था को शास्त्रसम्मत करने के लिए मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति जैसी स्मृतियों का पुनस्संपादन

तथा संकलन किया गया। समाज में यवनादि विदेशी जातियाँ घुल-मिल गयी थी, जिन्हें हिन्दू समाज ने धीरे-धीरे व्रात्य और क्षत्रिय रूप में स्वीकार भी कर लिया। इन विदेशी जातियों ने हिन्दू और बौद्धधर्म को दिल खोलकर अपनाया। वेसनगर का गरुड़ध्वज और यवन, शक, कुषाण आदि के सिक्के इसके प्रमाण हैं। संस्कृत की अभिवृद्धि हुई। महाभाष्य से संस्कृत भाषा का प्राञ्जल रूप प्रस्तुत किया गया। राजनीतिक दृष्टि से भारतीय राज्य विकेन्द्रित और दुर्बल भी थे, किन्तु राज्यों की छत्रछाया हट जाने पर भी श्रेणी, निगम जैसी व्यावसायिक और व्यापारिक संस्थाएँ व्यापार और उद्योग की सुरक्षा में सजग थी।



वेसनगर का गरुड़ध्वज

प्रश्न

१. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखो :—

पुष्यमित्र, शुङ्ग, मिनाण्डर, खारवेल, शक, साँची।

२. कनिष्क के विषय में क्या जानते हो? उसके शासनकाल का संक्षिप्त विवरण दो।

अध्याय ९

गुप्त-साम्राज्य

जैसे सम्पत्ति में सुवर्ण श्रेष्ठ है, वैसे ही भारतीय इतिहास में गुप्तों का शासनकाल महत्त्वपूर्ण है। श्री गुप्त इस वंश का संस्थापक था और इसके उत्तराधिकारी का नाम घटोत्कच है। इसका पुत्र चंद्रगुप्त (प्रथम) इस वंश का प्रथम प्रतापी राजा था जिसकी शक्ति और प्रभाव इसके 'लिच्छवि दौहित्र' होने के कारण असाधारण रूप से बढ़ गया था। ३१९ ई०[1] के लगभग गुप्त साम्राज्य मगध, साकेत और प्रयाग तक फैला हुआ था। किन्तु चन्द्रगुप्त प्रथम के पुत्र और उत्तराधिकारी समुद्रगुप्त के हाथों गुप्त साम्राज्य की असाधारण अभिवृद्धि हुई।

समुद्रगुप्त :—३२५ ई० के लगभग समुद्रगुप्त का राज्यारोहण हुआ। इसके पराक्रम का पूर्ण विवरण प्रयाग में स्थित अशोक के स्तम्भ पर लिखा है। यह प्रयाग प्रशस्ति संस्कृत गद्य-साहित्य की अमूल्य निधि है जिसे हरिषेण कवि ने लिखा है।

समुद्रगुप्त ने अपने दिग्विजय-क्रम में सर्वप्रथम पाटलिपुत्र तथा उसके आसपास की भूमि पर अपना आधिपत्य सुदृढ़ किया तथा कोट, कुलज और नागवंशियों को अपने वश में किया। किन्तु थोड़े ही समय बाद समुद्रगुप्त को आर्यावर्त के राजाओं से पुनः युद्ध करना पड़ा। इस बार उसने रुद्रदेव, मातिल, नागदत्त, चन्द्रवर्मा, गणपतिनाग, नागसेन, अच्युत, नन्दि और बलवर्मा इन ९ राजाओं का उन्मूलन करके इन राज्यों को मगध साम्राज्य का अंग बना लिया। इसके बाद उसने विन्ध्यमेखला में फैले कतिपय आटविक राज्यों को

---

१. कुछ के मत से इसका राज्यारोहण ३२० ई०. अथवा ३२५ ई० में हुआ।

'परिचारक' बनाया। समुद्रगुप्त की विजय-परम्परा में दक्षिणापथ की विजय

बड़ी महत्त्वपूर्ण है। इन राजाओं की संख्या ११ थी जिनके नाम और शासन क्षेत्रों का परिचय इस प्रकार है :—

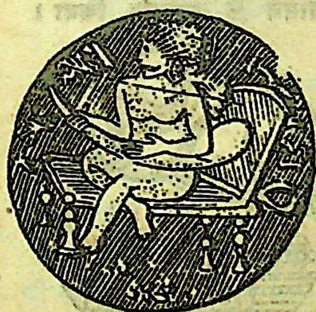
१. कौशल का महेन्द्र

२. महाकान्तार का व्याघ्रराज

३. पिष्टपुर का महेन्द्र गिरि
४. कोट्टूर का स्वामिदत्त
५. एरण्ड का पल्लक दमन
६. कांची का विष्णु गोप
७. अवमुक्त का नीलराज
८. वेंगी का हस्तिवर्मा
९. पल्लव का उग्रसेन
१०. देवराष्ट्र का कुवेर
११. कुशस्थलपुर का धनञ्जय।

इन राजाओं को जीतने के बाद इनसे अधीनता स्वीकार कराकर उसने पुनः इन्हें इनका राज्य वापस कर दिया।

समुद्रगुप्त के दक्षिणापथ विजय का बड़ा प्रभाव उनके पड़ोसी राजाओं पर पड़ा। इन राज्यों में कुछ राजतन्त्र थे और कुछ गणतन्त्र। प्रमुख राजतन्त्र यथा—समतट, दवाक, कामरूप, नेपाल और कर्तृपूर तथा प्रमुख गणतन्त्र यथा—मालव, अर्जुनायन, यौधेय, मद्रक, आभीर, प्रार्जून, सनकानीक, काक और खरपरिक ने स्वेच्छापूर्वक समुद्रगुप्त की अधीनता स्वीकार की तथा उसके 'प्रचण्ड शासन' के अधीन हुए। कुछ विदेशी राज्य यथा—दैवपुत्र शाहिशाहानुशाहि की उपाधि धारण करने वाले कुषाण वंशीय, शक, मुरुण्ड, सिंहल तथा अन्य द्वीपवासियों के लोगों ने भी भेंट, विवाह सम्बन्ध आदि के द्वारा समुद्रगुप्त से मैत्री का सम्बन्ध सुदृढ़ किया।



वीणावादक समुद्रगुप्त की मुद्रा

इन विजयों से समुद्रगुप्त ने एक बहुत बड़े साम्राज्य का निर्माण किया। वह कुशल शासक तथा उदार गुणों से भरपूर था। उसके प्रशस्तिकार ने लिखा है कि उसका मन विद्वानों के सत्संग में लगा रहता था तथा वह स्वयं भी

विद्वान् और कवि था। उसके सिक्कों से पता चला है कि वह कुशल वीणा-वादक था। उसका मन दीन, अनाथ और आतुर जनों की हित-कामना में लगा रहता था। उसने अपने दिग्विजयों की पूर्णता के उपलक्ष में अश्वमेध यज्ञ भी किया था।

रामगुप्त :—समुद्रगुप्त की मृत्यु लगभग ३८० ई० में हुई। उसका ज्येष्ठ पुत्र और उत्तराधिकारी रामगुप्त बड़ा ही अशक्त और कायर था। इसकी कमजोरियों का लाभ उठाकर शकों ने गुप्त शाम्राज्य को आक्रान्त किया। किन्तु समुद्रगुप्त के द्वितीय पुत्र चन्द्रगुप्त (द्वितीय) ने शकों को मार भगाया तथा कालान्तर में रामगुप्त को हटाकर स्वयं गुप्त साम्राज्य का अधिष्ठाता हो गया।

चन्द्रगुप्त द्वितीय :—चन्द्रगुप्त द्वितीय अपने पिता समुद्रगुप्त की ही तरह प्रतापी और शौर्य सम्पन्न था। इसके शासनकाल की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसने शकों को पराभूत करके अपने पिता के अधूरे काम को पूरा किया। उसने उज्जयिनी और पश्चिमोत्तर भारत के शक केन्द्रों को विनष्ट करके सौराष्ट्र, गुजरात, मालवा आदि को अपने प्रत्यक्ष शासन के अन्तर्गत किया।



सिंहनिहन्ता चन्द्रगुप्त द्वितीय का सिक्का



चन्द्रगुप्त द्वितीय का अश्वमेध प्रकार का सिक्का

समुद्रगुप्त के समय जो अर्ध-शासित गणराज्य थे उन्हें भी इसने नष्ट किया तथा अपने सामरिक और राजनीतिक प्रभाव को वाह्लीक तक विस्तृत किया। बंगाल पर भी इसने अधिकार किया तथा दक्षिणापथ पर इसने अपना प्रभाव जमाया। इन विजयों के बाद इसने भी अश्वमेध यज्ञ किया था।

चन्द्रगुप्त द्वितीय ने वैवाहिक सम्बन्धों के द्वारा भी अपने को सुदृढ़ किया। उसने अपना विवाह नागवंशीया कुबेरनागा से किया तथा अपनी पुत्री का विवाह वाकाटक वंशीय रुद्रसेन से किया। ये दोनों ही राजवंश यदि मित्र न बनाये गये होते तो गुप्त साम्राज्य को हानि पहुँचाते। इसका वैवाहिक सम्बन्ध कुन्तल नरेश से भी था।



धनुर्धर चन्द्रगुप्त द्वितीय की मुद्रा

चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल में भारत में बड़ी सुरक्षा, सुव्यवस्था और समृद्धि थी। फाहियान नामक एक चीनी यात्री इसी के शासनकाल में भारत आया था जिसने इसके शासन की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। यह भारत में ही पर्यटन के निमित्त भारत आया था। ३९९ ई० में चीन से चलकर गोबी रेगिस्तान, पामीर पठार, हिन्दुकुश को लाँघता हुआ बड़ी कठिनाई से ४०१ ई० में पञ्जाब पहुँचा। इसके बाद वह कई वर्षों तक मथुरा, कन्नौज, काशी, पाटलिपुत्र, वैशाली आदि नगरों में घूमता रहा। पाटलिपुत्र में इसने संस्कृत भाषा का अभ्यास किया और बौद्ध धर्म का अध्ययन किया।

इसने लिखा है कि जीवों के लिए अस्पताल, मुफ्त भोजन तथा धर्मशालाओं की व्यवस्था थी। लोग लहसुन, प्याज, मदिरा, मांस का व्यवहार नहीं करते थे। चाण्डाल या शूद्र ही इनका व्यवहार करते थे। राजा का व्यवहार अच्छा था और जनता में सुरक्षा की भावना भी। चोरी का भय नहीं था। दण्ड कठोर न थे। बौद्धधर्म की अवनति हो रही थी।

४१० ई० में वह भारत से चलकर लंका, जावा आदि देशों से होते हुए ४१४ ई० में चीन पहुँच गया।

कुमारगुप्त प्रथम :— चन्द्रगुप्त का शासनकाल ३८०-८१ से ४१३-१४ ई० तक रहा। इसके बाद इसका पुत्र कुमारगुप्त प्रथम गद्दी पर बैठा। इसने भी अश्वमेध यज्ञ किया था तथा पिता और पितामह के विजित साम्राज्य को दृढ़ता

से सुरक्षित रखा था। इसका शासन शान्तिपूर्वक एक लम्बे अर्से तक (४१३-४५५ ई०) बना रहा। शासन के अन्तिम दिनों में राज्य में कुछ गड़बड़ी हो गयी थी और साम्राज्य को पुष्यमित्र से खतरा उत्पन्न हो गया था। किन्तु इसके उत्तराधिकारी स्कन्दगुप्त ने साम्राज्य की सुरक्षा की।



कुमारगुप्त का सिक्का

स्कन्दगुप्तः—स्कन्दगुप्त की सबसे बड़ी महत्ता इसमें थी कि इसने 'विचलित कुल लक्ष्मी' को पुनः प्रतिष्ठित किया। हूणों की एक जबरदस्त बाढ़ इस देश में आयी। स्कन्दगुप्त ने हूणों का प्रतिरोध करके उनके आक्रमण की दिशा ही मोड़ दी। इनके शौर्य और पराक्रम से भयभीत होकर हूणों की सेना ने भारत के बाहर जाकर रोम के साम्राज्य का विध्वंस किया। इसके पूर्व ये मध्य एशिया की कई सभ्यताओं का विनाश कर चुके थे। इस दृष्टि से स्कन्दगुप्त का पराक्रम भारत ही नहीं अपितु सम्पूर्ण एशिया के इतिहास के लिए महत्त्वपूर्ण हैं।

स्कन्दगुप्त लगभग १२ वर्षों तक (४५५-४६७ ई०) राज्य करता रहा। इसने अपने शासन काल में यथाशक्ति विघटनशील गुप्त साम्राज्य की सुरक्षा की इसका शासन सौराष्ट्र, मध्यदेश और उत्तरापथ पर था। यह सुशासक था, लोकोपयोगी कार्यों को भी महत्त्व देता था। इसने गिरिनार की सुप्रसिद्ध सुदर्शन झील की मरम्मत करायी थी।

परवर्ती गुप्त :—स्कन्दगुप्त के बाद साम्राज्य लगभग ५० वर्षों के भीतर ही ध्वस्त हो गया। स्कन्दगुप्त के उत्तराधिकारी निर्बल थे तथा इसका इतिहास भी बड़ा धूमिल है। इनके उत्तराधिकारियों के नाम पुरुगुप्त, नरसिंह गुप्त, कुमारगुप्त द्वितीय, बुधगुप्त और भानुगुप्त ज्ञात होते हैं। इनके विषय में कुछ अधिक कहना सम्भव नहीं है। अयोग्य उत्तराधिकारियों के अतिरिक्त हूणों के आक्रमण भी गुप्त साम्राज्य के विनाश के कारण बने। बाहरी आक्रमणों तथा अशक्त केन्द्रीय शासन व्यवस्था के कारण गुप्त साम्राज्य विशृंखल होकर अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विकेन्द्रित हो गया। परवर्ती गुप्तों की एक

शाखा भी इतिहासतः प्रमाणित है जिनमें विष्णुगुप्त, चन्द्रादित्य और वैन्यगुप्त के नाम उल्लेखनीय हैं।

गुप्तकाल का भारतीय जीवन और समाज उत्कृष्टता का अन्यतम उदाहरण है। समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त की विजयों से गुप्त-शासन के अन्तर्गत सम्पूर्ण भारत आ चुका था और इस सुविस्तृत साम्राज्य पर सम्राटों का पूर्ण नियन्त्रण था। शासन का केन्द्र पाटलिपुत्र था। शेष राज्य अन्य कई प्रान्तों, विषयों, भुक्तियों आदि में विभक्त था। केन्द्रीय शासन का प्रधान सम्राट् था, जो परमेश्वर, महाराजाधिराज, परमभट्टारक, परक्रमांङ्क, विक्रमादित्य आदि उपाधियाँ भी धारण करता था। सम्राट् का मुख्य कार्य देश की वाह्य और आन्तरिक शत्रुओं से रक्षा करना तथा आन्तरिक शान्ति और सुव्यवस्था को बनाये रखना था। युद्ध काल में वही सैन्य-सञ्चालन भी करता था। वही प्रधान न्यायाधिपति भी था। उसके पास योग्य मन्त्रियों का एक मन्त्रिमण्डल होता था जिसके कुछ सदस्य सन्धि-विग्रहिक, अक्षपटलिक, कुमारामात्य, अमात्य आदि होते थे। प्रान्तों में कुमारामात्य या अमात्य का शासन प्रवन्ध होता था जो नगर में श्रेष्ठिन् सार्थवाह, प्रथमकुलिक, कायस्थ, पुस्तपाल आदि अधिकारियों की सहायता से शासन-प्रवन्ध करता था, प्रान्तीय शासक को भौगिक, भोगपति, गोप्ता, उपरिक, महाराज अथवा राजस्थानीय कहते थे। प्रान्त कई प्रदेशों और प्रदेश कई विषयों में बँटा था। शासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम थी जिसका प्रधान ग्रामिक महत्तर अथवा भोजक कहलाता था।

न्याय का प्रवन्ध सुन्दर था, फलतः अपराध कम होते और दण्ड भी कठोर न थे। केवल विशेष अपराधों के लिए ही प्राणदण्ड या अङ्गच्छेद होता था। कुल, श्रेणी, गण तथा राजकीय न्यायालय—ये चार प्रकार की अदालतें थीं। शासन के खर्चे के लिए कृषकों तथा व्यवसायियों आदि से १८ प्रकार के कर लिए जाते थे, जिनमें कृषिकर, जिसे उद्रङ्ग कहते थे तथा जो उपज का ⅙ होता था, प्रमुख कर था। अन्य करों में धान्य, हिरण्य, चाटभाट, प्रवेश कर आदि थे। न्याय कर तथा माण्डलिक राजाओं के उपहार आदि से भी साम्राज्य को आमदनी होती थी।

शान्ति और सुरक्षा के लिए सेना और पुलिस का अच्छा संगठन था। सेना विभाग का मुख्य अधिकारी सन्धिविग्रहिक था। उसके अधीन अन्य सैनिक कर्मचारी महादण्डनायक, बलाधिकृत, रणभाण्डारिक, भटाश्वपति आदि थे। सैनिक कार्यालय को बलाधिकरण कहते थे। पुलिस का प्रधान अधिकारी दण्डपाशाधिकारी कहलाता था। इस विभाग के अन्य अधिकारी चौरोद्धरणिक, दण्डपाशिक, गुप्तचर आदि थे।

शासन का ध्यान लोकोपयोगी कार्यों की ओर भी रहता था। फाहियान ने लिखा है कि 'सारे उत्तर भारत में स्थान-स्थान पर औषधालय, चिकित्सालय बने हुए थे, जहाँ रोगियों की मुफ्त चिकित्सा होती थी और औषधि, भोजनादि मुफ्त वितरित होता था। मार्ग सुरक्षित और सुविधाजनक बनाये गये थे। मार्ग में चोर-डाकुओं का भय न था। सिंचाई प्रबन्ध के लिए तालाब आदि की व्यवस्था थी और शासकों का ध्यान था। स्कन्दगुप्त के शासनकाल में सुदर्शन झील की मरम्मत हुई थी। शिक्षा के लिए ब्राह्मणों को ग्रामदान अग्रहार दिया जाता था।

गुप्तकालीन भारत आर्थिक दृष्टि से भी सुदृढ़ था। कृषि, उद्योग और व्यापार उन्नत दशा में थे। इस युग की सबसे महत्त्वपूर्ण आर्थिक विशेषता यह थी कि आर्थिक जीवन अपनी व्यावसायिक गतिविधि के लिए बहुत कुछ स्वतन्त्रता प्राप्त था तथा आर्थिक जीवन का नियन्त्रण श्रेणियों, निगमों और पूगों द्वारा होता था। ये श्रेणी तथा निगम बैंक का भी काम करते थे तथा इतने सम्पन्न थे कि इनके द्वारा मन्दिर-निर्माण तथा इसी प्रकार के अन्य धार्मिक कृत्य भी सम्पन्न होते थे। सार्थवाह देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक व्यापार करते थे तथा नौका के द्वारा देश का व्यापारिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध ईरान, अरब, लंका, जावा, सुमात्रा, चम्पा, अनाम, चीन और जापान आदि देशों से होता था। मध्येशिया के नगरों से स्थल मार्ग से व्यापार होता था। गिलगित, काशगर, यारकन्द होकर चीन से भी स्थल-पथ जुड़ा हुआ था। भड़ौच, पैठन

उज्जयिनी, मथुरा, काशी, कौशाम्बी, पाटलिपुत्र, चम्पा, ताम्रलिप्ति प्रसिद्ध भारतीय व्यापारिक मंडियाँ (पुटभेदन) और पत्तन थे। विनिमय के लिए सुवर्ण, कार्षापण नामक सिक्कों और कौड़ियों का व्यवहार होता था।

समाज में वर्ण-धर्म की प्रतिष्ठा थी यद्यपि वर्णादि की मान्यताएँ रूढ़िग्रस्त न थीं। फलत: यवन, शक, पल्लव, ऋषिक, तुषार और हूण जैसी विजातीय जातियाँ भी हिन्दू समाज में समाहित हो गयीं। शूद्रों के प्रति विशेषतया चाण्डाल आदि हीन वृत्तिवालों के प्रति वर्जनशीलता का व्यवहार होता था। फाहियान के अनुसार इनसे कोई सामाजिक व्यवहार नहीं करता था तथा ये लकड़ी बजाकर चलते थे कि जिससे ऊँचे वर्ण और जातिवाले बच कर हट जायँ।

स्त्रियों की दशा अच्छी थी। विशेष परिस्थिति में अंतर्जातीय विवाह, अनमेल विवाह और पुनर्विवाह भी होता था। लोगों की वेशभूषा और खान-पान सुरुचिपूर्ण था। अलंकरण और प्रसाधन पर विशेष ध्यान दिया जाता था, विशेषकर बालों की सजावट पर। अधिकतर जनता शाकाहारी थी, किन्तु हीन जातियों में मांस, मछली, लहसुन, प्याज आदि का व्यवहार होता था।

गुप्तों के शासनकाल में वैष्णवधर्म को प्रमुखता मिली थी क्योंकि अन्तिम गुप्तशासक को छोड़ सभी 'परम भागवत' थे। वैवाहिक धर्म और कर्मकाण्ड के प्रति लोगों की बड़ी आस्था थी किन्तु इस समय वैदिक धर्म और कर्मकाण्ड को नयी रूपरेखा के साथ ग्रहण किया गया था। भक्ति का इतना प्रबल वेग इन दिनों था कि वैदिक देवता भी इसकी लपेट में आ गये और इनके आधार पर नये-नये उपासना सम्प्रदाय उठ खड़े हुए। ब्रह्मा की महत्ता तो घटी किन्तु शिव, विष्णु, सूर्य और शक्ति प्रमुख रूप से पूजे जाने लगे। बौद्ध धर्म की महायानी शाखा का विशेष जोर था। भक्ति का प्रभाव महायान पर भी पड़ा। बुद्ध के अनेक रूपों की कल्पना की जाने लगी थी। बोधिसत्त्व, अवलोकितेश्वर, मैत्रेय आदि की विशेष प्रमुखता थी। जैनधर्म में भी इसी प्रकार के परिवर्तन हुए। आचार प्रधान होने के कारण जैन धर्म जनता में विशेष लोकप्रिय न था।

गुप्त शासक वैष्णव थे, किन्तु वे अन्य धर्मों के प्रति भी उदार थे। फाहियान ने लिखा है कि भारत में किसी प्रकार का धार्मिक अत्याचार न था तथा राजा की धार्मिक नीति उदार थी।



अजन्ता का एक चित्र

गुप्त संस्कृत साहित्य तथा वैज्ञानिक उन्नति के लिए विशेष प्रसिद्ध है। संस्कृत साहित्य देनेवाले इस युग के कुछ कवि और साहित्यकारों में कालिदास, मातृगुप्त, भर्तृमेण्ठ, शूद्रक, विशाखदत्त, सुबन्धु और भामह विशेष प्रसिद्ध हैं। हरिषेण, वीरसेन, वत्सभट्टि, वासुल आदि प्रशस्तिकार भी इस युग के अच्छे कवि माने जा सकते हैं। भारतीय साहित्य में कालिदास का स्थान बहुत ऊँचा है। वे विश्वकवि की कोटि में आते हैं। वे अच्छे नाटककार भी थे। अभिज्ञानशाकुन्तल, मालविकाग्निमित्र सबके

अच्छे नाटक तथा कुमारसम्भव, रघुवंश आदि उनके द्वारा प्रणीत उच्चकोटि के



महाकाव्य हैं। दर्शन के क्षेत्र में इस युग में प्रगति हुई, उसका श्रेय ईश्वरकृष्ण, दङ्नाग, वात्स्यायन, प्रशस्तपाद तथा शवरस्वामी को है। कुछ बौद्धाचार्यों ने भी धर्म और दर्शन की अभिवृद्धि में विशेष योग दिया जिसमें आचार्य मैत्रेय, असंग, वसुबन्धु, कुमारजीव, चन्द्रकीर्ति, चन्द्रगोमिन्, धर्मपाल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। जैन विद्वानों में चन्द्रमणि, सिद्धसेन, देवनन्दिन् आदि बड़े प्रसिद्ध हुए।

गणित, ज्योतिष और विज्ञान के क्षेत्र में बड़ी प्रगति हुई। आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, विष्णुशर्मा, वराहमिहिर आदि इस युग के प्रसिद्ध गणितज्ञ और ज्योतिषी थे। राजशास्त्र का प्रसिद्ध ग्रन्थ कामन्दकनीतिसार और स्मृतियों में नारद और पराशर इसी युग की कृतियाँ हैं। पुराणों का इस युग में इस विशेषता के साथ संस्कार किया गया

गुप्तकालीन बुद्ध की मूर्ति . गया।

गुप्तकाल की कला सौन्दर्य और अभिव्यक्ति की दृष्टि से बड़ी उत्तम है। इस तरह की उत्कृष्टता गुप्तकाल की कला के हर अङ्गों में यथा; चित्रकला, मूर्तिकला, स्थापत्य, धातुकला और मुद्रानिर्माण कला में भी पायी जाती है। गुप्तकालीन स्थापत्य के कुछ ही नमूने शेष रहे हैं जिनमें एहोल के पास लाल

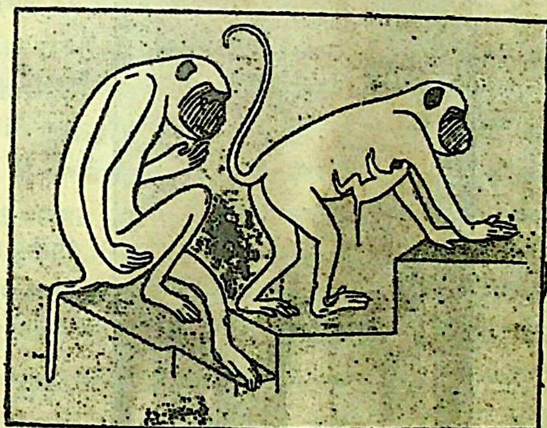
खाँ मन्दिर, देवगढ़ का दशावतार मन्दिर, कानपुर के पास भीतरगांव का मन्दिर, बोध गया का मन्दिर, अजन्ता, एलोरा और बाघ की गुफाएँ, सारनाथ का धमेख स्तूप विशेष उल्लेखनीय हैं। इस युग की मूर्तिकला विदेशी प्रभाव से सर्वथा मुक्त है। मथुरा और सारनाथ इस युग के प्रमुख



यशोधरा और राहुल (अजन्ता)

मूर्ति निर्माण केन्द्र थे। गुप्तकालीन मूर्तिकला का प्रमुख विशेषता यह थी कि इस युग की मूर्तिकला में आन्तरिक भावना और वाह्य अवयविक सौन्दर्य की एक रूप और समन्वित व्यंजना की पूरी क्षमता थी। इन मूर्तियों की आकृति-योजना, भावभंगिमा और मुद्रा भारतीय सौन्दर्य भावना के अनुकूल है। कम से कम अलंकरण और वसन के उपयोग से सौन्दर्य की अधिकतम अभिव्यक्ति इस युग की मूर्तियों की विशेषता है। सारनाथ से मिली धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा में भगवान् बुद्ध की प्रतिमा, मथुरा की स्थानक और अभय मुद्रा में बुद्ध की प्रतिमा तथा सुलतानगञ्ज की धातु निर्मित बुद्ध प्रतिमा इस युग की बुद्ध मूर्तियों में सर्वश्रेष्ठ हैं। मथुरा जैमकला का उत्

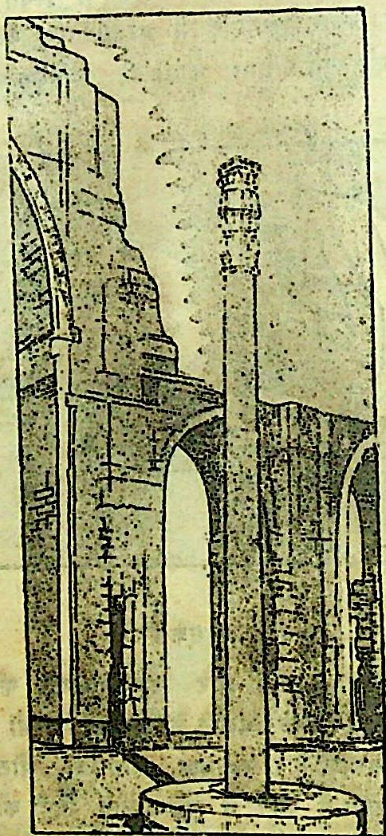
केन्द्र था। यहाँ से प्राप्त महावीर की पद्मासन में स्थित प्रतिमा बड़ी ही आकर्षक है। इसी प्रकार उदयगिरि में वराहावतार, देवगढ़ में शेषशायी विष्णु, कौशाम्बी की सूर्य प्रतिमा, काशी की कार्तिकेय की प्रतिमा रूपबास



अजन्ता का एक चित्र

(भरतपुर) से उपलब्ध बलदेव और लक्ष्मीनारायण की मूर्तियाँ इस युग की उत्कृष्ट देन हैं। मिट्टी के खिलौने के निर्माण में भी 'गुप्त कलाकारों' ने अच्छी कुशलता दिखलायी है। राजघाट, कौशाम्बी, भीटा, मीरपुरखास, मथुरा आदि प्रसिद्ध स्थल हैं जहाँ से गुप्तकालीन मिट्टी की मूर्तियाँ मिली हैं। अजन्ता, एलोरा और बाघ की गुफाओं में गुप्तकालीन चित्रकला का उत्कृष्ट उदाहरण मिलता है। संगीत की भी इस युग में अच्छी प्रगति थी। समुद्रगुप्त कुशल वीणावादक था। मुद्रा-कला में गुप्त-कारीगर विशेष पटु थे। उपलब्ध उदाहरणों से पता चलता है कि गुप्त-कारीगर छोटे-छोटे सिक्कों पर राजा की आकृति, उसके प्रतीक, उसके विरुद, देवी-देवता आदि विविध विशेषताओं के प्रदर्शित करने में विशेष पटु थे। धातु-कला में इस युग में आश्चर्यजनक प्रगति थी। मिहरौली का लोह-स्तम्भ गुप्तकालीन धातुकला

का आश्चर्यजनक उदाहरण है।



मिहरौली लौहस्तम्भ

प्रश्न

१. समुद्रगुप्त की विजयों पर प्रकाश डालो। सिद्ध करो कि वह गुप्तवंश का सबसे महान् शासक था।

२. सिद्ध करो कि गुप्तयुग भारतीय इतिहास का स्वर्ण-युग था।

३. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखो—
कालिदास, फाहियान, गुप्तकाल की कला।

अध्याय १०

हर्ष का साम्राज्य

५५० ई० के लगभग गुप्त साम्राज्य का अन्त हो गया और सारा देश पुनः छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त और विकेन्द्रित हो गया। इन राज्यों में मौखरि, मगध के परवर्ती गुप्त और वलभी के मैत्रक अपेक्षाकृत महत्त्वपूर्ण थे। गुप्तोत्तर राज्यों में पुष्य-भूति वंश विशेष शक्तिशाली था जिसकी सत्ता थानेश्वर में केन्द्रित थी। थानेश्वर का राजा प्रभाकरवर्धन था। प्रभाकरवर्धन का अधिकार क्षेत्रलाट मालवा, गुजरात और गान्धार तक विस्तृत था तथा इसकी मुठभेड़ हूणों से हुई थी।

हर्ष प्रभाकरवर्धन का पुत्र और राज्यवर्धन का छोटा भाई था। इसकी एक बहन राज्यश्री थी। प्रभाकरवर्धन के मृत्यूपरान्त राज्यवर्धन गद्दी पर बैठा किन्तु इसकी हत्या गौड़नरेश शशाङ्क ने कर दी थी, जिसके कारण थानेश्वर का राज्य हर्ष को सँभालना पड़ा था। इसकी बहन कन्नौज के राजा गृहवर्मा के साथ ब्याही गयी थी। गृहवर्मा पर शशाङ्क ने आक्रमण करके उसे और राज्यवर्धन को मार कर राज्यश्री को बन्दिनी बना लिया था। हर्ष ६०६ ई० में जब राजा हुआ तो अपनी बहन की रक्षा के लिए उसे कन्नौज आना पड़ा। कन्नौज शशाङ्क के अधिकार में हो गया था किन्तु हर्ष को कन्नौज आता देख शशाङ्क कन्नौज छोड़कर भाग भाग गया। राज्यश्री भी किसी तरह कारागार से मुक्त होकर विन्ध्य के वनों की ओर चली गयी, जहाँ से किसी प्रकार हर्ष ने उसे खोज निकाला। राज्यश्री को कोई सन्तान न थी अतएव कन्नौज का साम्राज्य भी हर्ष को थानेश्वर के राज्य में मिला लेना पड़ा। इससे हर्ष का अधिकार और उसकी शक्ति बहुत बढ गयी। हर तरह से जब उसकी



हर्षवर्धन

शक्ति दृढ़ हो गयी तो उसने गौड़ पर आक्रमण किया। आसाम के राजा भास्कर वर्मा से उसकी मैत्री थी, अतएव शशाङ्क के विरुद्ध अभियान करने में सहूलियत थी। गौड के विरुद्ध उसका अभियान सफल रहा। उसका आधिपत्य उत्तरी बंगाल पर तो हो गया किन्तु दक्षिण-पूर्वी बङ्गाल हर्ष के जीवन काल तक शशाङ्क के ही

स्वहस्तो मम महाराजाधिराज श्री हर्षस्य

(महाराज हर्षवर्धन का हस्ताक्षर)

अधिकार में था। इसके बाद उसने गृहवर्मा के दूसरे शत्रु मालवा-नरेश पर आक्रमण किया और उसे परास्त किया। धीरे-धीरे ६ वर्षों के भीतर ही सम्पूर्ण उत्तरी भारत पर अपना आधिपत्य स्थापित करके वह 'सकलोत्तरापथनाथ' हो गया। उसकी इच्छा दक्षिणापथ की ओर भी बढ़ने की थी। किन्तु दक्षिणापथ में पुलकेशिन् द्वितीय प्रबल था। इसका संघर्ष हर्ष से नर्मदा के तट पर हुआ, जिसमें हर्ष हार गया और दक्षिण की ओर अपने साम्राज्य का विस्तार न कर सका।

युवान च्वाङ्ग (ह्वेन सांग) सुप्रसिद्ध चीनी यात्री था जिसने हर्ष के शासनकाल में भारत की यात्रा की थी। फाहियान की तरह यह भी यहाँ बौद्ध धर्म और आदर्श के अध्ययन के हेतु आया था। दर्शन का यह निष्णात पण्डित तथा महातार्किक था। इसने नालन्दा महाविहार में अध्ययन किया था। ६२९ ई० में चीन से चलकर ताशकन्द, समरकन्द, काबुल होता हुआ ६३० ई० में भारत पहुँचा। समस्त उत्तरी भारत का उसने भ्रमण किया था तथा हर्ष के शासन-काल की सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों का अच्छा अध्ययन किया था। ६४५ ई० में वह चीन लौट गया।

युवान च्वाङ्ग के विवरण से पता चलता है कि हर्ष एक उदार शासक था यद्यपि सैनिक दृष्टि से भी वह बड़ा महत्त्वपूर्ण था।

वह लिखता है कि उसने गजसेना बढ़ाकर ६०००० और अश्वसेना

१००००० कर दी। वह स्वयं भी शासन-कार्यों में बड़ी रुचि लेता था और सब कामों की प्रत्यक्ष देखभाल करता था। शासन-कार्य के लिए उसके पास एक मन्त्रिपरिषद् थी और दूरस्थ प्रान्तों के शासन के लिए वह उपरिक महाराजों की नियुक्तियाँ करता था। अन्य राज्यकर्मचारी, जिसके आधार पर उसकी शासन-व्यवस्था टिकी हुई थी, महाबलाधिकृत, सेनापति, बृहदश्ववारि; कटुक चाट, भाट, दूत, राजस्थानीय, आयुक्तक, मीमांसक, महाप्रतिहार, भोगपति, अक्षपटलिक, लेखक आदि थे। ग्राम शासन की सबसे छोटी इकाई थी। इसके ऊपर क्रमशः पटक, विषय, भुक्ति इकाइयाँ थीं। हर्ष का दण्डविधान नम्र था। कुलों और परिवारों की रजिस्ट्री नहीं होती थी। लोग एक जगह से दूसरी जगह आने-जाने के लिए स्वतन्त्र थे। बेगार नहीं लिया जाता था। कर भी हल्का था। राजकीय आय के प्रमुख साधन खेती की उपज व्यापार पर चुङ्गी, घाट और सीमा कर थे। कर की दर उपज का $\frac{1}{6}$ थी। खेतो की सीमा निर्धारित होती थी। राजकीय आय का व्यय भी निर्धारित था। एक भाग धार्मिक कार्यों और सरकारी खर्च पर, दूसरा भाग राज्यकर्मचारियों पर, तीसरा भाग विद्वानों को पुरस्कार देने और शिक्षा पर तथा चौथा भाग दानपुण्य में खर्च होता था। विशेष अपराधों के लिए कभी-कभी अङ्गच्छेद और विष आदि का भी प्रयोग होता था। हर्ष लोकोपकारी कार्यों पर भी विशेष ध्यान देता था। उसने बहुत से मन्दिरों, चैत्यों, बिहारों और स्तूपों



चीनी यात्री ह्वेन सांग

का निर्माण कराया था। मार्ग तथा नहरों के निर्माण की ओर भी सरकार का ध्यान था। शिक्षा और शिक्षा-संस्थाओं के पोषण में वह राजकीय आय का चतुर्थांश लगा देता था।

हर्ष का विद्या-प्रेम और विद्वानों का आदर प्रसिद्ध है। उसने उड़ीसा के बौद्ध विद्वान् जयसेन को ८० गायों का दान दिया था। बाण, मयूर और मातंग दिवाकर उसके दरबार में पोषित थे। वह स्वयं भी कवि था। कहा जाता है कि प्रियदर्शिका, रत्नावली और नागानन्द उसी की रचनाएँ हैं। शिक्षा का सबसे प्रसिद्ध केन्द्र नालन्दा था। इस विद्यालय के भवन बहुत ऊँचे और कई मंजिलों के थे। इस विद्यालय के पास ३ पुस्तकालय थे जिन्हें रत्नसागर रत्नोदधि और रत्नरञ्जक कहते थे। छात्रों को, जिनकी संख्या १०००० थी और अध्यापकों को, जिनकी संख्या १००० थी, निःशुल्क भोजन मिलता था। नालन्दा महाविहार के व्यय के लिए हर्ष की ओर से दो गाँव की आमदनी चढ़ी हुई थी। इस विहार की सुरक्षा एक लम्बे परकोटे से होती थी, जिसमें कई द्वार थे। यहाँ के पाठ्यक्रम में शब्दविद्या (व्याकरण), हेतुविद्या (न्याय अथवा तर्क) अध्यात्मयोग, तन्त्र, चिकित्सा, शिल्प, रसायन आदि शामिल थे। महाविहार नालन्दा की व्यवस्था का संचालन धर्मकोष, कर्मदान, स्थविर इन तीन प्रमुख आचार्यों द्वारा होता था।

हर्ष बहुत बड़ा दानी था। वह बौद्ध था किन्तु दान वह सभी सम्प्रदाय वालों को उदारतापूर्वक देता था। उसकी धार्मिक रुचि महायान धर्म के प्रति विशेष थी। इसके सिद्धान्तों के प्रचार के लिए उसने कन्नौज में एक बहुत बड़ी सभा की थी जिसमें १८ देशों के नरेश और सम्पूर्ण भारत के सहस्रों विद्वानों ने भाग लिया था। युवान च्वाङ्ग ने इस सभा का सभापतित्व किया था। यह अधिवेशन १८ दिनों तक चला था। हर्ष प्रति पाँचवें वर्ष प्रयाग में जाकर विशेष दान-सभा का आयोजन करता था। इस दान-सभा को उस समय 'महामोक्षपरिषद्' कहते थे। अधिवेशन ७५ दिनों तक चलता था जिसमें क्रमशः बुद्ध, आदित्य और शिव की पूजा तीन दिनों तक होती थी और बौद्धों, ब्राह्मणों, जैनियों आदि को प्रभूत दान दिया

जाता था। कहते हैं कि भावातिरेक में हर्ष अपने व्यक्तिगत आभूषण और वसन तक दान कर डालता था।

हर्ष के समय का समाज वर्णों और जातियों में विभक्त था और शूद्रों के प्रति उदारता का व्यवहार करते हुए भी उनका स्पर्श आदि नहीं किया जाता था। छूत-छात और जाति-पाँति का भाव बढ़ता जा रहा था। स्त्रियां शिक्षिता होती थीं। बहु-विवाह, पुनर्विवाह होता था। सती की प्रथा भी प्रचलित थी। धार्मिक सम्प्रदाय अपने मे विभक्त थे और कभी-कभी तो वे एक दूसरे के प्रति उदारता का व्यवहार नहीं करते थे। ब्राह्मण धर्मों में वैष्णव, सौर, शाक्त और शैव प्रमुख थे। तान्त्रिक सम्प्रदायों की भी बहुलता थी।

प्रश्न

१. हर्ष के विषय में तुम क्या जानते हो ? उसका संक्षिप्त विवरण दो।

२. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखो :—

इत्सिङ्ग, कन्नौज की सभा, महामोक्षपरिषद्, नालन्दा।

अध्याय ११

पूर्वमध्यकालीन भारत

हर्ष को कोई पुत्र न था। उसकी मृत्यु के बाद (६६६ अथवा ६४७ ई०) में ही उसका विशाल साम्राज्य उसके मन्त्री के हाथ लगा। किन्तु यह और उसके उत्तराधिकारी हर्ष के साम्राज्य की सुरक्षा न कर सके तथा 'सकलोत्तरापथनाथ' हर्ष का साम्राज्य देखते ही देखते क्षत-विक्षत होकर नष्ट हो गया। आठवीं शती में कन्नौज का स्वामी यशोवर्मा था। इसी का समकालीन कश्मीर का ललितादित्य (७२२–७५५ ई०) था जिसने अपनी प्रभुता का विस्तार कन्नौज, मगध, बंगाल, कामरूप और कलिंग तक कुछ समय के लिए कर लिया था। नवीं और दसवीं शती में भारत में पाल, प्रतिहार और राष्ट्रकूट ये तीन शक्तियाँ प्रमुख हुईं तथा कन्नौज को लेकर इन तीनों के बीच दीर्घकालीन संघर्ष चलता रहा।

बंगाल में पालवंश का संस्थापक गोपाल था जिसका उत्तराधिकारी धर्मपाल बड़ा ही प्रतापी था। इसकी दृष्टि कन्नौज पर टिकी थी। अवसर पाते ही उसने समस्त उत्तरी भारत पर अपनी धाक जमा ली तथा कन्नौज के तत्कालीन शासक इन्द्रायुध को अपदस्थ करके अपने प्रतिनिधि चक्रायुध को कन्नौज का शासक नियुक्त किया। यह बात प्रतिहारों को अप्रिय थी। प्रतिहार पश्चिम भारत में अपनी सत्ता दृढ़ कर चुके थे तथा इस वंश के प्रथम प्रतापी राजा वत्सराज ने कन्नौज तक बढ़कर चक्रायुध को कन्नौज से भगा दिया और धर्मपाल को भी परास्त किया। इस प्रकार का दाँव-पेंच जब पाल और प्रतिहार वंशों के बीच चल रहा था तो दक्षिण के राष्ट्रकूटों ने भी कन्नौज के लिए अपनी घात लगायी। प्रसिद्ध राष्ट्रकूट राजा ध्रुव ने, जिसने दक्षिण के पल्लवों को भी परास्त कर दिया था, ७८९ ई० में कन्नौज पर आक्रमण कर दिया। फलतः वत्सराज को कन्नौज छोड़कर भाग जाना पड़ा। राष्ट्रकूट भी कन्नौज में प्रतिष्ठित न रह सके, क्योंकि इनके गृहराज्य में

विद्रोह चल रहा था। ध्रुव कन्नौज को अरक्षित छोड़कर दक्षिण लौट गया। अवसर पाकर धर्मपाल और चक्रायुध ने पुनः कन्नौज प्राप्त कर लिया। प्रतिहार भी होड़ में पीछे न रहे तथा नागभट्ट द्वितीय (८००-८२५ ई०) ने धर्मपाल और चक्रायुध को पराजित कर दिया। इस पर राष्ट्रकूट राजा गोविन्द तृतीय ८०६ ई० के लगभग सेना लेकर कन्नौज की ओर चढ़ दौड़ा तथा हिमालय तक अपनी विजय वैजयन्ती फैलायी। नागभट्ट द्वितीय पराजित हुआ तथा धर्मपाल और चक्रायुध शरणापन्न हुए। इस बार फिर राष्ट्रकूटों को आन्तरिक कारणों से दक्षिण लौटना पड़ा तथा कन्नौज पुनः अरक्षित हो गया। राष्ट्रकूटों के पलायन के बाद से कन्नौज पर प्रतिहारों का प्रभाव बढ़ता गया और नागभट्ट द्वितीय के योग्य उत्तराधिकारी–मिहिर भोज ने सदैव के लिए कन्नौज को अपने राज्य के अन्तर्गत कर लिया और इस प्रकार पाल–प्रतिहार-राष्ट्रकूटों के बीच चलने वाले दीर्घकालीन संघर्ष का अन्त हुआ।

प्रतिहारों में मिहिर भोज सबसे अधिक प्रतापी था और इसने कन्नौज को राजधानी बनाकर ८४०-८९० ई० तक राज्य किया। इसका प्रतिद्वन्द्वी देवपाल जो धर्मपाल का पुत्र और उत्तराधिकारी था, इनसे पराजित हो चुका था तथा इसके और इसके उत्तराधिकारियों (नारायणपाल, रामपाल) में प्रतिहारों से स्पर्धा करने की क्षमता न थी। राष्ट्रकूट भी भोज का लोहा मान चुके थे। गृह कलह से जर्जर होकर राष्ट्रकूटों का साम्राज्य और प्रभाव ९४८ ई० तक नष्ट-प्राय हो गया था। भोज-शासनकाल (८४०–८९० ई०) में प्रतिहार साम्राज्य के अन्तर्गत पूर्वी पंजाब, राजपूताना, उत्तरप्रदेश, ग्वालियर, सौराष्ट्र और मालवा के प्रदेश थे। भोज विद्या और कला का भी बड़ा प्रेमी था। भोज के बाद प्रतिहार के अन्य शासक क्रमशः महेन्द्रपाल, महीपाल, राज्यपाल, त्रिलोचनपाल और यशपाल हुए। रायज्पाल के शासन में ही जजाकभुक्ति के चन्देलों का प्रभाव प्रतिहारों पर जम गया था। इस वंश का पराभव महमूद गजनी के आक्रमण (१०२७ ई०) और चन्देलों के बढ़ाव के कारण हुआ। दसवीं और ग्यारवीं शती में उत्तरी भारत की राजनीति पर चन्देला और कलचुरियां का विशेष प्रभाय था। बंगाल में पालवंश का अन्त हो जाने पर सामन्त सेन द्वारा ग्यारहवीं शती में सेन वंश की स्थापना हुई। इस वंश

का सबसे प्रतापी राजा लक्ष्मण सेन था। इसके उत्तराधिकारी बड़े निर्बल थे। फलतः इस वंश का अन्त ११९९ ई० में कुतुबुद्दीन ऐबक के सेनापति मुहम्मद बिन बख्त्यार के द्वारा हुआ। प्रतिहारों के पतन के बाद कन्नौज में गहड़वालों का प्रभाव बहुत बढ़ गया था। आरम्भ में गहड़वालों का शासन क्षेत्र वाराणसी और उसके आसपास तक ही सीमित था, किन्तु धीरे-धीरे चन्द्रदेव के शासनकाल में १०५० ई० तक इनके अधीन कन्नौज भी हो गया। चन्द्रदेव बड़ा वीर और साहसी था और तुर्कों का प्रतिरोध करके इसने काशी कान्य-कुब्ज और इन्द्रप्रस्थ की रक्षा की थी। इसका पुत्र और उत्तराधिकारी मदनपाल साधारण व्यक्तित्व का हुआ, किन्तु मदनपाल का पुत्र गोविन्दचन्द्र बड़ा ही प्रतापी था इसके समय में गहड़वालों की राज्यसीमा सुविस्तृत थी। इसके बाद कन्नौज के शासक विजयचन्द्र और जयचन्द्र हुए। जयचन्द्र की प्रतिद्वन्द्विता अजमेर के चौहान राजा पृथ्वीराज से थी। ११९४ ई० में जयचन्द्र को पराजित करके शहाबुद्दीन गोरी ने गहड़वाल वंश को पतन के गर्त में ला पटका। इस वंश का अन्त इल्तुतमिश के द्वारा १२२५ ई० में हुआ।

अजमेर के चौहान वंश का मूल शाकम्भरी था। ये सूर्यवंशी थे। इस वंश का प्रथम राजा विग्रहराज चतुर्थ जिसने दिल्ली से हिमालय तक अपने साम्राज्य का विस्तार कर लिया। इस वंश का अन्तिम राजा पृथ्वीराज चौहान था जो बड़ा वीर और प्रभावशाली था। इसने परमारों पर विजय प्राप्त की थी तथा जयचन्द से बड़ी अनबन थी। ११९१ ई० में जब गोरी ने इस पर आक्रमण किया तो इसने उसे हरा दिया। किन्तु आन्तरिक फूट तथा विलासिता से जब पृथ्वीराज की शक्ति क्षीण हो गयी तो ११९३ ई० में वह पुनः गोरी से आक्रान्त होकर मारा गया। चाहमानों की सत्ता का विनाश कुतुबुद्दीन ऐबक द्वारा हुआ।

बुन्देलखण्ड के चन्देल चन्द्रवंशी क्षत्री थे जो आरम्भ में प्रतिहारों के अधीन थे किन्तु यशोवर्मन के शासनकाल (९५०-१००२) में स्वतन्त्र हो गये। इस वंश के प्रसिद्ध राजा धंग और कीर्तिवर्मा थे। १२०३ ई० के बाद चन्देलों को कुतुबुद्दीन के हाथों अपनी स्वतन्त्रता खोनी पड़ी। चन्देलों के

दक्षिण में कलचुरी राजवंश शासन करता था। गांगेय देव इस वंश का प्रसिद्ध राजा था और इसके अधिकार-क्षेत्र में कर्नाटक से लेकर तिरहुत तक का प्रदेश था। मालवा का परमार वंश भी दसवीं और ग्यारहवीं शती का प्रसिद्ध राजवंश था। इस वंश के प्रसिद्ध प्रतापी राजा वाक्पति मुञ्ज ने चेदि, लाट, कर्नाटक और चोल केरल तक को जीता था। चालुक्यों से इसका बराबर संघर्ष होता रहा और अन्त में उन्हीं के हाथों पराजित हुआ। इसका पुत्र सिंधुराज भी प्रतापी था किन्तु इसका भतीजा भोज (१०१८-१०६०) इस वंश का सबसे यशस्वी शासक था। यह विद्या,कला और संगीत का बड़ा अनुरागी तथा प्रसिद्ध योद्धा भी था। इसने चालुक्यों को हराया था तथा कान्यकुब्ज, वाराणसी, पश्चिम बिहार तक अपनी विजयों का विस्तार किया था। चालुक्यों और चेदियों ने मिलकर अन्त में इसे पराजित किया। १३०१ ई० तक वंश का अन्त अलाउद्दीन के द्वारा हुआ। परमारों के राज्य के दक्षिण गुजरात के चालुक्यों की बड़ी धाक थी। इस वंश के लोग आरम्भ में प्रतिहारों के अधीन थे और मुक्त होकर दसवीं शती में प्रभावशाली हो गये थे। इस वंश के प्रतापी राजा भीम जिसने कई बार गोरी को हराया था तथा कुमारपाल थे जो विद्या और कला के अनुरागी तथा वीर थे। इस वंश का पतन तेरहवीं शती के अन्त में हुआ। इसका अन्तिम स्वतन्त्र राजा कर्ण था जो अलाउद्दीन खिजली के द्वारा पराजित हुआ।

दक्षिण में (दक्षिणापथ में) राष्ट्रकूट, वातापी के चालुक्य और कल्याणों के चालुक्य यादव तथा होयसाल प्रसिद्ध राजा थे जो एक दूसरे से लड़ते हुए काल के गर्त में गिरते जा रहे थे। सुदूर दक्षिण तमिल के राज्यों में चोलों और पल्लवों का विशेष प्रभाव था। आन्ध्रों और वाकाटकों के पतन के बाद से ही पल्लव राजवंश का प्रभाव बढ़ता चला आ रहा था। इस वंश के महेन्द्र वर्मा और नरेन्द्र वर्मा पुलकेशिन द्वितीय के समकालीन थे। नरेन्द्र वर्मा ने पुलकेशिन द्वितीय को हराकर धीरे-धीरे पल्लव-प्रभुता का विस्तार सुदूर दक्षिण और लंका तक कर लिया था। इस वंश का अन्तिम राजा अपराजितवर्मन था जो नवीं शती में चोलराजा प्रथम आदित्य से पराजित हुआ।

पल्लवों के पराभव के बाद चोल और पाण्ड्य राज्यवंश प्रसिद्ध हुए। चोलवंशीय राजराजा प्रथम (९८५-१०१४ ई०) के शासनकाल में चोलों का प्रभाव लङ्का, कलिङ्ग और पूर्वी द्वीप समूहों तक था। इसका उत्तराधिकारी राजेन्द्र अपने पिता से भी बढ़कर निकला और इसने सम्पूर्ण दक्षिणापथ को आक्रान्त करके कलिङ्ग, उड़ीसा होते हुए गङ्गा (बंगाल) तक जीता। इसका जहाजी बेड़ा अण्डमान, निकोबार, बर्मा, मलाया, सुमात्रा, जावा आदि द्वीपों तक जाता रहता था। इन देशों में इसके व्यापारिक और राजनीतिक उपनिवेश थे। इस वंश का पतन १३१०-११ ई० में मलिक काफूर के आक्रमण से हुआ। सुदूर दक्षिण के अन्य महत्त्वपूर्ण राज्य पांडय और चेर थे।

पूर्वमध्यकालीन भारत का समाज और इस युग की संस्कृति:- राजनीतिक दृष्टि से इस युग का इतिहास विकेन्द्रीकरण का इतिहास है। देश में ऐसी केन्द्रीय शक्ति और राजनीतिक एकता का अभाव था कि जिससे सम्पूर्ण राष्ट्र एकसूत्र में आबद्ध होता और तुर्क आक्रमणों का समवेत विरोध करता। समाज भी रूढि ग्रस्त था और जाति-पाँति की भावना रूढ़िगत हो गयी थी। चातुर्वर्ण्य का भाव तो हल्का पड गया था किन्तु असंख्य जातियों का संगठन हो चुका था, जिसका कुप्रभाव कालान्तर में जातीय एकता पर पड़ा। इस प्रकार समाज का ढाँचा बड़ा ढीला तथा जातियों और उपजातियों का संगठन बड़ा संकुचित था। फिर भी विभिन्न जातियों में सद्भाव था तथा हीन जातियाँ अपनी सामाजिक सीमाओं का उल्लंघन नहीं करती थी। विशेष परिस्थितियों में खासकर राजाओं में अन्तर्जातीय विवाह भी होता था। बहुविवाह की भी प्रथा थी। विधवा-विवाह नहीं होता था और पर्दा प्रथा भी नहीं थी। अभिजात वर्ग की स्त्रियाँ पढ़ी-लिखी होती थीं तथा आवश्यकता पड़ने पर राजकाज भी देखती थीं। सती-प्रथा का विशेष प्रचलन था, सुदूर दक्षिण में देवदासी की भी प्रथा थी। स्वयंवर भी होता था। इस युग की विदुषी और नीतिज्ञ स्त्रियों में मण्डन की पत्नी भारती, राजशेखर की पत्नी अवन्तिसुन्दरी, भास्कराचार्य की पुत्री लीलावती, कश्मीर की रानी दिद्दा और काकतीय वंश की रानी रुद्राम्बा उल्लेखनीय हैं।

ब्राह्मण धर्म विशेष लोकप्रिय था। कुमारिल और शङ्कर के प्रयत्न से वैदिक और ब्राह्मण समाज काफी सुधर गया था। जनता में और तत्कालीन बौद्ध

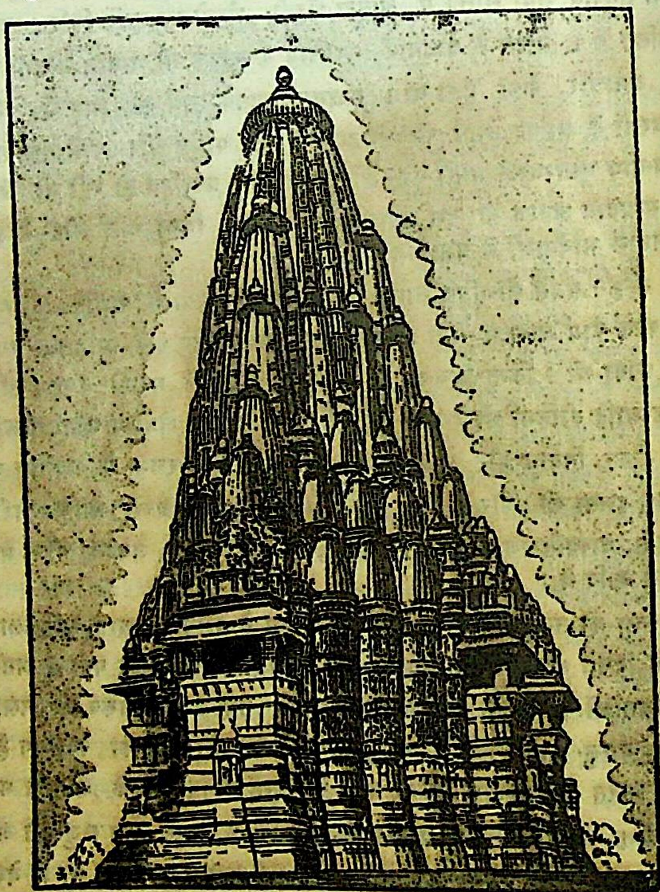
समाज में शंकर का अद्वैत वेदान्त बड़ा ही प्रभावशाली और लोकप्रिय रहा फिर भी हिन्दूधर्म और समाज वैष्णव, शैव, शाक्त, ब्राह्म, सौर, गाणपत्य आदि हिन्दू सम्प्रदायों में विभक्त था। इन्हीं के साथ-साथ पाशुपत, कापालिक, अघोर पन्थी समुदाय तथा शाक्तों में आनन्द भैरवी, भैरवीचक्र आदि विविध मार्ग भी प्रचलित थे। बौद्धों के वज्रयानी सम्प्रदाय के कारण भी समाज में इसी प्रकार का अनाचार फैला हुआ था। वज्रयानी साधक धर्म की आड़ में अनैतिक आचरणों के असंख्य अड्डे छिपाये हुए थे। इन पाखंड और प्रपंची सम्प्रदाय के साथ-साथ सुधारवादी सन्तों की क्षीण धारा भी प्रवाहित हो रही थी जैनियों का सम्प्रदाय अवश्य ही इन अनाचारों से बचा था, किन्तु भक्ति और रूढ़िग्रस्त वर्जनशील भावनाओं से प्रभावित था।

संस्कृत सबसे लोकप्रिय भाषा थी और इसी भाषा में साहित्य का सृजन, राजकीय कार्य व्यवहार तथा धार्मिक कृत्य सम्पन्न होते थे। अभिजात वर्ग की यही भाषा थी। किन्तु निचले स्तर में हिन्दी, गुजराती, मराठी, बंगला, तमिल, कन्नड़ आदि बोलियाँ भी जन्म ले रही थीं। साहित्य के क्षेत्रों में लोगों ने अधिक रुचि टीका, निबन्ध और रीति ग्रन्थों तथा मुक्तकों की रचना में प्रदर्शित की। मौलिक रचना की ओर प्रवृत्ति कम थी। इस युग के अच्छे साहित्यकारों में भवभूति, वाक्पतिराज, राजशेखर, क्षेमेन्द्र, बिल्हण, कल्हण, जयदेव, भोज, माघ, श्री हर्ष आदि थे।

कला को तत्कालीन शासकों ने विशेष रूप से पोषित किया। मूर्तिकला के क्षेत्र में विषय और भाव की दृष्टि से बड़ी विविधता प्रदर्शित की गयी। असंख्य देवी-देवताओं के स्वरूप की कल्पना की गयी तथा उन्हें मूर्तरूप में निखारा गया। वास्तु-कला की दृष्टि से यह युग भारतीय वास्तु-कला का स्वर्णयुग है। उत्तरी भारत में शिखरयुक्त मन्दिर बनते थे जिन्हें नागर शैली के अन्तर्गत मान सकते हैं। नागर-शैली के मंदिरों के निर्माण के प्रमुख केन्द्र खजुराहो और भुवनेश्वर थे। खजुराहों की कला का परिपोषण चन्देलों ने किया था। वेशर शैली के मन्दिरों का निर्माण चालुक्यों ने कराया। इस शैली के प्रसिद्ध नमूने बीजापुर, इलोरा आदि में देखे जा सकते हैं। सुदूर दक्षिण में पल्लवों ने द्रविड़ शैली में मंदिरों का निर्माण कराया। द्रविड़ शैली के प्रमुख केन्द्र तंजोर, काञ्ची,

मदुरा और मामल्लपुरम् थे तथा इस शैली के वास्तु विख्यात पोषक राजवंशों में पल्लवों के अतिरिक्त चोल, पाण्ड्य, होयसल थे।

मूर्ति की वास्तुकला के साथ ही साथ नृत्य, संगीतादि अन्य कलाओं का भी इस युग में सम्यक् विकास हुआ।



खजुराहो का मंदिर (कन्दरिया महादेव)

प्रश्न

१. पूर्वमध्यकालीन भारतीय संस्कृति और समाज पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखो।

अध्याय १२

भारत में इस्लाम का प्रवेश और मुस्लिम आक्रमण

भारत में इस्लाम का प्रवेश :—मुहम्मद साहब जो इस्लाम के प्रवर्त्तक थे, अरब की घूमन्तू जातियों को संगठित कर चुके थे। उनके बाद के चार खलीफाओं अबू-बकर, उमर, उस्मान और अली में भी बड़ा धार्मिक जोश था और इनके आधिपत्य में इस्लामी साम्राज्य धार्मिक एकता के आधार पर काफी विस्तृत हो गया था। ६६१ ई० के बाद के खलीफा जो धर्मगुरु कम और बादशाह अधिक थे, अपनी सत्ता का विस्तार करते हुए धीरे-धीरे इस्लामी साम्राज्य के अन्तर्गत चीन की पश्चिमी सीमा से लेकर अटलांटिक सागर तक का प्रदेश ला चुके थे और उत्तरी अफ्रीका पर भी इसका प्रभाव था। बड़े-बड़े साम्राज्यों को मटियामेट करके इस्लामी खलीफाओं का साहस ७१२ ई० के पूर्व भारत में बलात् प्रविष्ट होने का न हुआ। इस समय तक भारत विभक्त होने पर भी काफी सशक्त था। ७१२ ई० में मकरान पर सरलतापूर्वक अधिकार करने के बाद मुहम्मद इब्न कासिम ने सिन्ध के राजा दाहिर को आक्रान्त किया। दाहिर और उसकी पत्नी ने वीरतापूर्वक कासिम का प्रतिरोध किया। किन्तु बौद्धों और भाटों ने, जिनका ब्राह्मणों के साथ धार्मिक द्वेष था, कासिम की सहायता की जिससे कासिम विजयी हुआ। घर की फूट ने सिन्ध में इस्लाम का झण्डा गाड़ दिया और धीरे-धीरे मुल्तान और ब्राह्मणाबाद तक अरब आक्रमणकारियों का प्रभाव बढ़ गया। इस देश में अरब-शासन भी स्थापित हो गया। किन्तु भारत में अरब-शासन की जड़ न जम सकी। भारत में राजपूतों के सशक्त पड़ते ही भारत से अरब आधिपत्य विनष्ट हो गया।

महमूद गजनवी का आक्रमण

भारत में इस्लामी राज्य की स्थापना का प्रयास तुर्कों के द्वारा दसवीं शती ईसवी में हुआ, जिसका स्थायी प्रभाव भारत की राजनीति और संस्कृति पर पड़ा। तुर्क मध्य एशिया के हूणों के ही वंशज थे। गजनी के तुर्कों की शक्ति नवीं

और दसवीं शती में काफी बढ़ गयी। इन्हीं तुर्कों का एक सरदार सुबुक्तगीन था जो ९७७ ई० में गजनी का स्वामी बना। इसके अधिकार में खुरासान तक का क्षेत्र था। इसी के शासन-काल में तुर्कों ने पहले-पहल पंजाब में घुस-पैठ करने की चेष्टा की थी। इसका पुत्र महमूद, जो इतिहास में सुल्तान महमूद गजनवी के नाम से जाना जाता है, इस्लाम के प्रति अटूट श्रद्धा रखता था और मूर्ति-पूजक हिन्दुओं का जन्मजात शत्रु था। वह बहुत बड़ा लोभी और क्रूर भी था। भारत में इस्लाम का प्रचार करने का बहाना बनाकर भारत में लूट-पाट करने के लिए इसने एक बहुत बड़ी सेना एकत्र की और १००० ई० में भारत पर टूट पड़ा। अगले छब्बीस वर्षों में (१०००-१०२६ ई० तक) इसने भारत पर १७ बार आक्रमण करके अनेक हिन्दू राजवंशों का अन्त किया, असंख्य मंदिरों को तोड़ा और प्रभूत धन लूट कर गजनी वापस गया। इसके आक्रमणों का कोई राजनीतिक उद्देश्य न था।

महमूद गजनवी का पहला आक्रमण पेशावर होकर पंजाब पर हुआ। पंजाब का राजा जयपाल गजनवी से पराजित हुआ और महमूद गजनवी का पंजाब के काफी हिस्से पर अधिकार हो गया। १००४ ई० में महमूद गजनवी ने पंजाब पर फिर आक्रमण किया। जयपाल के उत्तराधिकारी आनन्दपाल को हराया। आनन्दपाल पराजित होकर कश्मीर भाग गया। अन्य आक्रमणों में विजय प्राप्त करते हुए महमूद गजनवी का आधिपत्य धीरे-धीरे पंजाब के राजाओं, मुल्तान के शिया सम्प्रदाय वाले सुल्तानों, कन्नौज के प्रतिहारों, महोबे के चन्देलों आदि पर स्थापित हो गया। हिन्दुओं के मन्दिरों को तोड़ने से महमूद गजनवी को प्रचुर धन प्राप्त हुआ। उसने नगरकोट, मथुरा, थानेश्वर और कन्नौज के मन्दिरों को लूटा। १०२२ ई० में महमूद गजनवी का सोमनाथ पर आक्रमण हुआ। सोमनाथ के मन्दिर को तोड़कर वहाँ से भी वह मनों सोना, मोती तथा बहुमूल्य रत्न आदि उठाकर गजनी ले गया।

१०३० ई० में महमूद गजनवी की मृत्यु हुई। उसके मरते ही गजनवी राज्य का पतन हो गया। इसके आक्रमण का भारत की राजनीति पर कोई स्थायी प्रभाव तो न पड़ा किन्तु हिन्दुओं की कमजोरियाँ जाहिर हो गयीं और भारत पर विदेशी आक्रमणकारियों के लिए मार्ग खुल गया।

मुहम्मद गोरी के आक्रमण—

जिन दिनों गजनी राज्य का पतन ही रहा था, गजनी के उत्तर में एक अन्य तुर्क वंश शक्तिशाली हो रहा था। इसी वंश का एक प्रतापी बादशाह शहाबुद्दीन गोरी था, जिसको भारत पर तुर्कों का राजनीतिक प्रभाव डालने में महमूद गजनवी की अपेक्षा अधिक सहायता मिली। जिस समय मुहम्मद गोरी ने भारतवर्ष पर आक्रमण करने की योजना बनायी, उस समय भारत की, विशेषतया उत्तरी भारत की राजनीतिक स्थिति बड़ी ही कमजोर थी। देश स्वार्थी तथा संकीर्ण राजाओं के आपसी झगड़ों से तबाह था। यह बात नहीं थी कि देश में उस समय वीरों का अभाव था किन्तु वीर और प्रबल राजाओं के होते हुए भी यह देश मुहम्मद गोरी जैसे आक्रमणकारी के सामने अशक्त इसलिए था कि यहाँ के वीर और प्रभावशाली राजा संकुचित राजनीतिक दृष्टिवाले थे और उनमें झूठी प्रतिष्ठा तथा आनबान के प्रति अनुचित व्यामोह था।

११७५ ई० में मुहम्मद गोरी ने मुल्तान की विजय की और इसके बाद गुजरात और पंजाब के राजाओं के विरोध में कई धावे किए। ११९१ ई० में मुहम्मद गोरी का सबसे महत्वपूर्ण आक्रमण हुआ। इस आक्रमण में गोरी तथा पृथ्वीराज का संघर्ष हुआ। सरहिंद के पास मुहम्मद गोरी और पृथ्वीराज में भयकर युद्ध हुआ जिसमें पृथ्वीराज को सफलता मिली। मुहम्मद गोरी किसी तरह भारत से भागा। अगले ही बार बहुत बड़ी तैयारियों के साथ मुहम्मद गोरी का दूसरा हमला पृथ्वीराज के विरुद्ध हुआ। इस बार पृथ्वीराज को सफलता न मिली जिसका प्रधान कारण यह था कि उत्तर के तीन प्रसिद्ध



पृथ्वीराज चोहान

राजा कन्नौज का जयचन्द, महोबा तथा कालिंजर का परिमर्दिन चन्देल और गुजरात का सोलंकी राजा भीम पृथ्वीराज के सहयोगी न हुए। पृथ्वीराज तराइन के मैदान में मारा गया और अजमेर तक का हिस्सा गोरी के अधीन हुआ। इस क्षेत्र के शासन के लिए मुहम्मद गोरी ने कुतुबुद्दीन ऐबक को अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया, जिसने भारत में तुर्क शासन की परम्परा की नींव डाली। पृथ्वीराज के प्रतिद्वन्द्वी गहड़वाल राजा जयचन्द को भी गोरी ने अपना शिकार बनाया और कन्नौज पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। कन्नौज के पतन से काशी तक के क्षेत्र पर मुहम्मद गोरी का अधिकार स्थापित हुआ। कुतुबुद्दीन ऐबक ने मुहम्मद गोरी की ओर से गुजरात के सोलंकियों पर आक्रमण किया। उसने ग्वालियर के राज को भी अपने अधीन किया। मुहम्मद गोरी ११९४ ई० में ही भारत से चला गया था किन्तु उसकी ओर से तुर्क राज्य का विस्तार कुतुबुद्दीन तथा बख्तियार कर रहे थे। बख्तियार के आक्रमण से बिहार और बंगाल के राजा नष्ट-भ्रष्ट हो गये। नालंदा का प्रसिद्ध महाविहार इब्न अख्तियार के आक्रमण का शिकार होकर विनष्ट हो गया। बख्तियार ने यहाँ के विशाल ग्रन्थागार में आग लगा दी थी जो महीनों जलता रहा। बख्तियार के आक्रमण से बौद्ध धर्म और संस्कृति को जो क्षति पहुँची उसका वर्णन भारतीय इतिहासकार के लिए खेद का विषय है। बंगाल के सेनवंश के विनाश का कारण बख्तियार का ही आक्रमण हुआ। १२०२ ई० में कालिंजर पर कुतुबुद्दीन ऐबक का अधिकार हुआ और उसी के लगभग चन्देलों का भी पतन हुआ।

१२०५ ई० में मुहम्मद गोरी ने पंजाब के खोंखर विद्रोहियों का निर्दयता-पूर्वक दमन किया। विद्रोह का तो दमन हो गया किन्तु वह स्वयं भी खोंखर विद्रोही के द्वारा १२०६ ई० में मारा गया। उसके मरने के बाद उसका साम्राज्य उसके सरदारों ने बाँट लिया। ताजुद्दीन इलदोस को गजनी का राज्य मिला, नासिरुद्दीन कुबाचा को सिंध और कुतुबुद्दीन ऐबक को शेष भारतीय राज्य प्राप्त हुआ। कुतुबुद्दीन ऐबक ने लाहौर में अपने को स्वतन्त्र राजा के रूप में घोषित किया। अनेक हिन्दू राजाओं ने मुहम्मद गोरी के मरते ही स्वतन्त्र होने की चेष्टा की जिससे जगह-जगह विद्रोह हुए। इन विद्रोहियों

दमन करने में कुतुबुद्दीन ऐवक का शेष जीवन तबाह हो गया तथा कालिंजर को अधीन करने में उसे असफलता भी मिली। १२१० ई० में कुतुबुद्दीन मर गया। उसका उत्तराधिकारी आरामशाह अयोग्य था अतएव तुर्क अमीरों ने इल्तुतमिश को सुल्तान निर्वाचित किया।

प्रश्न

१. मुहम्मद गोरी के आक्रमणों का वर्णन कीजिए।
२. पृथ्वीराज पर नोट लिखिए।

अध्याय १३

भारत में तुर्की शासन की स्थापना

इल्तुतमिश—इल्तुतमिश कुतुबुद्दीन ऐबक का खरीदा हुआ गुलाम था इसीलिए इसके वंश को गुलाम वंश कहा गया। सुल्तान होने के पूर्व वह बदायूं का गवर्नर था। इसके शासन-सूत्र सँभालते ही नासिरुद्दीन कुवाचा और इल्दोज इसके विरोधी हो गये। १२१५ ई० में इल्तुतमिश ने इल्दोज को कैद कर लिया और धीरे-धीरे कुवाचा को भी अपने नियन्त्रण में ले आया। बंगाल दिल्ली सल्तनत का अङ्ग तो था, किन्तु उस पर दिल्ली का पूरा-पूरा नियन्त्रण न था। इल्तुतमिश ने बंगाल पर अपना पूर्ण प्रभाव स्थापित किया। जितने भी विद्रोही राज्य थे उनका एक-एक करके दमन किया तथा रणथम्भौर, ग्वालियर, मारवाड़ पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। दोआब के हिन्दुओं और पंजाब के खोखरों पर प्रभावशाली ढंग से अपना नियन्त्रण स्थापित किया। इस प्रकार इसने कुतुबुद्दीन ऐबक के अनियन्त्रित और अव्यवस्थित शासन तथा राज्य को सुसंगठित और व्यवस्थित किया। इस कारण भारत में तुर्क शासन का वास्तविक संस्थापक इल्तुतमिश को ही मानते हैं। १२३६ ई० में इल्तुतमिश मरा। इल्तुतमिश का उत्तराधिकार उसके बेटे रुकनुद्दीन को मिला।

रजिया—रुकनुद्दीन अयोग्य था, जिसे अमीरों ने हटाकर रजिया को दिल्ली का सुल्तान बनाया। रजिया ने अपने कर्त्तव्य का पालन उचित ढंग से किया। वह भी बड़ी योग्य और सद्गुणी थी। फिर भी स्त्री होने के कारण अमीरों ने इसके शासन को अपना सहयोग न दिया। अमीरों के षड्यन्त्र में वह मारी गयी। रजिया के बाद गुलाम वंश के कई उत्तराधिकारी दिल्ली की गद्दी पर बैठे। अन्तिम शासक नासिरुद्दीन था जिसने गयासुद्दीन बलबन को अपना मन्त्री बनाया। मन्त्री की हैसियत से गयासुद्दीन बलबन ने राज्य को सुचारु रूप से संगठित और शासित किया। १२६५ ई० में नासिरुद्दीन मर गया। इसके

मरने पर गयासुद्दीन बलबन ही दिल्ली का सुल्तान बना। गयासुद्दीन बलबन के राज्यारोहण से बलबन वंश की प्रतिष्ठा बढ़ी और दिल्ली सल्तनत को सुदृढ़ता मिली। गयासुद्दीन बलबन बड़ा कठोर शासक था। इसने राज्य में होने वाले विद्रोहों को नृशंस रूप से दवाया और अपनी धाक कठोर दरबारी नियमों के द्वारा अमीरों पर जमायी। दोआब, मेवात तथा रुहेलखण्ड जिसे कटेहर कहते थे, के हिन्दुओं पर इसने बड़ा अत्याचार किया। १२ वर्ष से अधिक उम्र वाले किसी हिन्दू को जीता न छोड़ा। इसका प्रभाव यह हुआ कि हिन्दुओं की स्वातंत्र्य-चेतना दव गयी। वंगाल का हाकिम तुगरिलबेग भी इसकी अधीनता न मानता था। गयासुद्दीन बलबन ने १२७९ ई० में तुगरिल और उसके मित्रों तथा सम्बन्धियों को मरवा डाला। वहाँ अपने पुत्र बुगरा खाँ को शासक नियुक्त किया। उसने कई मंगोल आक्रमणों का भी प्रतिरोध किया। लगभग १२१७ ई० के मध्य में गयासुद्दीन की मृत्यु हो गयी। इसका उत्तराधिकारी कैकुवाद था जो विलासी निकला। इसकी हत्या जलालुद्दीन खिलजी नामक एक नौकर ने कर दी। इस प्रकार १२९० ई० में जलालुद्दीन ने बलबन वंश का अन्त करके खिलजी वंश के शासन की स्थापना की।

प्रश्न

१. इल्तुतमिश के विजयों तथा कार्यों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

२. गयासुद्दीन बलबन के विषय में आप क्या जानते हैं? उसके कार्यों पर प्रकाश डालिए।

३. रजिया बेगम के विषय में आप क्या जानते हैं?

अध्याय १४

खिलजी वंश

जलालुद्दीन खिलजी :—सुल्तान के रूप में जलालुद्दीन खिलजी का शासन सफल रहा। ७० वर्ष की उमर (१२६० ई०) में वह सुल्तान बना था। काफी बूढ़ा होने पर भी उसने अपने शासनकाल में होने वाले विद्रोहों का सफलतापूर्वक दमन किया। कड़ा के मालिक छज्जू, मेवाती विद्रोहियों तथा आक्रमणकारी मंगोलों के प्रति उसका रुख बहुत कड़ा न था। वह अन्य सुल्तानों की अपेक्षा उदार था। किन्तु उसका उदार दृष्टिकोण तत्कालीन शासन नीति के लिए बहुत हितकर न सिद्ध हुआ। उसके दरबारी उसके विरोधी थे। उसका प्रिय भतीजा अलाउद्दीन भी उसके पीछे षडयन्त्र रचा करता था।

अलाउद्दीन खिलजी :—अलाउद्दीन खिलजी जलालुद्दीन को हटाकर स्वयं राज्य प्राप्त करना चाहता था। सुल्तान की आज्ञा के बिना ही वह दक्षिण की ओर एक बहुत बड़ी सेना लेकर चला गया था। अलाउद्दीन ने देवगिरि के राजा रामचन्द्र पर आक्रमण कर दिया तथा उससे एलिचपुर नगर छीन कर बहुत-सा धन प्राप्त किया। यही लूट का धन उसके भावी ऐश्वर्य का आधार बना। सुल्तान जलालुद्दीन को चाहिए था कि वह अलाउद्दीन को इस गतिविधि को नियन्त्रित करता। उसने कई दरबारी और मित्रों ने सलाह भी दी कि अलाउद्दीन के पास सेना भेज



अलाउद्दीन खिलजी

कर उसे दरबार में पकड़ बुलाया जाय। किन्तु भावुक जलालुद्दीन जो अलाउद्दीन को बहुत मानता था, अलाउद्दीन के विरुद्ध कोई कड़ा क़

न अपना सका। इसके विपरीत स्वयं अलाउद्दीन से मिलने कड़ा नामक स्थान पर निहत्था ही चला गया। उसे विश्वास था कि वह स्नेहपूर्वक विद्रोही अलाउद्दीन को वश में कर लेगा। किन्तु अलाउद्दीन बड़ा छली था। उसने मिलते समय भी स्नेह और सेवा का प्रदर्शन किया और अवसर पाते ही जलालुद्दीन का कत्ल कर दिया। जलालुद्दीन की हत्या की कोई जोरदार प्रतिक्रिया नहीं हुई। एकाध जो विरोधी भी हुए उन्हें अलाउद्दीन ने धन लुटाकर संतुष्ट कर लिया।

जलालुद्दीन खिलजी की हत्या करके अलाउद्दीन खिलजी १२९६ ई० में दिल्ली की सल्तनत का स्वामी हो गया। कड़ा (इलाहाबाद जिले में) से चलकर अलाउद्दीन दिल्ली पहुँचा और जलालुद्दीन के पुत्र को परास्त करके अपनी सत्ता दिल्ली में स्थापित की। १२९८ ई० में मंगोलों की तूफानी हमला दिल्ली पर हुआ। अलाउद्दीन ने भयंकर युद्ध के बाद इन आक्रमणकारी मंगोलों को परास्त किया। देश को ऐसे मंगोल आक्रमणों से सुरक्षित रखने के लिए उसने ५०००० चुने सिपाहियों की सेना तैयार की तथा सीमा के किलों की मरम्मतें करायी। उसके प्रयत्नों का परिणाम यह निकला कि १३०७ ई० के बाद फिर कोई मंगोल आक्रमण अलाउद्दीन के शासनकाल में न हुआ। १२९७ई० में अलाउद्दीन ने गुजरात पर चढ़ाई की और कर्ण बघेला को हराकर गुजरात को दिल्ली की सल्तनत का अंग बनाया। १२९९ ई० में उसने रणथम्भोर पर चढ़ाई की। वहाँ के राजा हम्मीर को लगभग १ वर्ष तक घेरे रहा। अन्त में १३०१ ई० में रणथम्भोर दुर्ग का पतन हुआ। १३०२ ई० में उसने मेवाड़ और अगले वर्ष चित्तौड़ के दुर्ग पर अधिकार किया। इन विजयों से उसकी धाक अन्य राजाओं पर भी जमी तथा धीरे-धीरे उसके अधीन धार, मांडू, उज्जैन, भिलसा, चन्देरी आदि के भी दुर्ग हो गये। इस प्रकार सम्पूर्ण उत्तरी भारत में अपना अधिकार स्थापित करके वह दक्षिण-विजय की ओर उन्मुख हुआ। जब वह कड़ा का सूबेदार था तभी वह देवगिरी तक चढ़ दौड़ा था। तब देवगिरी के राजा रामचन्द्र से उसने एलिचपुर और बहुत-सा धन लेकर छोड़ दिया था। सुल्तान होने पर उसने देवगिरि पर अपना स्थायी अधिकार स्थापित करने का विचार किया। मलिक काफूर नामक

अपने एक सरदार को १३०७ ई० में देवगिरि भेजा और उसे अपने अधीन बनाया। इस बार पुनः उसने देवगिरि के राजा रामचन्द्र को छोड़ दिया तथा उसे अपना करद राजा बना दिया। १३०९ ई० में मलिक काफूर ने देवगिरि के राजा रामचन्द्र की सहायता से वारंगल को अधीन किया। इसके बाद एक-एक करके १३१३ ई० में द्वारसमुद्र, पाण्ड्य, चोल और चेर राज्यों पर भी अपना अधिकार जमाया। ये सभी दक्षिणी राजा अलाउद्दीन के करद राजा हुए। पूरे दक्षिण में अलाउद्दीन का इस प्रकार आधिपत्य स्थापित हो गया। किन्तु देवगिरि के राजा रामचन्द्र के यशस्वी पुत्र शंकरदेव ने विद्रोह कर दिया तथा अलाउद्दीन के प्रतिरोध में प्राण गँवा करके भी उसकी अधीनता स्वीकार न की। उसके मरने के बाद देवगिरि पर हरपालदेव ने अलाउद्दीन के प्रतिनिधि के रूप में शासन प्रारम्भ किया, तथा प्रतिवर्ष अलाउद्दीन को कर देता रहा।

अलाउद्दीन का शासन-प्रबन्ध:—अलाउद्दीन का शासन प्रबन्ध बड़ा अच्छा था तथा उसके शासनकाल में सामान्य जीवन अन्य सुल्तानों के शासनकाल की अपेक्षा नियन्त्रित और शांतिपूर्ण था। उसने अपने विशाल साम्राज्य में प्रचण्ड सैनिक बल के द्वारा आंतरिक विद्रोह का दमन किया था, केन्द्रीय शासन को प्रबल किया था तथा विदेशी (मंगोलों के) आक्रमणों को रोका था। उसे बहुत बड़ी सेना रखनी पड़ी थी अतएव बिकने वाली चीजों के भाव निश्चित कर दिये थे। बाट-बटखरों की जाँच होती थी तथा कम तौलने वाले व्यापारियों को अमनुषिक दण्ड दिया जाता था। व्यापारियों के नाम-पते दर्ज होते थे तथा उनपर सरकारी नियन्त्रण रहता था। राज्य की ओर से भी अन्नादि उपयोगी वस्तुओं का संचित भण्डार स्थापित रहता था। इस प्रकार के मूल्य नियन्त्रण से सामान्य जनता को भी लाभ पहुँचा। राज्य की आय के कई स्रोत थे। वार्षिक कर के अलावा भी वह कई तरह के कर लगाये हुए था। दोआब के हिन्दुओं के विरुद्ध तो उसने अनैतिक ढंग की कर-व्यवस्था चलायी। उनसे पचास प्रतिशत कर लिया जाता था। इस कर-व्यवस्था के परिणामस्वरूप हिन्दू कङ्गाल हो गये थे और दाने-दाने के लिए मुहताज थे। मुसलमान अमीरों पर भी उसने कड़े नियन्त्रण

लगाये। जागीर प्रथा बन्द कर दी और अमीरों तथा दरबारियों का वेतन निश्चित कर दिया। दरबारियों और अमीरों को अपने व्यक्तिगत मामलों के लिए भी सुलतान की आज्ञा लेनी पड़ती थी तथा उनके आपसी मिलने-जुलने पर भी नियन्त्रण था। गबन आदि अपराधों के लिए उन्हें कड़ा से कड़ा दण्ड दिया जाता था। अलाउद्दीन को विद्रोहों की बड़ी आशंका बनी रहती थी। अतएव उसने देशभर में गुप्तचरों का जाल बिछा रखा था। सेना का प्रबन्ध अच्छा था। चूँकि सैनिक बल पर ही उसका विशाल शासन और साम्राज्य टिका हुआ था, अतएव वह सैनिक व्यवस्था पर विशेष ध्यान देता था। सैनिकों को वेतन मिलता था और अमीरों की व्यक्तिगत सेना तथा सैनिकों को उसने अवैध घोषित किया था। जो भी सैनिक थे वे अमीरों के नियन्त्रण में न होकर सीधे सुल्तान के नियन्त्रण में थे और उसी से वेतन तथा काम पाते थे। सुल्तान सैनिकों का बराबर निरीक्षण करता था तथा उनकी बदली भी की जाती थी। उसने घोड़ों को दागने की भी प्रथा चलायी। मुख्य सेना तो दिल्ली में रहती थी किन्तु शेष सेना अनेक टुकड़ियों में विभक्त होकर जगह-जगह बिखरी हुई थी।

कठोर शासन तथा सुदृढ़ सैनिक बल आन्तरिक विद्रोहों तथा असन्तोषों को नियन्त्रित न कर सका। उसके जीवन-काल ही में उसका साम्राज्य विघटित होने लगा। १३१६ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी। मलिक काफूर अलाउद्दीन के शासन-तन्त्र पर हावी था। ३५ दिनों तक तो मलिक काफूर स्वयं ही सुल्तान बना रहा। इसके बाद वह अलाउद्दीन के एक ६ वर्षीय बच्चे को राज्य का स्वामी बनाकर राज्य का भोग करने लगा। उसने अलाउद्दीन के सभी सम्बन्धियों को या तो मरवा डाला या अन्धा करवा दिया। केवल मुबारक शाह ही किसी तरह बचा रहा। इसी मुबारक शाह को, जो अलाउद्दीन का एक पुत्र था, अमीरों ने मलिक काफूर को मारकर गद्दी का हकदार बनाया। इसके शासनकाल में देवगिरि और तेलंगाना दिल्ली सल्तनत का अंग बना। इसका मन्त्री खुसरो बड़ा प्रबल था। वास्तव में मुबारक शाह को जो भी सफलता मिली थी, उसका श्रेय खुसरो को है। वह गुजरात का परवारी जाति का हिन्दू था, जो किन्हीं कारणों से मुसलमान हो गया था। इसने षडयंत्र

करके मुबारक शाह को मरवा दिया और १३२० ई० में स्वयं दिल्ली सल्तनत का सुल्तान बना। सुल्तान होने पर इसने हिन्दू-साम्राज्य को स्थापित करने की चेष्टा की और हिन्दुओं को संगठित होने के लिए तथा मुसलमानी शासन से स्वतन्त्र होने के लिए उभाड़ा। किन्तु हिन्दुओं ने ऊँच-नीच का विचार करके इस 'पतित हिन्दू' की सहायता न की और इसका विशाल और गौरवशाली मनोरथ अपूर्ण रह गया। इसके विपरीत मुसलमान संगठित हो गये। दीपालपुर के हाकिम गाजी तुगलक ने 'इस्लाम' के नाम पर मुसलमानों को एकत्र किया और दिल्ली पर हमला कर दिया। खुसरो मारा गया। गाजी तुगलक स्वयं सुल्तान बना और गयासुद्दीन के नाम से शासन करने लगा।

प्रश्न

१. सिद्ध कीजिए कि दिल्ली के सुल्तानों में अलाउद्दीन सबसे सशक्त और योग्य शासक था।

२. अलाउद्दीन की विजयों और शासन-प्रबन्ध पर प्रकाश डालिए।



अध्याय १५

तुगलक वंश

गयासुद्दीन तुगलक :—यह तुगलक वंश का संस्थापक था। जब वह शासनरूढ़ हुआ तो देश की राजनीतिक और आर्थिक स्थिति बड़ी डावाँडोल थी। केन्द्रीय शासन ढीला पड़ गया था। राजकोष खाली था। गयासुद्दीन तुगलक ने बड़ी योग्यता से शासन का कार्य सँभाला। बिना अतिरिक्त कर लगाये, केवल राजकीय बकाये की वसूली से उसने राज्य की आर्थिक स्थिति को दृढ़ किया। प्रजा के साथ इसका व्यवहार नम्र था और इसका सैनिक संगठन भी सुचारु था। इसने अपने शासनकाल में होनेवाले विद्रोहों का दमन किया। दक्षिण के वारंगल, काकतीय और यादवों को इसने काफी दबा दिया। बंगाल पर भी इसका व्यापक अधिकार स्थापित हो गया। १३२५ ई० में जूना खाँ के षड्यन्त्र से यह मारा गया।

मुहम्मद तुगलक :—जूना खाँ गयासुद्दीन के मरने के बाद मुहम्मद तुगलक की उपाधि से दिल्ली का सुलतान बना। तुर्कों के इतिहास में इसकी बड़ी चर्चा और महत्त्व है। इसके व्यक्तित्व के विषय में इतिहासकार भी एक मत नहीं हैं। इसकी योजनाओं के प्रति कुछ इतिहासकारों की तो यह धारणा है कि वे अविवेकपूर्ण थीं और इनसे देश की तबाही हुई। किन्तु कुछ इतिहासकारों की यह राय है कि तुगलक की योजनाओं का महत्त्व राज-कर्मचारियों और तत्कालीन प्रभावशाली लोगों ने नहीं समझा, फलतः योजनाओं का सम्पादन इस प्रकार से हुआ कि उसकी योजनाओं का प्रभाव कुछ का कुछ हो गया।

मुहम्मद तुगलक का राजनीतिक प्रभाव उत्तरी भारत में सुदृढ़ था। सुदूर दक्षिण में भी इसने अनेक विजय किये। उसने देवगिरि, वारंगल, द्वारसमुद्र तथा माबर के हिन्दू राज्यों का अन्त करके वहाँ मुसलमान शासक नियुक्त किये। इस प्रकार १३२७ ई० तक तुगलक साम्राज्य का शासन-क्षेत्र हिमालय

से दक्षिण में मावर और पश्चिम में लाहौर से लेकर पूर्व में बंगाल तक था। उसका यह विशाल साम्राज्य २३ प्रान्तों में विभक्त था।

तुगलक का शासन-प्रबन्ध और सुधार :—मुहम्मद तुगलक का विशाल साम्राज्य एक बहुत बड़ी सेना से सुरक्षित था। देश भर में सैनिक छावनियाँ बिखरी हुई थीं और गुप्तचरों का भी जाल सारे देश में बिछा था। सैनिकों पर केन्द्रीय सरकार का नियन्त्रण होता था। सैनिकों को वेतन नगद मिलता था तथा उन्हें बहुत अनुशासन में रखा जाता था। राज्य नियमों को तोड़ने वाले हिन्दू हों, चाहे मुसलमान हों, समान रूप से दण्डित होते थे। तुगलक सती-प्रथा को रोकने के लिए प्रयत्नशील हुआ। व्यापार और कला की अभिवृद्धि के लिए भी उसने बड़ा प्रयत्न किया था। मुहम्मद तुगलक का व्यक्तिगत प्रभाव दरबारियों पर था और उसके भय से बड़े-बड़े मुल्ला और दरबारी भी काँपते थे। मुहम्मद तुगलक बड़ा विद्वान् तथा सूझबूझ का गुणी व्यक्ति था।

मुहम्मद तुगलक के जिन कार्यों का प्रभाव राज्य और प्रजा पर सुखद नहीं हुआ उनका विवरण निम्न प्रकार है :—

१३२६-२७ ई० में उसने दक्षिण पर प्रभावशाली ढंग से अपना शासन दृढ़ करने के लिए शासन का केन्द्र दिल्ली से हटाकर दौलताबाद (देवगिरि) कर दिया किन्तु शीघ्र ही उसे अनुभव हुआ कि राजधानी के परिवर्तन से जनता प्रसन्न नहीं है और उत्तरी भारत सैनिक दृष्टि से बड़ा अरक्षित हो गया है। इसलिए उसने पुनः अपने साम्राज्य का केन्द्र दौलताबाद से दिल्ली कर दिया। इस अविवेकपूर्ण परिवर्तन से जनता और राजकोष को बड़ी क्षति पहुँची। दिल्ली तो लगभग उजड़-सी गयी। वैसे योजना अपने में दोषपूर्ण न थी यदि वह राजधानी परिवर्तन का कार्य केवल दफ्तरों के हटने मात्र तक सीमित रखता। दफ्तरों के साथ-साथ दौलताबाद तक पूरी दिल्ली को लाना इसके सिर का ऐसा बोझ हो गया जो उसके उठाये न उठा और बदनाम होना पड़ा।

दोआब का प्रदेश (गंगा-यमुना के बीच का मैदान) बड़ा उपजाऊ था, जहाँ से राजकोष को अधिक कर मिलने की सम्भावना थी। अतएव उसने

दोआब की जनता पर कर की दर दूनी कर दी। उसी साल दोआब में अकाल पड़ गया और जनता में सामान्य कर देने की क्षमता भी नहीं रही। किन्तु मुहम्मद तुगलक ने इस बदली परिस्थिति का ध्यान न रखा और जनता को तबाह करके भी दुना कर वसूला। इसका परिणाम कृषकों पर बहुत बुरा पड़ा। खेती-बारी चौपट हो गयी, राजकोष खाली हो गया, तुगलक बदनाम हो गया और उसका शासन कमजोर पड़ गया।

लगातार मँहगी और अकाल के कारण तुगलक की मुद्रास्थिति कमजोर पड़ गयी थी और देश में सिक्कों का अभाव हो चला था। व्यापार की सुविधा के लिए उसने ताँबे के टनके चलाये जिनका मुद्रामूल्य चाँदी के सिक्कों के बराबर था। जनता ने इन ताँबे के सिक्कों के व्यवहार में आना-कानी की जिससे कारबार ठप-सा हो गया। ताँबे के इन नये सिक्कों पर कोई शाही प्रतीक (चिह्न) नहीं लगा था जिसके कारण नकली सिक्कों के टकसाल घर-घर खुल गये। इस स्थिति को देख मुहम्मद तुगलक ने ताँबे के सिक्कों को वापस ले लिया और उसके बदले सोने-चाँदी के सिक्कों को देने लगा। लोग ताँबे के नकली सिक्कों को चाँदी और सोने के सिक्कों से बदलने लगे। फलतः राजकोष सोने-चाँदी से खाली हो गया।

सबसे बुरी स्थिति तो तब हुई जब कि मुहम्मद तुगलक ने असंख्य धन व्यय करके पौने चार लाख सेना खुरासान जीतने के लिए इकट्ठी की। इस सेना को उसने १ वर्ष का अग्रिम वेतन दिया। किन्तु आक्रमण खुरासान पर न करके इसने हिमालय के छोटे-छोटे राजाओं पर किया, जहाँ प्राकृतिक असुविधाओं के कारण उसकी सेना नष्ट हो गई। युद्ध से लौटे सैनिकों को भी उसने मरवा डाला। इस क्रूर कर्म से मुहम्मद तुगलक बड़ा ही बदनाम हो गया। उसके विरुद्ध जगह-जगह विद्रोह होने लगे। १३३४–३५ ई० के लगभग सुदूर दक्षिण का मावर प्रदेश स्वतन्त्र हुआ, अगले ही वर्ष विजयनगर स्वतन्त्र होकर नवीन राष्ट्र के रूप में उठ खड़ा हुआ। इसके बाद क्रमशः बंगाल, वारंगल, द्वारसमुद्र और कम्पिल स्वतन्त्र हुए। १३४७ ई० में बहमी वंश के नाम से देवगिरि में एक नयी और स्वतन्त्र रियासत की नीव पड़ी। इस प्रकार तुगलक

साम्राज्य धीरे-धीरे विघटित होने लगा। १३५१ ई० में मुहम्मद तुगलक की मृत्यु हो गयी।

फिरोज तुगलक :—मुहम्मद तुगलक के बाद उसका उत्तराधिकारी फिरोज तुगलक हुआ। इसमें धार्मिक उदारता नहीं थी। इसने हिन्दुओं पर जजिया लगाया और ब्राह्मणों पर अत्याचार किया। उसमें सैनिक गुणों का भी अभाव था। फलतः विघटित तुगलकी साम्राज्य के अंगों को वह पुनः संगठित न कर सका। विद्रोहों के दमन के लिए भी उसने समझौते का रुख अपनाया। सैनिक संगठन के नियम ढीले थे। यहाँ तक कि उसने सेना में बूढ़े और अयोग्य सैनिकों को भी रखा।

फिरोजशाह का ध्यान प्रजा-हित पर था। उसने सैकड़ों बाग-बगीचे लगवाये और सरायें, अस्पताल, मदरसे, महल, मसजिदें आदि बनवायीं। नहरें निकलवायीं एवं कुएँ खुदवाये। नदियों पर पुल बँधवाये। अनेक मुस्लिम कन्याओं का ब्याह करवाया तथा बेकार आदमियों को धन्धों में लगाया। उसने कर भी कम कर दिये। फिरोज की मृत्यु १३८८ ई० में हुई। इसके उत्तराधिकारी निर्बल थे। १३९८ ई० भारत पर तैमूर का आक्रमण हुआ। इस समय फिरोज तुगलक का उत्तरधाकारी सुल्तान महमूद दिल्ली का शासक था। महमूद तैमूर के आक्रमण का सामना न कर सका। तैमूर भीषण जन-संहार और धन-जन का अपहरण करते हुए मुल्तान से दिल्ली आ धमका। महमूद ने तैमूरी वेग को रोकने की असफल चेष्टा की, तैमूर के आक्रमण और जनसंहार से दिल्ली उजड़-पुजड़ गयी। दिल्ली को लूटकर तैमूर, मेरठ और हरद्वार होता हुआ समरकन्द वापस चला गया।

१४१२ ई० में महमूद तुगलक की मृत्यु हुई। उसकी मृत्यु के साथ तुगलक साम्राज्य का भी अन्त हो गया।

प्रश्न

१. मुहम्मद तुगलक की योजनायें क्या थीं ? क्या वह पागल था ?

अध्याय १६

सैयद और लोदी-वंश

मुहम्मद तुगलक के मरते ही तुगलक साम्राज्य के बचे-खुचे हिस्सों में भी अराजकता फैल गयी और प्रान्तीय हाकिम स्वतन्त्र होने लगे। १३९९ ई० में जौनपुर स्वतन्त्र हुआ और १४०१ ई० में मालवा तथा गुजरात। दक्षिण में बहमनी और विजयनगर साम्राज्य प्रबल हो रहे थे और मेवाड़ में राजपूतों की भी शक्ति बढ़ रही थी। दिल्ली में तैमूर का प्रतिनिधि खिज्र खाँ राज्य कर रहा था। इसने १४१४ ई० में मुहम्मद तुगलक के उत्तराधिकारी दौलत खाँ को राज्यच्युत करके दिल्ली की सल्तनत पर अधिकार किया। १४२१ ई० से १४३४ ई० तक खिज्र खाँ के पुत्र मुबारकशाह के अधीन दिल्ली रही। इसका शासनकाल अशान्तिपूर्ण था। दोआब, मेवाड़, पूर्वी राजस्थान, पंजाब और मुल्तान में विद्रोह होते रहे जिनके दमन में वह आजीवन व्यस्त रहा। १४३१ ई० में एक षड्यन्त्र का शिकार होने के कारण इसकी मृत्यु हो गयी। इसके उत्तराधिकारी निर्बल थे। १४५१ ई० बहलोल लोदी ने दिल्ली पर अधिकार कर सैयद-शासन का अन्त किया और नये राजवंश की प्रतिष्ठा की।

लोदी वंश :—बहलोल लोदी अफगान था। इसने १४५१ ई० से १४८८ ई० के बीच राज्य किया। यह बहुत लोकप्रिय न था। इसके अफगान, तुर्क और हिन्दू विद्वेष करते थे। फिर भी उसने जागीर आदि को भेंट करके अफगान और तुर्क सरदारों को मिला लिया। जौनपुर के सुल्तान बहलोल लोदी के पक्ष में न थे। बहलोल लोदी ने जौनपुर पर आक्रमण करके उसे दिल्ली सल्तनत में मिला लिया। यह कूटनीतिज्ञ था और तरह-तरह की चालों को चलकर सामन्तों तथा सरदारों को वश में किये रहता था। १४८९ ई० के मध्य में इसकी मृत्यु हो गयी। उसके बाद सिकन्दर लोदी दिल्ली का अधिकारी बना। इसने कुशलतापूर्वक ग्वालियर, धौलपुर, दोआब और रणथम्भौर को अधिकृत किया। बिहार पर भी इसका अधिकार हो गया। फिर भी इसका शासन लोकप्रिय न

था और सरदार इसके विरुद्ध रहते थे। इसमें धार्मिक कट्टरता भी थी तथा हिन्दुओं को बहुत सताता था। न्याय में कठोर था तथा इसकी गुप्तचर व्यवस्था सुगठित थी। आगरा का शहर इसी ने बसाया था। १५१७ ई० में इसकी मृत्यु हो गयी। इसका बेटा इब्राहिम लोदी इसका उत्तराधिकारी हुआ। इब्राहिम लोदी बड़ा घमण्डी, क्रोधी, विनय तथा नीति से रिक्त था। इससे इसके कुछ सरदार, खासकर अलाउद्दीन और दौलत खाँ कुछ विशेष चिढ़े हुए थे। १५२६ ई० में पानीपत के मैदान में बाबर से युद्ध करते हुए इब्राहिम मारा गया। उसकी मृत्यु से लोदी वंश का अन्त हुआ तथा दिल्ली पर मुगलों का आधिपत्य हुआ।

प्रश्न

निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखो।

१. सैयद वंश

२. लोदी वंश

३. दौलत खाँ लोदी

अध्याय १७

मुगल साम्राज्य की स्थापना और बाबर

बाबर :—बाबर मध्य एशिया का मंगोल था। भारतवर्ष में इसका वंश मुगल वंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके बाप का नाम शेख मिर्जा था जो फरगना का स्वामी था। जब बाबर ११ वर्ष का हुआ तो उसके पिता का देहान्त हो गया, इस कारण ११ वर्ष की अवस्था में ही बाबर को अपने पैतृक राज्य की जिम्मेदारियों को सँभालना पड़ा। इसके सगे चाचा और मामा इसके शत्रु थे। इनके षड्यन्त्रों के कारण उसको फरगना और समरकन्द राज्य छोड़ना पड़ा। इन्हीं सब परिस्थितियों के कारण १५०४ ई० के लग-भग फरगना को छोड़कर बाबर को अपनी शक्ति काबुल तथा कन्धार में संचित करनी पड़ी। जब उसकी सत्ता काबुल में सुदृढ़ हो गयी तो उसने भारत की ओर ध्यान दिया तथा भारत में घुस-पैठ करने की चेष्टाएं करने लगा। उस समय भारत की



बाबर

राजनीतिक परिस्थितियाँ बाबर के अनुकूल थी। दिल्ली सल्तनत इब्राहीम लोदी जैसे अशक्त और कायर शासक के अधीन थी। पूरा देश छोटे-छोटे राज्यों में विकेन्द्रित होकर भारत की सुरक्षा के प्रति उदासीन था। पहले बाबर ने कई हमलों के द्वारा पंजाब के कुछ हिस्सों में अपना दखल जमाया। दौलत खाँ लोदी जो इब्राहीम लोदी के विरुद्ध था, बाबर की साँठ-गाँठ में आ गया था और बाबर को दिल्ली पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित कर रहा था। बाबर पंजाब में घुस आया और लगभग पूरे पंजाब को अधिकृत कर लिया। लाहौर के

शासक दौलत खाँ लोदी की मित्रता की उपेक्षा करके उसने दौलत खाँ लोदी को भी अपमानित किया तथा उसकी रियासत को अपने अधीन कर लिया। लाहौर से आगे बढ़कर वह अपनी बड़ी भारी सेना के साथ पानीपत के मैदान में आ जमा। एक लाख सैनिकों के साथ इब्राहीम लोदी ने बाबर का सामना किया, किन्तु इब्राहीम लोदी पराजित होकर मारा गया। बाबर की इस विजय का कारण स्वयं बाबर का प्रभावशाली सेनापतित्व और उसका तोपखाना था। इब्राहीम की कमजोरियाँ और युद्ध सम्बन्धी अनुभवहीनता तथा दौलत खाँ लोदी जैसे देशद्रोहियों का आचरण भी बाबर को सफल बनाने में सहायक हुआ। १५२६ ई० में पानीपत के मैदान को जीत लेने के बाद बाबर का हौसला बढ़ गया और उसने आगे बढ़कर दिल्ली को अधिकृत कर लिया। बाबर की ओर से हिमायूं ने आगे बढ़कर ग्वालियर, बियाना, धौलपुर, जौनपुर, गाजीपुर और कालपी तक के प्रदेश को अपने अधीन किया।

बाबर को मेवाड़ के राणा-साँगा से बड़ा खतरा था। साथ ही अफगान भी विद्रोह के लिए यत्र-तत्र संगठित हो रहे थे। खास करके पूर्व में अफगानों के कई गढ़ स्थापित हो गये थे। राणा-साँगा और अफगानों ने मिलकर बाबर को दिल्ली से बाहर निकालने के लिए प्रयत्न किया। १५२७ ई० में कानवाह नामक स्थान पर राजपूत और अफगानों की संयुक्त सेना जिसकी संख्या लगभग २ लाख थी, लेकर राणा-साँगा बाबर का प्रतिरोध करने के लिए जम गया। बाबर और राणा-साँगा में घोर युद्ध हुआ तथा बाबर के छक्के छूट गये। किन्तु समय ने बाबर का साथ दिया। साँगा पराजित हुआ। इसके बाद बचे-खुचे अफगानों का दम तोड़ने के लिए घाघरा की ओर बढ़ा। चन्देरी के दुर्ग पर उसने अधिकार कर लिया। १५५७ई० में घाघरा के तट पर अफगानों को बुरी तरह से हराया। करीब-करीब सभी अफगानों ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली और बंगाल तक बाबर की धाक जम गयी।

१५३० ई० में बाबर की मृत्यु हो गयी। बाबर की मृत्यु से मुगलों के राजनीतिक विकास सहसा रुक गया। बाबर को शासन को सुचारु रूप से

संगठित करने का भी अवसर न मिला था। फिर भी उसका शासन लोकप्रिय था। वह चरित्रवान था। वह कवि और संगीतज्ञ भी था। चित्रकला से उसका विशेष प्रेम था। अपने परिवार के प्रति उसे बड़ी ममता थी। परम धार्मिक होते हुए भी उसमें धार्मिक उदारता थी और हिन्दुओं के प्रति उदारतापूर्ण दृष्टिकोण रखता था। संकट के समय में भी आत्मविश्वास को न खोना उसके व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेपता थी।

प्रश्न

१. बाबर कौन था ? उसके चरित्र और कार्यों पर प्रकाश डालिए।

२. संक्षिप्त नोट लिखिए।

दौलत खाँ लोदी, राणा-साँगा।

अध्याय १८

हिमायूँ और शेरशाह

हिमायूं—१५३०ई० में बाबर का उत्तराधिकारी और पुत्र हिमायूं दिल्ली की गद्दी पर बैठा। बाबर ने बड़ी लगन के साथ हिमायूं को अपने उत्तराधिकार के लिए प्रशिक्षित किया था और उसे सद्गुणी बनाया था। वह कोमल स्वभाव



हिमायूं

का था तथा बड़ा भावुक था। समय की आवश्यकता और राजनीति की जरूरत को महत्त्व न देते हुए कभी-कभी तो वह ऐसी भावुकता दिखाता था कि उसका परिणाम राज्य और शासन के लिए बहुत ही बुरा होता था। उसमें पिता के प्रति और भाइयों क प्रति निष्ठा थी। पिता की बात मानकर वह अपने भाइयों और राजकर्मचारियों के प्रति इतना उदार था कि वह उनके बुरे से बुरे अपराधों को भी क्षमा कर देता घा। फलतः वह आजीवन भाइयों और राजकर्मचारियों के षड्यन्त्रों का शिकार बना रहा। उसका शासन भी उसके व्यक्तिगत स्वभाव के कारण ढीला-ढाला था। संदिग्ध व्यक्तियों को भी महत्त्वपूर्ण पद दिये हुए था, तथा राजनीतिक स्थिति की गम्भीरता की उपेक्षा करके अनुचित सरलता प्रदर्शित करता था। समय की महत्ता को भी नहीं जानता था, तथा टाल-मटोल करने की आदत थी। आमोद-प्रमोद में उसका बड़ा मन लगता था तथा अफीम खाने का दुर्व्यसन भी उसमें था।

इन कमजोरियों के बावजूद उसका प्रारम्भिक शासन सफल रहा। राज्यारोहण के समय जो अमीर और जागीरदार तथा सम्बन्धी उससे असन्तुष्ट

थे उन्हें उसने जागीर आदि बाँटकर सन्तुष्ट कर लिया। असन्तुष्ट भाइयों को भी उसने प्रसन्न रखने की कोशिश की। उसके तीन भाई थे जिनके नाम कामरान, अस्करी और हिंदाल थे। कामरान को उसने कावुल और कन्धार दिया। किन्तु कामरान को इससे सन्तोष न हुआ और जिद करके हिमायूं से पंजाव तक प्राप्त कर लिया। कामरान की हिमायूं के प्रति कोई निष्ठा नहीं थी। केवल भ्रातृप्रेम की भावुकता में आकर कामरान के हाथों में कावुल, कन्धार तथा पंजाव का प्रदेश देना, मुगल साम्राज्य की सुरक्षा के लिए वड़ा घातक हो गया। पंजाव से मुगल सेना को सैनिक मिलते थे, जो कामरान ने रोक दिया। इसका वहुत बुरा प्रभाव मुगल सेना पर पड़ा। सेना कमजोर हो गयी। साथ ही कावुल कन्धार से होकर भारत को आने वाले रास्ते भी हिमायूं के अधिकार के वाहर हो गये। अस्करी को उसने सम्भल का प्रदेश और हिन्दाल को अलवर का क्षेत्र दिया। ये भाई भी अपनी-अपनी जिम्मेदारियों का निर्वाह न कर सके तथा अपने कुशासन से इन क्षेत्रों में हिमायूं के शासन को वदनाम कर दिया।

हिमायूं के दो शत्रु थे। विहार के अफगान जिन्हें शेरशाह का नेतृत्व प्राप्त था तथा गुजरात का बहादुरशाह। इन दोनों पर ही प्रारम्भ में हिमायूं को कुछ सफलता मिली, किन्तु आगे चलकर ये दोनों ही हिमायूं के दुर्भाग्य के कारण वने।

विहार में अफगानों का संगठन हिमायूं के लिए खतरा था। दौलत खाँ लोदी भी अफगानों से मिल गया था। १५३१ ई० में हिमायूं ने अफगानों को हराया और उनसे चुनार प्राप्त कर लिया। चुनार का किलेदार, जो एक तरह से उसका स्वामी भी था, शेरशाह था। शेरशाह की शक्ति बढ़ रही थी। हिमायूं चुनार जीतकर भी किले को अपने अधीन न कर सका। शेरशाह ने ने आत्मसमर्पण करके मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली थी। यह उसका ढोंग था, क्योंकि वह समर्पण करके अपनी ताकत को भविष्य के लिए सुरक्षित रखना चाहता था। इस चतुरता का लाभ शेरशाह को और हानि हिमायूं को पूरी-पूरी मिली। वहादुरशाह गुजरात से मालवा और चित्तौड़ की ओर बढ़ रहा

था। उसके अधीन अहमदनगर, बरार और खानदेश आ चुके थे। बहादुरशाह चित्तौड़ को जीतने तेजी से बढ़ रहा था। १५३५ ई० में मन्दसौर में हिमायूं ने बहादुरशाह को हरा दिया और दिल्ली के मिर्जाओं के विद्रोह का भी दमन किया। बहादुरशाह हारकर पुर्तगालियों की शरण में गया तथा उसका प्रदेश मालवा और गुजरात हिमायूं ने अस्करी के हाथों में सौंप दिया। यह उसकी भूल थी। अस्करी ने मालवा और गुजरात की सुरक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं किया। शीघ्र ही ये दोनों प्रान्त मुगल साम्राज्य से निकलकर पुनः बहादुरशाह के कब्जे में आ गये। १५३ः ई० में बहादुरशाह को मालवा और गुजरात पर पुनः अधिकार करने में सफ़ता मिली तथा उसका आतंक इस तरह बढ़ गया कि दिल्ली तक की सुरक्षा की खतरे में पड़ गयी। हिमायूं बहादुरशाह की बढ़ती शक्ति से परेशान ही था कि शेरशाह-बिहार में धूम मचाने लगा। बहादुशाहशाह को छोड़ हिमायूं ने शेरशाह की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया। उसने चुनार पर आक्रमण किया। किला जीतने में कुछ समय लगा कि इसी बीच शेरशाह ने रोहतासगढ़ में अपनी शक्ति बढ़ा ली तथा बंगाल तक के प्रान्त को अपने प्रभाव में ले लिया। इसके बाद शेरशाह ने बड़ी चतुरी से काम लिया। चुनार के दुर्ग पर हिमायूं का अधिकार हो जाने दिया तथा बिना रोक-टोक मुगलों की सेना को बंगाल तक बढ़ जाने दिया। जब हिमायूं बंगाल में पहुँच गया तो हिन्दाल ने विश्वासघात किया और उसने दूरस्थ हिमायूं की सेना को रसद-पानी भेजना बन्द कर दिया। उसने स्वयं आगरे पर अधिकार कर लिया और अपने को दिल्ली का बादशाह घोषित किया। बिना रसद-पानी के बंगाल में हिमायूं की सेना तबाह हो गयी और उसमें बीमारी फैल गयी। किसी तरह जब हिमायूं अपनी महती सेना लेकर वापस लौटने लगा तो पाया कि शेरशाह ने सभी रास्तों पर नाकेबन्दी कर ली है और घाटों पर छेंक लिया है। जगह-जगह शेरशाह के छापामार हमलों में हिमायूं तबाह हो गया। १५३९ ई० में शेरशाह और हिमायूं के बीच चौसा में घोर युद्ध हुआ जिसमें हिमायूं मरते मरते बचा। इसी बीच कामरान भी विद्रोही हो गया। इस दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थिति में अन्तिम बार वह बिलग्राम नामक स्थान में शेरशाह से भिड़ा। इस बार भी हिमायूं हारा। हारकर अनेक कठिनाइयों को झेलता हुआ किसी

प्रकार १५४३-४४ई० तक फारस पहुँचा। वहाँ के बादशाह ताहमस्प ने उसकी आवभगत की तथा सैनिक सहायता देने का वचन दिया।

हिमायूँ का भारत लौटना :—हिमायूँ फारस में लगभग १० वर्षों तक रहा। ताहमस्प से उसको १२००० सिपाहियों की सहायता मिली और उसने कन्धार जीत लिया। १५५४-१५५५ ई० में भारत की राजनीतिक स्थिति पुनः निर्बल थी और दिल्ली पर सिकन्दरशाह का अधिकार था। हिमायूँ ने पंजाब होकर भारत में प्रवेश किया तथा सिकन्दरशाह को हटाकर पुनः दिल्ली तथा आगरे को अधिकृत कर लिया। अभी उसका एक और प्रबल शत्रु आदिलशाह था, जो अफगानों का नेता था। किन्तु हिमायूँ १५५६ ई० में ही मर गया। सूर-शाही को समाप्त करने तथा आदिलशाह को पराजित करने का हिमायूँ द्वारा छोड़ा हुआ कार्य उसके उत्तराधिकारी अकबर द्वारा सम्पन्न हुआ।

शेरशाह और शूरवंश :—हिमायूँ की असफलतायें शेरशाह की सफलतायें थीं। यह एक-साधारण जागीरदार का पुत्र था। उसका बचपन का नाम फरीद खाँ था। शेर खाँ इसकी उपाधि थी, जो इसे एक शेर मारने के कारण मिली थी। फरीद खाँ या शेर खाँ का पिता सहसराम में रहता था। इसका नाम हसन था। इसकी सगी माँ मर गयी थी। सौतेली माँ फरीद खाँ के साथ दुर्व्यवहार करती थी। सौतेली माँ के व्यवहार से ऊब कर फरीद खाँ १४९४ ई० में जौनपुर चला आया जहाँ उसने फारसी का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। विद्याभ्यास से फरीद खाँ ने बड़ी प्रतिभा दिखाई। इस कारण फरीद के सम्बन्धियों ने उसके पिता के पास भेज दिया, वहाँ वह कुछ दिनों तक पिता की जागीरदारी का प्रबंध देखता भालता रहा। किन्तु वह बहुत दिनों तक अपने बाप के पास न रह सका। माँ से उसकी न पटी, अतएव १५१८ ई० में पुनः घर छोड़कर नौकरी की खोज में बाहर निकल गया। उसने दो



शेरशाह

वर्षों तक बिहार के सूबेदार बहर खाँ के यहाँ नौकरी की तथा पिता हसन की मृत्यु के बाद बाबर की कृपा से अपने पिता की जागीरदारी का स्वामित्व प्राप्त किया। कुछ दिनों बाद बहर खाँ भी मर गया। वह बहर खाँ के उत्तराधिकारी जमाल खाँ का संरक्षक बना। संरक्षक के रूप में धीरे-धीरे इसने अपनी प्रतिभा और प्रभाव का प्रदर्शन प्रारम्भ किया। बंगाल के सूबेदार को हराकर उसने बिहार की सूबेदारी की सुरक्षा की। चुनार की दुर्गस्वामिनी से अपना विवाह करके वह चुनार का स्वामी बना। १५३१ ई० में जब हिमायूँ ने चुनार पर आक्रमण किया तो उसने बड़ी चतुरता से दुर्ग की रक्षा की और अधीनता स्वीकार करके अपनी शक्ति को बचाया तथा मौका पाते ही बंगाल के सुल्तान पर आक्रमण करके गौड़ तक के प्रदेश को अधिकृत कर लिया। गौड़ विजय के बाद उसकी सीधी टक्कर हिमायूँ से ही होने लगी। जब हिमायूँ शेरशाह के विरुद्ध बढ़ा तो हिमायूँ को ६ मास तक चुनार में उलझाये रहा और इसी बीच अपनी सैनिक शक्ति पुष्टि की। इसके बाद उसने हिमायूँ को बंगाल तक बढ़ जाने दिया। जब हिमायूँ बंगाल से लौटा तो शेरशाह ने चौसा और बेलग्राम (कन्नौज के पास) के युद्ध में उसे हराकर दिल्ली और आगरा तक का हिस्सा प्राप्त कर लिया। हिमायूँ का पीछा करते हुए वह लाहौर तक गया। इस प्रकार बिना किसी युद्ध के ही वह पंजाब का स्वामी बन बैठा।

पंजाब से बंगाल तक के प्रदेश पर अपना स्वामित्व स्थापित कर लेने के बाद कुछ समय उसने सीमा की सुरक्षा और आन्तरिक प्रदेशों (मुख्यतया बंगाल) के विद्रोहों के दमन में बिताया। तदुपरान्त अपनी विजय-वाहिनी को लेकर अन्य राज्यों की विजय में प्रयत्नशील हुआ। उसने एक-एक करके मालवा, रायसेन, सिन्धु, मुल्तान, जोधपुर और चित्तौड़ अधिकृत किया। शेरशाह की अन्तिम विजय-यात्रा कालिञ्जर के विरुद्ध हुई। कालिञ्जर पर तो उसकी विजय हुई; किन्तु एक दुर्घटना का शिकार होकर १५४५ ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

शेरशाह का शासन प्रबन्ध :—शेरशाह की कृति का महत्त्वपूर्ण आधार उसका शासन-प्रबन्ध है। उसने परम्परागत शासन-प्रणाली में कुछ ऐसे

सुधार लागू किये जिनका अनुकरण अकबर तथा उनके उत्तराधिकारियों ने भी किया। वह निरंकुश शासक था किन्तु शासन में उदारतापूर्ण दृष्टिकोण अपनाता था। प्रजाहित और साम्राज्य की सुरक्षा उसकी शासन-प्रणाली के प्रधान उद्देश्य थे। उसमें धार्मिक सहिष्णुता थी और शासन में नौकरी के लिए हिन्दू और मुसलमान दोनों ही के लिए समान रूप से द्वार खुले थे। वह प्रत्यक्ष रूप से, मुख्यतया केन्द्रीय शासन की निगरानी करता था। उसका साम्राज्य शासन की सुविधा के लिए ४७ सूबों में बँटा था। प्रत्येक सूबे की छोटी इकाइयाँ सरकार, परगना और गाँव थीं। सूबों का प्रधान अधिकारी कोई अफ़गान होता था, सरकार की संरक्षता शिकदारे शिकदार करता था। परगनों के कर्मचारी शिकदार, अमीन, खजांची, मुन्सिफ, हिन्दी लेखक और फारसी लेखक होते थे। गाँवों के अधिकारी मुकद्दम, चौधरी और पटवारी थे। शिकदार सैनिक अधिकारी था, अमीन माल का काम करता था, मुन्सिफ न्याय करता था, और कोष की सुरक्षा खजांची द्वारा होती थी। कर-निर्धारण के पूर्व किसानों की सारी भूमि नाप डाली गयी थी और उस पर पैदावार का ¼ कर नियत कर दिया गया था। कर उगाहने में जो अधिकारी गड़बड़ी करता उसे वह कड़ा से कड़ा दण्ड देता था। कर-निर्धारण में वह जितनी छूट देता, वसूलने में उतनी ही कड़ाई करता। कर सामान्यतया रुपये के रूप में लिया जाता था, यद्यपि अन्न के रूप में भी कर जमा करने की सुविधा थी। उसका सैनिक प्रबन्ध भी सुचारु था। सिपाहियों की भर्ती और प्रशिक्षण वह अपनी ही देख-रेख में करता था। सिपाहियों तथा उनके घोड़ों की हुलिया दर्ज रहती थी तथा घोड़ों को दागा जाता था। फौजियों को वेतन नगद और नियत समय पर ही मिलता था। सिपाहियों को अनुशासन का नियम कड़ाई से पालन करना पड़ता था। जो सिपाही उद्दण्डतावश कृषि को हानि पहुँचाता उसे कठोर दण्ड मिलता था। उसकी स्थायो सेना में १५००० घुड़सवार, ५००० हाथी और २५००० पैदल तथा एक विशाल तोपखाना था। न्याय की भी व्यवस्था सुन्दर थी और निष्पक्ष न्याय की ओर जोर दिया जाता था। चोरी, डकैती को रोकने की जिम्मेदारी आमिल और शिकदार पर थी। चोरी का माल बरामद न होने पर अधिकारियों

से ही चोरी का धन वसूला जाता था। हिन्दुओं के उत्तराधिकार सम्बन्धी विवाद उनकी पंचायतों में ही तय हो जाते थे। यातायात की सुविधा के लिए सड़कों पर शेरशाह ने विशेष ध्यान दिया और अनेक सड़कों का निर्माण किया जिनमें ये चार प्रसिद्ध हैं—

(१) सोनार गाँव (बंगाल) से रोहतासगढ़ (पंजाब) तक।

(२) आगरा से बुरहानपुर तक।

(३) आगरा से बियाना होती मारवाड़ की सीमा तक।

(४) लाहौर से मुल्तान तक।

इन सड़कों पर यात्रियों की सुविधा के लिए उसने सरायों की स्थापना की थी तथा छायादार वृक्ष लगवाये थे। डाक की व्यवस्था भी थी, अस्पतालों का भी प्रबन्ध था। शेरशाह बड़ा दानी भी था और विद्वानों का आदर करता था।

शूरी वंश का पतन :—शेरशाह का शासनकाल कुल ५ वर्षों तक सीमित रहा। उसके बाद उसका बेटा इस्लामशाह अगले ९ वर्षों तक किसी तरह राज्य खेता रहा। किन्तु इसके बाद स्थिति भिन्न हो गई। अफगानों में बड़ी फूट फैल गयी और शूरी साम्राज्य दो राज्यों में विभक्त हो गया। पश्चिमी प्रान्तों का केन्द्र दिल्ली थी जो शिकन्दरशाह के अधीन थी। सूरी साम्राज्य का पूर्वी क्षेत्र आदिलशाह के अधीन था। हिमायूं के द्वारा सिकन्दरशाह और उसके शासन का पतन हुआ और अकबर के द्वारा आदिलशाह तथा उसके अधीन राज्य का। इस प्रकार शूरी साम्राज्य सदा के लिए विशाल मुगल साम्राज्य में विलीन हो गया।

प्रश्न

१. हिमायूं की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ क्या थीं? उसने उन पर कैसे काबू पाया?

२. शेरशाह के चरित्र और कार्यों पर प्रकाश डालिए।

३. शेरशाह के शासन-प्रबन्ध का विवरण प्रस्तुत कीजिए।

अध्याय १९

अकबर

हिमायूँ का पुत्र और उत्तराधिकारी जलालुद्दीन अकबर भारतीय इतिहास में बहुत सम्मान का स्थान रखता है। इसका बाल्यकाल संकटपूर्ण स्थिति में बीता। १३ वर्ष की अवस्था में ही उसे राज्यभार सँभालना पड़ा। जिस समय इसे उत्तराधिकार मिला, मुगलों का भारतीय साम्राज्य केवल पंजाब तक ही सीमित था। दिल्ली में आदिलशाह सूर और उसके मन्त्री हेमू का प्रबल शासन था। अकबर ने बैरम खाँ की संरक्षता में शासन प्रारम्भ किया। दिल्ली को अधिकृत करने के लिए पानीपत के मैदान में अफगानों को पराजित किया और आलिदशाह और हेमू के साथ दिल्ली, आगरा और जौनपुर तक का हिस्सा छीन लिया। जब इस प्रकार अकबर की शक्ति प्रबल हुई और वह वयस्क हुआ तो १५६० ई० में बैरम खाँ को हटाकर पूर्णरूपेण शासनाधिकार अपने हाथों में ले लिया। शासनसूत्र सँभालने पर वह सम्पूर्ण भारत को मुगल साम्राज्य के अन्तर्गत लाने की योजनाएँ बनाने लगा। अकबर ने समझा कि भारत में मुगल साम्राज्य की स्थिति और प्रतिष्ठा तभी सम्भव है जब कि उसे राजपूतों का सहयोग प्राप्त रहे। राजपूतों के प्रति उसने साम, दाम, दण्ड और भेद, चारों ही नीतियों को अपनाया। पहले तो धार्मिक पक्षपात की नीति का परित्याग करके उसने राजपूत ही नहीं अपितु सारे हिन्दुओं की प्रियता प्राप्त की। १५६३ई० में तीर्थकर और १५६४ई० में



अकबर

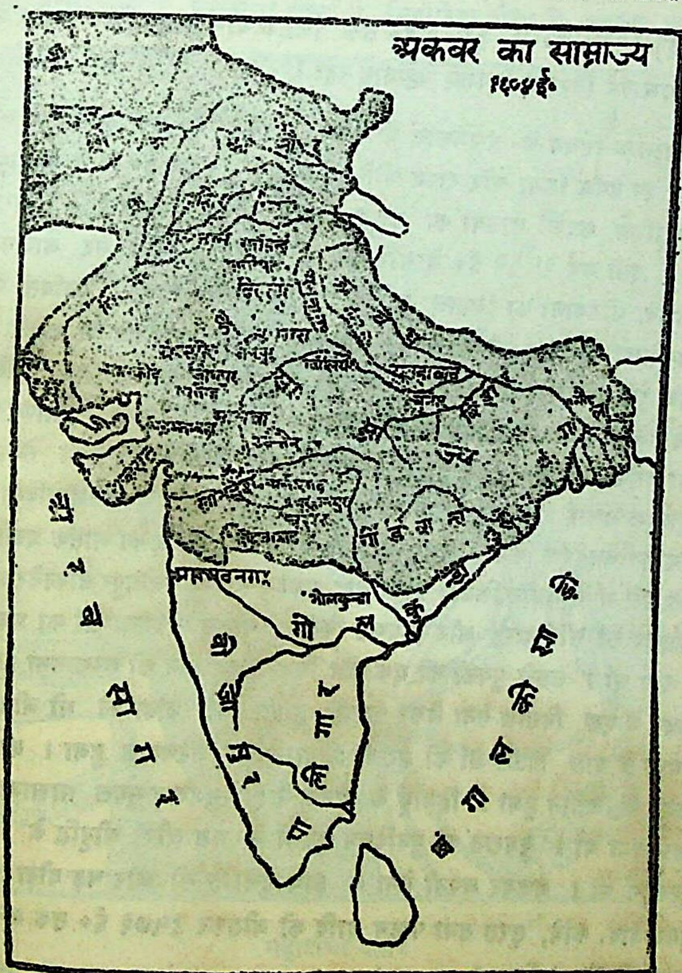
जजिया नामक कर बन्द कर दिया। हिन्दुओं और राजपूतों को सेना तथा शासन में महत्त्वपूर्ण तथा जिम्मेदारियों के पद दिये तथा नौकरियों और नियुक्तियों में भेदभाव का अन्त किया। बीरबल,टोडरमल जैसे हिन्दुओं ने मुगल साम्राज्य की सुरक्षा और सुव्यवस्था के लिए महत्त्वपूर्ण योग दिया था।

राजपूतों से मैत्री सम्बन्ध को स्थायित्व देने के लिए अकबर ने मुगलों और राजपूतों के बीच वैवाहिक सम्बन्धों की प्रथा चलायी। उसने कई राजपूत-कन्याओं का विवाह अपने वेटों से किया। स्वयं अपना भी विवाह प्रसिद्ध राज घरानों में किया। १५६२ ई० में आमेर के राजा भारमल की कन्या से अपना विवाह किया इन वैवाहिक सम्बन्धों को मेवाड़ के शिशोदियों और रणथम्भौर के हाड़ा राजपूतों ने अवमानना की दृष्टि से देखा।

जिन राजपूतों ने न तो अकबर की अधीनता स्वीकार की, न वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया और न दरबार में जाकर नौकरियाँ ही कीं,उनके साथ अकबर ने युद्धनीति अपनायी। उनके विरुद्ध उसने अपनी शक्ति का प्रबल प्रदर्शन किया। कभी-कभी अकबर दो स्वतन्त्र राजपूत रियासतों को भेदनीति से लड़ा देता था। फिर एक-एक करके दोनों ही रियासतों को जर दबोचता था। इन रियासतों के अधीन सामन्तों को वह विद्रोह करने के लिए बढ़ावा देता था। जरूरत पड़ने पर इन्हें स्वतन्त्र रियासतों के रूप में मान्यता भी देता था। रणथम्भौर के विरुद्ध में सुर्जन हाड़ा, मारवाड़ के विरुद्ध में राजा उदय सिंह, बीकानेर के विरुद्ध में राव कल्याणमल को इसी प्रकार प्रोत्साहन देकर उक्त राज्यों को विभक्त और विघटित किया था। राजपूतों की शक्ति कभी बढ़ने न पावे, इसके लिए वह नौकरी करने वाले राजपूतों को उनके पैतृक राज्यों से बहुत दूर नियुक्त करता था। राजपूत दुर्गों में मुसलमान सैनिकों की नियुक्तियाँ करता था।

अकबर का साम्राज्य विस्तार:—जब अकबर ने राज्यभार संभाला तब उसके अधिकार में पंजाब तथा दिल्ली और बिहार के कुछ हिस्से थे। बंगाल में अफगानों का प्रभाव था और दक्षिण में बहमनी और विजयनगर प्रबल थे। गुजरात और राजस्थान पर भी मुगल शासन का कोई प्रभाव

नहीं था। किन्तु धीरे-धीरे अकबर ने विजयों द्वारा अपने साम्राज्य का विस्तार किया। उसकी विजयों का इतिहास तीन काल-क्रमों में बांटा जा सकता है।



(१) १५५८ से ७६ ई० तक जिसके बीच सिन्ध और कश्मीर को छोड़कर समस्त उत्तरी भारत को अपने अधीन किया।

(२) १५८० से ९६ ई० तक जिसके बीच उसने पश्चिमी और पश्चिमोत्तर सीमा के राज्यों को नियोजित किया।

(३) १५९७ ई० से १६०१ ई० तक जिसके बीच वह दक्षिण भारत में अपने साम्राज्य विस्तार के लिए चेष्टावान् रहा।

साम्राज्य-विजय के प्रथमकाल में अर्थात् १५७३ ई० तक अकबर ने कई विद्रोहों का दमन किया और राज्य जीते। १५६१–१५६२ ई० में बाजबहादुर को पराजित करके मालवा का उपजाऊ प्रदेश अपने साम्राज्य के अन्तर्गत किया। इसी वर्ष १५६२ ई० में गोंडवाना की रानी दुर्गावती पर आक्रमण कर उसने गोंडवाना का विशाल साम्राज्य अपने अधीन किया। दुर्गावती पर अकबर द्वारा आक्रमण अकबर की साम्राज्यकामना और धनलिप्सा का प्रमाण है, क्योंकि दुर्गावती और अकबर में न तो कोई वैमनस्यता थी और न युद्ध के लिए अकबर ने कोई कारण ही बताया था। इन दो विजयों से मुगल साम्राज्य की सीमा नर्मदा नदी तक पहुँच गई। इधर राजस्थान में भी अकबर की सेनाओं ने हलचल मचाई। मेवाड़ के प्रसिद्ध दुर्ग चित्तौड़ पर चढ़ाई करके शिशोदियों के गौरव का अपहरण किया। रणथम्भौर पर भी अकबर ने युद्ध का आतंक प्रदर्शित करके उसे अपने अधीन किया। इसके बाद अकबर ने क्रमशः जोधपुर, बीकानेर और कालिञ्जर को भी परास्त और अधिकृत किया। बंगाल में दाऊद खाँ का प्रभाव बढ़ रहा था। उससे मुगलों की एक बार फिर टक्कर होने की सम्भावना हुई। अकबर ने एक विशाल सेना लेकर पटना, हाँसी, गढ़ी टाँडा को भी जीतकर बर्धमान के पास दाऊद खाँ को हराया। दाऊद खाँ शरणापन्न हुआ। बंगाल अकबर के अधीन हुआ। हिमायूँ के समय में ही गुजरात मुगल साम्राज्य से निकल गया था। गुजरात की पुनर्विजय मुगलों के यश और श्रीवृद्धि के लिए महत्त्वपूर्ण थी। अकबर अपनी सेना के साथ गुजरात की ओर चढ़ दौड़ा तथा अहमदाबाद, कांबे, सूरत तथा पाटन आदि को जीतकर १५७३ ई० तक सम्पूर्ण गुजरात को विजय किया।

अकबर को चित्तौड़ पर एक बार फिर हमला करना पड़ा। पहली बार

जब अकबर ने चित्तौड़ जीता था तो चित्तौड़ उदयसिंह के अधिकार में था। उदयसिंह एक कायर और भीरु राजा था। किन्तु उदयसिंह के मरने के बाद उसके उत्तराधिकारी महाराणा प्रताप ने शिशोदिया गौरव के अनुकूल राज्य-



महाराणा प्रताप

संचालन किया। राणाप्रताप ने अकबर की अधीनता न स्वीकार की और उसके साथ रोटी-बेटी का सम्बन्ध भी अपमानजनक और अप्रिय समझा। अकबर का सचिव और सेनापति मानसिंह भी प्रताप सिंह से वैर रखता था।

साम्राज्यकामी अकबर और विवेकहीन मानसिंह के संयुक्त प्रयत्न से सलीम के साथ प्रताप के विरुद्ध एक सेना भेजी गयी। महाराणा प्रताप और अकबर के बीच जो संघर्ष प्रारम्भ हुआ वह लगभग एक चौथाई शताब्दी तक चलता रहा। इस संघर्ष का इतिहास भारतीय इतिहास का गौरवपूर्ण अध्याय है। महाराणा प्रताप बड़ा धीर, वीर और स्वाभिमानी था। कष्ट झेल कर भी उसने अकबर की अधीनता स्वीकार न की जो उसके गौरवशाली और उत्कृष्ट मनोबल का सूचक है।

अकबर और प्रताप के बीच हल्दी घाटी में घनघोर युद्ध हुआ। आरम्भिक सफलताएँ तो प्रताप के पक्ष में थीं, किन्तु युद्ध के दिन शाम को विजयश्री अकबर के पुत्र सलीम के हाथों लगी। प्रताप की सेना हार गई। हार कर भी प्रताप नहीं हारा और अकबर से अन्तिम श्वासों तक लड़ता रहा। १५१७ ई० में प्रताप की मृत्यु हो गयी। उसके बाद उसके पुत्र अमरसिंह ने अकबर से संघर्ष करने में अपने को पिता की तरह समर्थ न पाया। अकबर और अमरसिंह में सन्धि हो गयी।

मेवाड़ और बङ्गाल से छुट्टी पाने पर अकबर की दृष्टि काबुल और कन्धार की ओर गई। बीरबल और मानसिंह को भेजकर धीरे-धीरे उसने काबुल, कश्मीर, कन्धार, सिन्धु, यूसूफजोई तथा बदखसाँ तक के क्षेत्र को अधिकृत किया। काबुल में जो सफलता मिली उसका परिणाम यह हुआ कि अफगानी जातियाँ निर्मूल हो गयीं। उसने उड़ीसा को भी अपने अधीन किया। इससे सम्पूर्ण उत्तरी भारत पर उसका प्रभाव व्याप्त हो गया।

१५९१ ई० के बाद अकबर ने दक्षिण के राज्यों, जिसमें गोलकुण्डा और बीजापुर प्रधान थे, की ओर ध्यान दिया। गोलकुण्डा की रियासत पर धावा करके अकबर ने असीरगढ़ का महत्त्वपूर्ण दुर्ग अपने अधीन कर लिया। इसके बाद उसने असीरगढ़ को घेर लिया। असीरगढ़ के बाद उसने अहमदनगर को जीता। इन विजयों से अकबर के साम्राज्य का अङ्ग खान-देश तक का हिस्सा हो गया।

अकबर का शासन-प्रबन्ध :—अकबर का विशाल साम्राज्य १५ सूबों में बँटा था। सूबों की छोटी इकाइयाँ सरकार और परगना थीं। केन्द्रीय सरकार

कई विभागों में बँटी हुई थी। पहला विभाग कर और कोष का प्रबन्ध करता था, दूसरा विभाग राजा तथा राजमहल की व्यवस्था करता था। सैनिकों को वेतन बख्शी देता था। चौथा विभाग फौजदारी का था, पाँचवाँ विभाग वक्फ और दान-सम्बन्धी कार्यों की देखभाल करता था। छठा विभाग मुफलिस के अधीन था जो प्रजा के नैतिक हितों की रक्षा करता था।

इनके अतिरिक्त तोपखाने का विभाग था। डाक की व्यवस्था दारोग-ये-डाकचौकी और कारखाने की देखभाल दारोगाखानेसामान करता था। प्रान्तीय शासन की व्यवस्था केन्द्रीय सरकार के नमूने पर होती थी। गाँवों में पंचायतें थी जिन्हें काफी अधिकार मिला था। प्रान्तों का प्रमुख शासक सूबेदार कहलाता था, जिसके अधीन पूरे प्रान्त की सुरक्षा थी। दीवान, सूबेदार के साथ काम करता था जो माल और कर-व्यवस्था की देख-भाल करता था। प्रान्तों के अन्य कर्मचारी फौजदार,तहसीलदार और अमीन थे। शहरों और नगरों का प्रधान कर्मचारी कोतवाल था। राज्य भर की गुप्त सूचनायें शासन की दाकियनवीस और खोफियानवीस से मिलती थी। कर उगाहने का कार्य कोरी करता था। टोडरमल माल विभाग का केन्द्रीय अधिकारी था जिसने सम्पूर्ण करद भूमि को बाँस के कट्ठों से नपवा डाला था। उसने धरती की उर्वरता का ध्यान करके मालगुजारी भी निश्चित की थी जो सामान्य उपज का $\frac{1}{2}$ था। नापने और कर निश्चित करने का क्रम हर दसवें वर्ष दुहराया जाता था। इसे दस-साला बन्दोबस्त कहते थे। किसानों से अनुचित नजराना या भेंट नहीं ली जाती थी। कृषकों को कृषि के लिए आर्थिक सहायता भी दी जाती थी।

अकबर अपनी धर्मनीति के लिए विशेष विख्यात है। अकबर मुसलमान था किन्तु अन्य सम्प्रदायों के प्रति राजनीतिक और व्यक्तिगत कारणों से वह उदारता प्रदर्शित करता था। उसने गोहत्या बन्द कर दी थी, बलपूर्वक धर्म-परिवर्तन को भी अपराध घोषित किया था, मन्दिरों को न तोड़ने की नीति

अपनाई और सती प्रथा को रोकने की भी चेष्टा की। अकबर का नाम दीनइलाही से सम्बद्ध है। दीनइलाही में एकेश्वरवाद की मान्यता थी और सब धर्मों के प्रति उदारतापूर्णं दृष्टिकोण अपनाने को श्रेयस्कर कहा गया था। दीनइलाही के अन्तर्गत आचरण सम्बन्धी नैतिक नियम भी था। निरामिष भोजन करना, भोजन के लिए जीवहिंसा न करना, इन्द्रियनिग्रह, कर्म के प्रभाव का चिन्तन, सद्व्यवहार आदि पर विशेष बल दिया जाता था। दीनइलाही के माननेवाले को सम्राट् के प्रति श्रद्धा करनी पड़ती थी और अकबर को धर्मगुरु मानना पड़ता था। वर्षगाँठ के दिन लोगों से मिलना-जुलना, प्रीतिभोज आदि का महत्त्व था। पारसी-धर्म के प्रभाव से सूर्य और अग्नि की पूजा होती थी।

दीनइलाही का उद्देश्य सभी धर्म का समन्वय करना तो था ही, किन्तु इसके साथ-साथ यह भी था कि अकबर दीनइलाही की आड़ में सम्राट् के साथ ही साथ धर्मगुरु भी बनना चाहता था। दीनइलाही को इसी कारण कोई लोकप्रियता न मिली और इसकी दीक्षा अकबर के मित्रों, चापलूसों, मुसाहिबों के अतिरिक्त अन्य लोगों ने न ली।

प्रश्न

१. अकबर को महान् क्यों कहते हैं ?
२. अकबर की विजयों और शासन-प्रबन्ध का वर्णन कीजिए।
३. अकबर की धार्मिक नीति क्या थी ? सिद्ध कीजिए कि उसका दृष्टिकोण राष्ट्रीय था।

अध्याय २०

जहाँगीर और शाहजहाँ

जहाँगीर :—अकबर १६०५ ई० में मरा। उसका उत्तराधिकारी सलीम था जो जहाँगीर के नाम से गद्दी पर बैठा। अपने पिता की तरह उदार और प्रतिभाशाली न होते हुए भी यह मुगल साम्राज्य को योग्यतापूर्वक सँभाले रहा। इसने लगभग २२ वर्षों तक राज्य किया। मुगल साम्राज्य का विघटन इसी के समय में प्रारम्भ हो गया। १६२० ई० में जहाँगीर ने खुर्रम को भेज कर नगरकोट की विजय की। अहमदनगर के राज्य से वहाँ के मलिक अम्बर के विरुद्ध कई युद्ध किये। इस युद्ध से अहमदनगर काफी कमजोर पड़ गया। मेवाड़ पर उसका स्थायी अधिकार हो गया। कांगड़ा की विजय भी जहाँगीर की महत्त्वपूर्ण सफलता थी। किन्तु १६२२ ई० में कन्धार हाथ से निकल गया। शासन के अन्तिम दिनों में जहाँगीर के पुत्र खुर्रम ने विद्रोह कर दिया था जिससे मरने के कुछ दिन पूर्व तक उसकी मानसिक और शारीरिक स्थिति खराब थी।



जहाँगीर

जहाँगीर के विषय में कहा जाता है कि वह बड़ा न्यायप्रिय था और आगरे में राज-महल के घण्टे से सम्बद्ध एक जंजीर लटका दी थी जिसे कोई भी फरियादी खींचकर बादशाह को अपनी शिकायतें सुना सकता था। वह परम

विलासी भी था। उसको रानी नूरजहाँ उस पर पूरी तरह से हावी थी तथा जगाँगीर को शराब के प्यालों में उलझा कर खुद राज-काज देखती थी। नूरजहाँ का राजनीति और राज-काज में इस तरह से प्रभाव बढ़ गया था कि राज-दरबार नूरजहाँ की चालों से ऊबकर षडयन्त्रों का अड्डा-सा बन गया था। शाहजहाँ और महावत खाँ ने जहाँगीर के प्रति विद्रोह नूरजहाँ के कारण किया था। जहाँगीर की मृत्यु लाहौर में १६२७ ई० में हुई।

शाहजहाँ :—जहाँगीर का तीसरा पुत्र खुर्रम, शाहजहाँ के नाम से १६२८ ई० में मुगल साम्राज्य का अधिष्ठाता बना। अन्य भाइयों की अपेक्षा यह चतुर सदाचारी और राज-नीतिज्ञ था। गद्दी पर बैठते ही बुन्देलों ने विद्रोह कर दिया जिसका दमन शाहजहाँ ने सफलतापूर्वक किया। कुछ दिनों बाद १६३५ ई० में बुन्देलों के सरदार जुझार सिंह ने दोबारा विद्रोह किया। इस बार फिर शाहजहाँ को जुझार सिंह के विरुद्ध सफलता मिली। १६३० ई० में मालवा के खानजहाँ के विरोध का भी उसने सफलतापूर्वक दमन किया। अगले वर्ष बंगाल के हाकिम कासिम खाँ को उसने हुगली के अत्याचारी पुर्तगालियों के विरुद्ध नियुक्त किया। करीब-करीब चार मास के घेरे और भीषण नरसंहार के बाद कासिम द्वारा पुर्तगाली सर किये गये।



शाहजहाँ

इन छोटे-मोटे विद्रोह के बाद शाहजहाँ ने अपनी दृष्टि दक्षिण की ओर दौड़ाई। उसे इसका अवसर भी मिल गया। मुगल सरदार खानजहाँ के विद्रोह

में सहायक दक्षिण की जो भी रिसायतें थीं उसके प्रति शाहजहाँ ने कड़ा रुख अपनाया। अहमदनगर इनमें प्रधान था। १६३३ ई० में अहमदनगर रियासत के शेष भाग पर अधिकार कर लिया गया। इस प्रकार अकबर का शेष काम शाहजहाँ ने पूरा किया तथा सम्पूर्ण अहमदनगर मुगल सल्तनत का अंग बन गया। दक्षिण की दो रियासतों गोलकुण्डा और बीजापुर को भी उसने अपने अधीन बनाया। दक्षिण से छुट्टी पाते ही उसकी दृष्टि कन्धार की ओर गई। कन्धार का दुर्ग जहाँगीर के समय में ही मुगल साम्राज्य से निकल गया था। वहाँ के किलेदार अलीमर्दा खाँ को अपने पक्ष में करके कन्धार पर अधिकार कर लिया। किन्तु कुछ ही समय बाद ईरानियों ने कन्धार का किला मुगलों से छीन लिया। १६४९, १६५२ और १६५३ ई० में शाहजहाँ ने कन्धार को जीतने के लिए पुनः धावे करवाये, किन्तु उसे सफलता न मिली और कन्धार का किला ईरानियों के ही अधिकार में बना रहा। १६४३ ई० में शाहजहाँ ने एक सेना बदख्शाँ पर अधिकार करने के लिए भेजी। १६४६ ई० में बदख्शाँ पर शाहजहाँ का अधिकार हो भी गया। किन्तु स्थानीय विद्रोहों के कारण शाहजहाँ का शासन वहाँ जम न सका और १६४७ ई० में मुगलों की सेना वहाँ से वापस लौट आई। कन्धार और बदख्शाँ की असफलताओं से मुगल साम्राज्य को अपार धन की हानि हुई और प्रतिष्ठा घटी। अकेले कन्धार के युद्धों पर शाहजहाँ को बारह करोड़ रुपये खर्च करना पड़ा था जो पूरे साम्राज्य की एक वर्ष की आधी आमदनी थी।

उत्तराधिकार का युद्ध :—

शाहजहाँ के जीवन के अन्तिम ५ वर्ष बड़े कष्ट से बीते। इसका प्रधान कारण उसके पुत्रों का उत्तराधिकार के लिए आपसी युद्ध था। शाहजहाँ के लड़के दारा, शुजा, मुराद और औरंगजेब थे। इन चारों में साम्राज्य प्राप्त करने की होड़ थी। दारा को शाहजहाँ बहुत चाहता था और इसे अपना उत्तराधिकारी घोषित कर चुका था। १६५७ ई० में शाहजहाँ बीमार पड़ा। इसके बीमार पड़ते ही शुजा ने बंगाल में अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया और शाहजहाँ का उत्तराधिकारी बनने का दावा किया। अहमदाबाद में मुराद ने भी इसी का अनुकरण किया और अपने को स्वाधीन घोषित किया। दारा

अपने पिता के पास आगरे में ही था। औरंगजेव मौके की ताक में दक्षिण में पड़ा-पड़ा अपने अन्य भाइयों के पतन की राह देख रहा था। औरंगजेब ने मुराद से मिलकर यह ढोंग रचा कि वह राज-पाट तो चाहता नहीं, चाहता तो वह केवल इतना है कि दारा जैसा काफिर मुगल सल्तनत का स्वामी न बन सके। औरंगजेव ने मुराद से साँठ-गाँठ करके आगरे की ओर अभियान किया। यशवंत सिंह और कासिम खाँ मुराद और औरंगजेब को रोकने के लिए दक्षिण भेजे गये। धर्मत के पास १५ अप्रैल १६५८ ई० में दोनों प्रतिद्वन्द्वी सेनाओं में मुठभेड़ हुई और शाही सेना हार गई। औरंगजेब और मुराद उज्जैन होकर आगे बढ़े। शुजा भी बंगाल से आगरे की ओर आ रहा था। जयसिंह के प्रयत्न से बहादुरगढ़ में लगभग शुजा पराजित हो गया और तुरंत बंगाल की ओर भाग गया। औरंगजेब और मुराद की सेना जो आगरे की ओर आ रही थी उसका सामना दारा ने सामूगढ़ में लगभग किया। दारा पराजित हुआ और आगरे की ओर भागा। आगरे का किला औरंगजेब ने घेर लिया। उसने किले में प्रविष्ट होकर शाहजहाँ को कैद कर लिया। दारा दिल्ली की तरफ भाग गया था। मुराद को लेकर औरंगजेब आगरे में दिल्ली की ओर गया। मथुरा के पास औरंगजेब नें मुराद को भी कैदकर लिया तथा उसे प्राणदंड दिया। औरंगजेव के सैनिक दारा का पीछा करते हुए लाहौर की ओर गये। इधर फतेहपुर जिले में खानवा के पास औरंगजेब ने शुजा को हरा कर भगा दिया। शुजा भागकर राजमहल की पहाड़ियों में लुप्त हो गया। दारा भी जगह-जगह भटकता हुआ अन्त में बालन दर्रे के पास दादर नामक स्थान पर पकड़ा गया। औरंगजेब ने दारा को दिल्ली लाकर ३० अगस्त १६५९ ई० को अपमानित करके कत्लकर दिया। इस प्रकार उसने अपने तीनों भाइयों को परास्त किया। औरंगजेब २१ जुलाई १६५८ ई० को शाहजहाँ की गद्दी पर बैठ चुका था। शाहजहाँ आगरे के किले में कैदी की हालत में ७४ वर्ष की अवस्था में २२ जनवरी १६६६ ई० में मरा।

प्रश्न

१. जहाँगीर के शासनकाल का संक्षिप्त वर्णन कीजिये।

२. शाहजहाँ के उत्तराधिकार युद्ध का वर्णन कीजिए।

३. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :—नूरजहाँ, दारा।

अध्याय २१

मराठा साम्राज्य की स्थापना और शिवाजी

मराठा साम्राज्य के संस्थापक शिवाजी थे। शिवाजी के पूर्व मराठे दक्षिण के सुल्तानों के यहाँ नौकरियाँ करते थे। शिवाजी के पिता शाहजी भोंसले भी अच्छे राजनीतिज्ञ थे और अहमदनगर और बीजापुर के साथ और मुगलों के बीच होनेवाले युद्धों में भाग ले चुके थे।

शिवाजी :—शिवाजी का जन्म १० अप्रैल १६२७ ई० में शिवनेरी के दुर्ग में हुआ था। शिवाजी की माता जीजाबाई असाधारण स्त्री थीं। इन्होंने अपने पुत्र शिवाजी का लालन-पालन बड़ी योग्यता से किया तथा बचपन में पौराणिक और ऐतिहासिक वीरों की गाथाओं को सुनाकर शिवाजी को वीर और स्वाभिमानी बनने के लिए प्रेरित किया। दादाजी कोंणदेव से शिवाजी को सैनिक शिक्षा मिली थी। वे बहुश्रुत और योग्य थे। धर्म-नीति और शासन-नीति का उन्होंने अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। उनका आचरण उच्च कोटि का था।

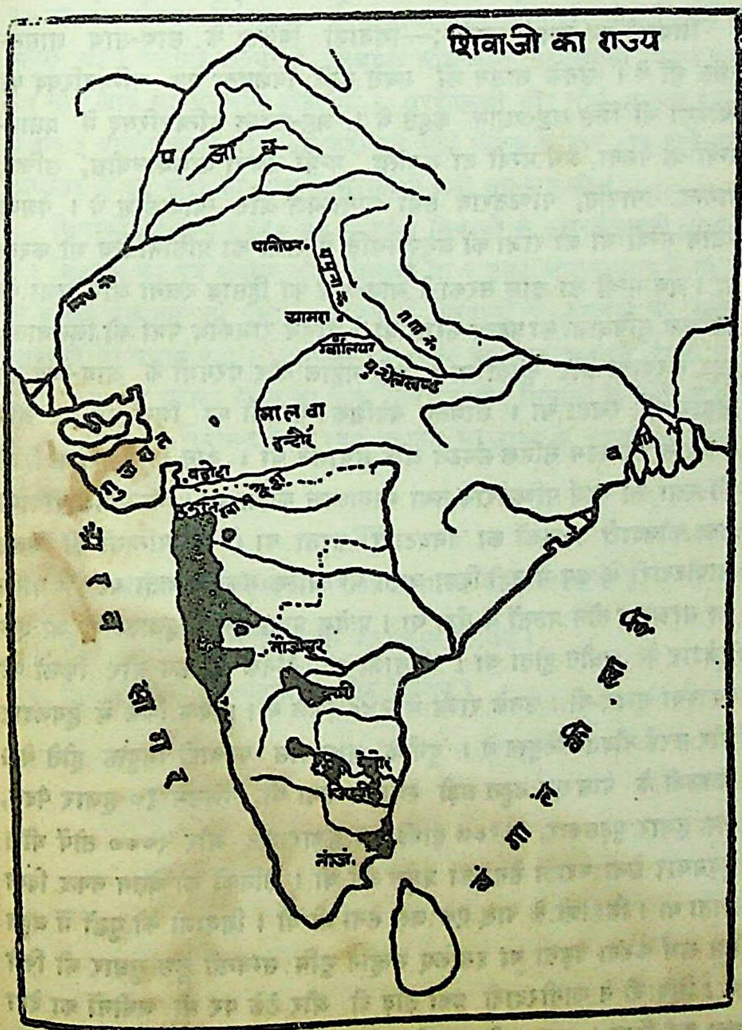

शिवाजी

१८ वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने का इरादा कर लिया था। १६४७ ई० के बाद उन्होंने इस दिशा में प्रयास किया। १६४६ ई० में ही शिवाजी ने बीजापुर से तोरण का दुर्ग छीन लिया। इसके बाद चाकन, पुरन्दर आदि के किलों पर अधिकार करके कोंकण और कल्याण पर भी अधिकार कर लिया। शिवाजी की इन कारवाइयों से बीजापुर के दरबार में खलबली मच गयी और बीजापुर के शाह आदिलशाह ने शिवाजी के पिता को कैद कर लिया। कुछ दिन शिवाजी शान्त रहे। १६५५ ई० में शिवाजी पुनः

सक्रिय हुए और जावली राज्य पर अधिकार कर लिया। १६५७ ई० में बीजापुर दरबार से अफजल खाँ को शिवाजी के विरुद्ध भेजा गया। अफजल खाँ धोखे से शिवाजी की हत्या करना चाहता था। किन्तु शिवाजी सतर्क थे, फलतः अफजल खाँ स्वयं मारा गया। इससे मराठों का हौसला बढ़ गया और मराठों ने पंढालगढ़ के दक्षिण में कृष्णा नदी तक अधिकार कर लिया। १६६२ ई० तक बीजापुर दरबार में शिवाजी को पराजित करने के लिए कई चेष्टाएँ कीं जो विफल रहीं। अन्त में बीजापुर के सुल्तान को अपने साम्राज्य का बहुत-सा अंश गँवाकर शिवाणी से सन्धि कर लेनी पड़ी।

शिवाजी भी गतिविधियों से मराठों का स्वतन्त्र साम्राज्य खड़ा हो गया। मराठों का यह उत्कर्ष औरङ्गजेब के लिए खतरा था। अतएव १६६० ई० में औरङ्गजेब ने शिवाजी का दमन करने के लिए शाइस्ता खाँ को भेजा। शाइस्ता खाँ को पहले तो थोड़ी-बहुत सफलता मिली किन्तु मराठों के छापामार युद्धों के कारण उसे बहुत परेशान होना पड़ा। १६६३ ई० में शाइस्ता खाँ जब कि पूने में ठहरा हुआ था तो शिवाजी ने शाइस्ता खाँ पर हमला कर दिया और शाइस्ता खाँ को पराजित करके पूना से खदेड़ दिया। १६६४ ई० में शिवाजी ने सूरत पर अधिकार किया जहाँ उन्हें बहुत धन मिला। शिवाजी से औरङ्गजेब बहुत परेशान हो गया। अन्त में उसे शाहजादा- मुअज्जम, दिलेर खाँ और मिर्जा राजा जयसिंह को दक्षिण भेजना पड़ा। जयसिंह के प्रयत्न से शिवाजी और मुगलों में सन्धि हो गयी। शिवाजी औरङ्गजेब के नियन्त्रण पर१६६: ई० में आगरा लाये गये। किन्तु औरंगजेब ने अपने वचन के अनुसार शिवाजी का स्वागत नहीं किया जिससे शिवाजी खिन्न हुए। औरंगजेब ने शिवाजी को नजरबन्द कर लिया। शिवाजी औरंगजेब के पहरेदारों को चकमा देकर नजरबन्दी से निकल भागे। स्वयं मथुरा, बंगाल, उड़ीसा और गोड़वाना होते हुए किसी प्रकार मराठों से मिल गये। इस घटना से शिवाजी और औरंगजेब के बीच खुला युद्ध छिड़ गया। धीरे-धीरे शिवाजी ने मुगल साम्राज्य पर आक्रमण करते हुए एक विशाल मराठा साम्राज्य खड़ा कर दिया। १६७४ई० में रायगढ़ में शिवाजी ने अपना अभिषेक किया। इस समय शिवाजी

का राज्य पश्चिमी घाट और कोंकण में कल्याण से गोवा तक। उत्तर और पूर्व में बगलाना तक और दक्षिण में नासिक और पूना तक था। इसके



अतिरिक्त मृत्यु के कुछ दिन पहले उन्होंने दक्षिण में समस्त पश्चिमी कर्नाटक

पर अधिकार कर लिया था। यह अंश बेलगाँव से लेकर तुङ्गभद्रा नदी तक था जो आजकल मद्रास प्रान्त के बेलारी जिले के पास पड़ता है।

शिवाजी का शासन प्रवन्ध :—शिवाजी विजेता के साथ-साथ शासन-कुशल भी थे। उनके शासन की सबसे बड़ी विशेषता एक मन्त्रिपरिषद् की स्थापना थी जिसे अष्ट-प्रधान कहते थे। अष्ट-प्रधान मन्त्रिपरिषद् में प्रधान-मन्त्री या पेशवा, अर्थ मन्त्री वा अमात्य, मन्त्री अथवा वाकयानवीस, सचिव, सामन्त, सेनापति, पण्डितराव तथा दानाध्यक्ष और न्यायाधीश थे। पेशवा प्रधान मन्त्री था जो राजा की अनुपस्थिति में राजा का प्रतिनिधित्व भी करता था। अर्थ मन्त्री का काम सरकारी आय-व्यय का हिसाब रखना और राजा की वैयक्तिक सुविधाओं का प्रवन्ध करना था। सचिव राजकीय पत्रों को लिखवाता, मुहर करवाता और भेजता था। यही महाल और परगनों के आय-व्यय का हिसाब भी रखता था। सामन्त वैदेशिक मामलों का जिम्मेदार था और सेनापति का काम सैनिक संगठन और संचालन था। दान तथा धार्मिक हितों की रक्षा का कार्य पण्डितराव तथा थानाध्यक्ष करता था। न्यायाधीश दीवानी तथा फौजदारी मामलों का निबटारा करता था। इन मन्त्रियों को वेतन जागीरदारी के रूप में नही दिया जाता था बल्कि नकद मिलता था। शिवाजी का साम्राज्य तीन प्रान्तों में बँटा था। प्रत्येक प्रान्त सूबा कहलाता था जो एक सूबेदार के अधीन होता था। शिवाजी का सैनिक संगठन और किलों की व्यवस्था सुन्दर थी। उनके राज्य में २४० किले थे। प्रत्येक किले में हवलदार और सरई नौबत नियुक्त थे। दुर्ग के आस-पास पटवारी नियुक्त होते थे। शिवाजी के पास एक बहुत बड़ी स्थायी सेना थी, जिसमें १० हजार पैदल, तीस हजार घुड़सवार, १२०७ हाथी, ३ हजार ऊँट और ५००० तोपें थीं। घुड़सवार सेना मराठा सेना का प्रमुख अंग थी। सैनिकों को वेतन नकद दिया जाता था। शिवाजी के पास एक जल सेना भी थीं। शिवाजी को युद्धों में बहुत धन खर्च करना पड़ता था इसलिए उन्होंने भूमि सम्बन्धी कुछ सुधार भी किये थे। शिवाजी ने जागीरदारी प्रथा तोड़ दी और ठेके पर भी जमीनों का देना बन्द कर दिया। राज्य की सम्पूर्ण भूमि पर राज्य का स्वामित्व होता था।

राज्य अपनी ओर से उसे कृषिकर्म के लिए किसानों को देता था। इस प्रथा को रैयतवाड़ी कहते थे। सम्पूर्ण भूमि नाप डाली गई थी और कर उपज का ३० या ४० प्रतिशत निश्चित कर दिया गया था। किसानों को सुविधायें भी मिलती थीं। पड़ोसी राज्यों से शिवाजी चौथ और सरदेशमुखी वसूल करते थे। चौथ आय का चतुर्थांश होता था। सरदेशमुखी और चौथ पड़ोसी राज्यों से बलात् वसूला जाता था। इन करों को कोई नैतिक आधार प्राप्त नहीं था। कालांतर में इन करों की आड़ में मराठों ने बड़ी लूट-पाट की।

शिवाजी की मृत्यु १६८० ई० में हुई। शिवाजी के उत्तराधिकारी योग्य न थे। शिवाजी का पुत्र अयोग्य और विलासी था। उसके शासन-काल में मराठों का नैतिक बल नष्ट हो गया। १७१३ में शिवाजी के वंशधरों की अपेक्षा पेशवाओं का प्रभाव बढ़ा। बालाजी विश्वनाथ प्रथम प्रभावशाली पेशवा थे। इन्होंने पूना को मराठा राज्य का केन्द्र बनाया और शिवाजी के पोते साहूजी को एक छोटी-सी रियासत देकर स्वयं मराठा साम्राज्य के वास्तविक उत्तराधिकारी बन गये।

प्रश्न

१. सिद्ध कीजिए कि शिवाजी मराठा साम्राज्य के संस्थापक थे।

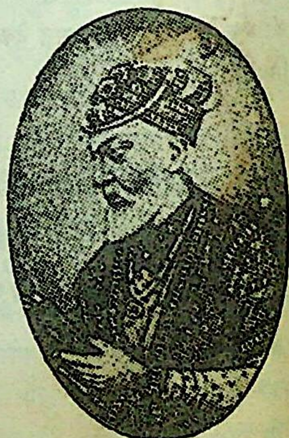
२. शिवाजी के चरित और कार्यों पर प्रकाश डालिए।

३. शिवाजी के शासन-प्रबन्ध पर नोट लिखिए।

अध्याय २२

औरंगजेब और मुगल साम्राज्य का पतन

औरंगजेब मुगलों का अन्तिम प्रसिद्ध बादशाह था। यह चतुर राजनीतिज्ञ और कट्टर सुन्नी मुसलमान था। धार्मिक उदारता इसमें बिलकुल न थी तथा शासन नीति अत्यन्त संकीर्ण थी। इसकी नीतियों और धार्मिक पक्षपात के कारण इसका शासन हिन्दुओं में लोकप्रिय न था जिससे मुगल शासन के विरोध में सिक्खों, राजपूतों और मराठों के विद्रोह होने लगे। प्रजा के प्रति भी उसका दृष्टिकोण उदार न था। शासन-सूत्र सम्भालते समय उसने कर-व्यवस्था में अनेक परिवर्तन किये। औरंगजेब ने मीर जुमला के द्वारा आसाम पर १६६१ ई० में आक्रमण किया। किन्तु उसे सफलता न मिली। आसाम की जलवायु और प्राकृतिक स्थिति के कारण औरंगजेब को विशेष हानि उठानी पड़ी। दक्षिण में भी लगातार उपद्रव हो रहे थे और मराठों की शक्ति बढ़ने से मुगल सल्तनत को लगातार क्षति उठानी पड़ रही थी। औरंगजेब ने बीजापुर और गोलकुण्डा के मुस्लिम शासकों से मिलकर शिवाजी का दमन करना चाहा, किन्तु औरंगजेब को इस प्रयत्न में सफलता न मिल सकी। शिवाजी के जीवन-काल में औरंगजेब के सैनिक शिवाजी से कई बार टकराकर भी शिवाजी का कुछ बिगाड़ न सके। शिवाजी के मरने के बाद औरंगजेब स्वयं



औरंगजेब

दक्षिण गया और मराठों की शक्ति को कुचलने की असफल चेष्टाएँ करता रहा। औरंगजेब की दक्षिण नीति नितांत असफल थी। इसी प्रकार औरंगजेब को अफगानों के विरुद्ध भी कोई विशेष सफलता न मिली। औरंगजेब की दक्षिण नीति केवल बीजापुर और गोलकुण्डा के प्रति ही सफल कही जा सकती है। ये दोनों रियासतें क्रमशः १६७२ और १६८० ई० में मुगलों के अधीन हुई थीं। पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त के नगरों में फँसकर औरंगजेब को प्रभूत धन और जन की हाँनि उठानी पड़ी। राजपूतों से भी औरंगजेब का सम्बन्ध अच्छा नहीं था। सीमान्त युद्धों में महाराज यशवन्त सिंह का देहान्त हो जाने के बाद औरंगजेव ने मारवाड़ पर अधिकार कर लिया और वहाँ के मन्दिरों को तोड़-फोड़ डाला। यशवन्त सिंह का उत्तराधिकारी अजित सिंह था जो अबोध बालक था। औरंगजेब के द्वारा अजित सिंह कैद कर लिया गया। दुर्गादास ने अजित सिंह को तथा यशवन्त सिंह की दो विधवा रानियों को औरंगजेब के चंगुल से मुक्त करवाया और जोधपुर पहुँचा दिया। इस घटना के बाद औरंगजेब और राजपूतों में खुला युद्ध छिड़ गया। मेवाड़ भी इस युद्ध में शामिल हुआ और औरंगजेब ने मारवाड़ पर धावा कर दिया और मारवाड़ का सर्वनाश कर दिया। मेवाड़ के राजा भी पराजित हुए। औरंगजेब ने उदयपुर और चित्तौड़ के मन्दिरों को तोड़ा और भ्रष्ट किया। १६८१ ई० में मेवाड़ के राणा जयसिंह और मुगलों में फिर सन्धि हो गयी। किन्तु दुर्गादास की अधीनता में राठौरों ने विद्रोह जारी रखा। राजपूतों के विरुद्ध औरंगजेब का यह रुख बड़ा ही गलत था जिसका परिणाम यह हुआ कि राजपूत, जिन्हें मुगल साम्राज्य का स्तम्भ भी कहा जा सकता है, मुगलों के विरोधी हो गये।

औरंगजेब का हिन्दुओं के प्रति प्रजावत् व्यवहार न था। हिन्दू मात्र पर उसने जजिया लगाया तथा तीर्थ कर वसूले, इस्लाम धर्म को वरीयता दी तथा इस्लामी रीति-रिवाजों को ही कानूनी रूप दिया। औरंगजेब की इस प्रकार की अविवेकपूर्ण नीति के कारण मुगल साम्राज्य की जड़ें खोखली हो गयीं। १६६९ ई० जाटों ने बड़ा प्रबल विद्रोह किया। जाटों के विरुद्ध औरगजेब की

दमन नीति कारगर न हुई। जाटों की मार का परवर्ती मुगलों पर बुरा प्रभाव पड़ा। १६७२ ई० में मेवात के सतनामी साधुओं का विद्रोह हुआ, जिसे दमन करने में औरंगजेब को वड़ी कठिनाइयाँ उठानी पड़ी।

१७०७ ई० में औरंगजेब की मृत्यु हो गयी। इसके उत्तराधिकारी अयोग्य थे। साम्राज्य की सुरक्षा के लिए उसने मुगल साम्राज्य अपने तीन पुत्रों में बाँट दिया। उसके पुत्रों में फिर भी संघर्ष हुआ। अन्त में उसका एक पुत्र जिसका नाम मुअज्जम था, बहादुरशाह के नाम से गद्दी पर बैठा। उसका शासनकाल केवल पाँच वर्षों तक ही सीमित रहा। इस छोटी-सी अवधि में बहादुरशाह ने सिक्खों, राजपूतों और मराठों से सन्धि करके मुगल साम्राज्य को विघटित होने से रोकने की चेष्टा की थी। उसका उत्तराधिकारी जहाँदार-शाह था जो मूर्ख और विलासी था। इसे मारकर १७१३ ई० में इसका भतीजा फरुखशियर गद्दी पर बैठा। इसकी भी १७१९ ई० में हत्या कर दी गयी। इसके समय में दो अमीर अब्दुल्ला और हुसेन अली बड़े प्रबल हो उठे थे, जो फरुखशियर की उपेक्षा करते थे। फरुखशियर इन्हीं के षडयन्त्रों का शिकार बना था। अब्दुल्ला और हुसेन अली सैयद थे। इनके द्वारा दिल्ली की गद्दी पर कई बादशाह बैठाये और उतारे गये। १७१९-१७४८ ई० तक दिल्ली पर मुहम्मदशाह का शासन था। इसने सैयद भाइयों पर तो काबू पा ली थी किन्तु यह साम्राज्य की सुरक्षा न कर सका। इसी के समय में नादिरशाह का हमला हुआ, जिसने मुगल साम्राज्य की जड़ें और भी खोखली कर दीं। मुहम्मदशाह के बाद अहमदशाह, आलमगिर द्वितीय और शाहआलम ने मुगल सल्तनत सँभाली। शाहआलम नाममात्र का राजा था। १६६१ ई० में अहमदशाह अब्दाली का आक्रमण दिल्ली पर हुआ। इसका कुप्रभाव यह हुआ कि शाह-आलम स्वयं भी अहमदशाह अब्दाली का आश्रित हो गया। अत्यन्त दीन और हीन परिस्थिति में १८०६ ई० यह मरा। बहादुरशाह अन्तिम मुगल-बादशाह था जो १८६२ ई० में अंग्रेजों का कैदी बनकर मरा। इसने १८५७ ई० के प्रथम स्वातन्त्र्य युद्ध में भाग लिया था।

मुगल साम्राज्य के पतन के कारण :—औरंगजेब के मरते ही सारा मुगल साम्राज्य विघटित होने लगा। इसके लिए उसके अयोग्य उत्तराधिकारी भी बहुत बड़े जिम्मेदार हैं। औरंगजेब स्वयं भी अपनी धार्मिक कट्टरता के के कारण मुगल साम्राज्य की सुरक्षा करने में असमर्थ था। उसने मुगल साम्राज्य के विश्वस्त मित्र राजपूत जाति की अप्रियता प्राप्त कर ली। उसकी धार्मिक संकीर्ण नीति का कुपरिणाम हिन्दू तथा सिक्खों के मन पर बहुत पड़ा। बुन्देलों ने औरंगजेब के प्रति विद्रोह करके छत्रसाल के अधीन एक नये स्वतन्त्र राज्य को जन्म दे दिया था। मथुरा में औरंगजेब द्वारा किये गए धार्मिक अत्याचार की भीषण प्रतिक्रिया जाटों पर पड़ी। जाट मुगलों के शत्रु हो गये। चूड़ामन द्वारा स्थापित भरतपुर में नये जाट राजवंश ने मुगल साम्राज्य के राजनीतिक वैभव को बहुत घटा दिया था। औरंगजेब के बाद के सभी शासक दरबारी गुटबन्दी के शिकार थे। हिन्दुस्तानी, तूरानी और ईरानी, ये प्रमुख तीन गुट थे जो समय-समय पर अपने प्रभाव को बढ़ाकर सम्राट् को कमजोर करते रहे। फर्रुखशियर के समय में हिन्दुस्तानी दल के सरदार तो 'राजाओं के निर्माता' कहे जाते थे। इन गुटों के द्वारा अपने-अपने सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण पदों पर रखे जाते थे, जो शासनयन्त्र को अवरुद्ध किये रहते थे। इनसे विदेशी आक्रमणों को भी बढ़ावा मिलता था। इन विदेशी आक्रमणों में नादिरशाह और अहमदशाह के आक्रमण बड़े कुख्यात थे जिनसे देश का प्रभूत धन विदेश चला गया। इन्हीं आक्रमणों से जब राजकोष खाली हो गया और मुगल बादशाहों की प्रतिष्ठा बहुत घट गई तो जगह-जगह विद्रोह होने लगे। निजामुलमुल्क जो मुहम्मदशाह का प्रधानमन्त्री था, हैदराबाद में स्वतन्त्र हो उठा और निजाम राज्य की नींव पड़ी। जयपुर और जोधपुर के नेतृत्व में सारा राजस्थान भी स्वतन्त्र हो गया। भरतपुर में जाटों की रियासतें खड़ी हुई तथा इसी प्रकार कोटा और बूंदी भी स्वतन्त्र हो गये। बंगाल में अलीवर्दी खाँ और अवध में सआत खाँ ने स्वतन्त्र नवाबी राज्य स्थापित किए। मराठों ने मालवा, गुजरात और मध्य-भारत के बहुत बड़े हिस्से पर अधिकार कर लिया था। रुहेलखण्ड में रुहेले प्रबल थे। अन्तिम बादशाहों में कुछ तो मराठों और रुहेलों के हाथ की कठपुतली बन गये थे।

—

दोषपूर्ण सैन्य-व्यवस्था और उत्तराधिकार का अनिश्चित नियम की मुगल साम्राज्य के पतन के लिए जिम्मेदार है। इन दोषों का कुपरिणाम अकबर के समय से ही पड़ता आ रहा था। उत्तराधिकार-युद्ध और इसके लिए विद्रोहों से मुगल शासन बड़ा अप्रिय था तथा इससे सरदारों में भीं फूट फैलती थी। बादशाहों को अनावश्यक रीति से इन घरेलू झगड़ों में फँसे रहना पड़ता था और वे अपने ही स्वजनों से तबाह रहते थे। कभी-कभी तो इनके विद्रोहों से साम्राज्य के विनष्ट तक हो जाने की सम्भावना उठ खड़ी होती थी।

प्रश्न

१. औरंगजेब की धार्मिक निति क्या थी ? उसका हिन्दुओं पर क्या प्रभाव पड़ा ?

२. सिद्ध कीजिए कि औरंगजेब की धार्मिक नीति ने मुगल साम्राज्य की जड़ें खोखली कर दी।

३. मुगल साम्राज्य के पतन के कारणों पर प्रकाश डालिए।



अध्याय २३

मध्यकालीन समाज और संस्कृति

भारतीय समाज पर इस्लाम धर्म का व्यापक प्रभाव पड़ा। आठवीं शती ईसवी के पूर्व जो-जो विजातीय तत्त्व भारतीय समाज में आते गये, यहाँ के समाज और संस्कृति में समाहित होते गये। किन्तु इस्लाम धर्मावलम्बियों में, जिनमें अरब, तुर्क, अफगान और मुगल प्रमुख थे, यहाँ के धर्म और संस्कृति के प्रति वह अभिरुचि उत्पन्न न हुई जो यवन, शक, कुषाणादि जातियों में हुई थी। अरब, तुर्क और अफगान आक्रमणकारी तो यहाँ के धर्म, समाज और संस्कृत के कट्टर शत्रु थे तथा उनके भारत-आक्रमण का सैद्धान्तिक उद्देश्य भी हिन्दूधर्म और मूर्तिपूजा के प्रति जिहाद (धर्मयुद्ध) था। साथ ही भारतीय समाज की पाचनशक्ति भी गड़बड़ा गयी थी। यह सत्य है कि हिन्दुओं ने इस्लाम धर्म के विरुद्ध कोई धार्मिक युद्ध नहीं छेड़ा। राजनैतिक पराभव के कारण शायद उनमें इसकी क्षमता भी नहीं थी। किन्तु यह भी सत्य है कि इस्लाम को हिन्दू समाज अपनी वर्जनशील मनोवृत्ति के कारण हिन्दूधर्म के मेल में भी न ला सका। हिन्दू और इस्लाम दो पृथक् सम्प्रदाय के रूप में टकराते रहे। इनका सम्मिलन न हो सका। फिर भी हिन्दू और इस्लाम दोनों ही सम्प्रदायों में ऐसे अनेक सन्त-महात्मा हुए जो इन दो पृथक् सम्प्रदायों को एक करने के लिए सचेष्ट रहें। इस्लामी संस्कृति और विचारों में दीक्षित सूफी सन्तों का इस दिशा में बड़ा प्रयत्न रहा। इन सन्तों का इस्लाम के प्रचार में भी बड़ा योग रहा, यद्यपि धर्म-प्रचार में ये उदारतावादी थे। ख्वाजा मुइनुद्दीन चिस्ती, फरीउद्दीन, निजामुद्दीन औलिया, शेख सलीम चिस्ती मध्यकालीन भारत के प्रसिद्ध सन्त थे जो इस्लाम के प्रचार में बड़े सहायक हुए। इनके उदारतावादी इस्लामी दृष्टिकोण ने हिन्दुओं को भी बहुत प्रभावित किया था। कबीर का नाम हिन्दू सन्तों में अमर हैं। इन्होंने हिन्दू मुसलमानों को एक करने की बड़ी चेष्टा की और राम-रहीम की एकता का आदर्श बताकर दोनों ही

जातियों में सद्भावना का प्रचार किया। ये हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही धर्मों में प्रचलित मिथ्या आडम्बरों के कटु आलोचक और शत्रु थे। कबीर का जन्म १३९८ ई० में काशी में हुआ था। इनका बाल्यकाल एक जुलाहे के घर में बीता था। बड़े होने पर रामानन्द से इन्हें रामनाम की दीक्षा मिली। जीवन भर ये अपने भजनों द्वारा धर्म के वाह्य आडम्बरों की निंदा करते रहे तथा शुद्धभक्ति और सदाचारी जीवन का उपदेश देते रहे। प्रार्थना और स्तुति को ही इन्होंने उपासना का श्रेष्ठ मार्ग समझा था। सन् १४९५ ई० में



सन्त कबीर

इनकी मृत्यु मगहर (बस्ती) में हुई। इनके उपदेशों का प्रभाव हिन्दू और



गुरु नानक

मुसलमान दोनों ही सम्प्रदायों पर समान रूप से पड़ा। कबीर के समान नानक

का भी महत्त्व है। ये सिक्ख सम्प्रदाय के संस्थापक गुरु थे। ये हिन्दू और मुसलमानों में एकता की प्रतिष्ठा चाहते थे। ये जाति के खत्री थे। सन् १४६९ ई० में इनका जन्म हुआ था। काफी दिनों तक गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करने के बाद संन्यासी हो गए थे और घूम-घूम कर अपनी वाणी से लोगों में भेदभाव को दूर करने का उपदेश करते रहे। इन्होंने अपनी 'वाणी' का संग्रह 'ग्रन्थ साहब' नामक ग्रन्थ में किया है। १५६६ में इनकी मृत्यु हुई।

इस्लामी आक्रमण से त्रस्त होकर हिन्दू जीवन अपना आत्मसम्मान खो बैठा। सुल्तानों के शासनकाल में तो हिन्दुओं को बड़ी ही मुसीबत थी और वे कठिन अग्निपरीक्षा से गुजर रहे थे। जो हिन्दू इस्लाम को स्वीकार न कर सके थे उन पर तरह-तरह का कर लगाया जाता था, वे बड़ी-बड़ी नौकरियों से वंचित किये जाते थे तथा आत्मसम्मान की रक्षा का प्रश्न उनके जीवन-मरण का प्रश्न बन गया था। दोआब के खेतिहर हिन्दुओं को सुल्तानों ने बहुत तबाह किया। उदास और निरीह हिन्दू जीवन को आध्यात्मिक शान्ति देने में तत्कालीन भक्ति धर्म बड़ा ही सहायक हुआ। भक्तिमार्गी सन्तों ने राम और कृष्ण के जीवन के आदर्शों के आधार पर हिन्दू जीवन के नये प्राणों का संचार किया। उनमें आत्म-बल जगाया और उन्हें नया जीवन दिया। भक्ति आन्दोलन के प्रारम्भिक कर्णधार रामानुज, ज्ञानदेव, नामदेव, रामानन्द आदि थे। वल्लभाचार्य भी इसी युग के दार्शनिक थे जिनका प्रभाव तत्कालीन हिन्दू समाज पर व्यापक रहा। बंगाल में भक्ति और संकीर्तन के प्रचारक चैतन्य महाप्रभु थे। हिन्दुओं को भक्ति और प्रेम का



चैतन्य देव

सम्बल देकर चैतन्य महाप्रभु ने उनकी निराशा दूर की थी। राजस्थान में मीराबाई ने भी भक्ति आन्दोलन को बल दिया। इन भक्तों के भक्ति प्रचार से हिन्दू मन का नैराश्य दूर हो गया और इसके विक्षुब्ध मन को बड़ी सान्त्वना मिली।

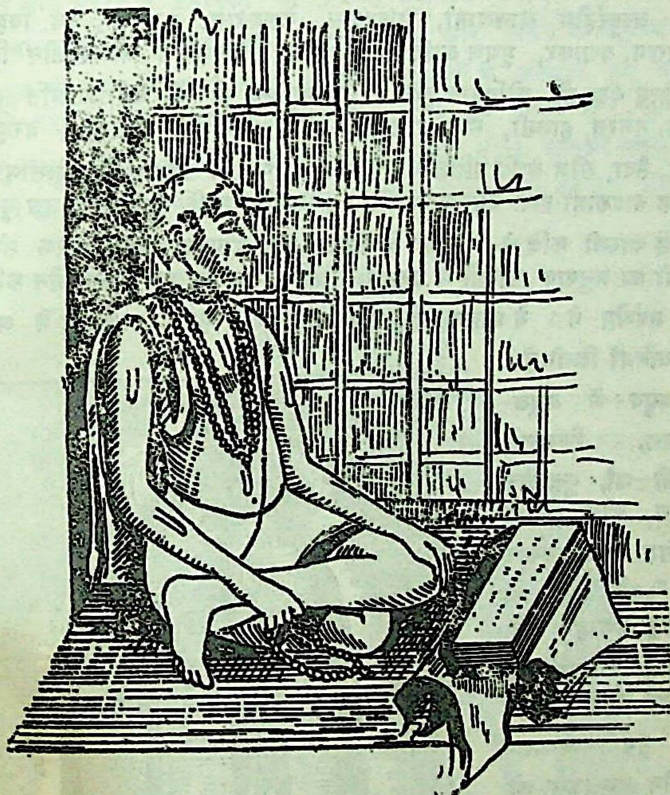
सोलहवीं शती में सूरदास और तुलसीदास ने क्रमशः कृष्ण और राम के आधार पर भक्ति आन्दोलन को सजीव रखा। सूरदास भक्त कवि थे जिन्होंने कृष्णचरित के आधार पर गेय पदों की रचना की। इनका प्रभाव वैष्णव समाज पर विशेष रहा। किन्तु भक्त कवियों में तुलसीदास श्रेष्ठ थे। इनका रामचरितमानस तब से लेकर आज तक लाखों हिन्दुओं की आध्यात्मिक उन्नति का आधार बना हुआ है। रामचरितमानस भारत के विशाल जन-समुदाय की एक 'आचार संहिता' है जिसकी उक्तियाँ, प्रमाण, दृष्टान्त आदि गरीब, अमीर, किसान, राजा सभी की जिह्वा पर अहर्निश विराजमान रहते हैं।' "तुलसीदास की रचनाओं का अपने देशवासियों के जीवन और ज्ञानवर्धन पर कितना प्रभाव पड़ा केवल उसे ही आँकना एक बड़ा कठिन काम है। इसके अतिरिक्त एक साहित्यिक रचना और एक धार्मिक ग्रन्थ होने के नाते रामचरितमानस का स्थान और ऊंचा उठ गया है।"



सूरदास

तुलसीदास के कारण भक्ति-आन्दोलन का विकास अपनी चरम सीमा को प्राप्त हुआ। राम के आदर्शचरित को लोकरञ्जक रूप में व्यक्त करके हिन्दू जीवन को इन्होंने व्यापक नैतिक बल दिया। गोस्वामी तुलसीदास का जन्म १५०३ ई० में हुआ था और वे १६२६ ई० तक जीवित रहे। वे प्रकाण्ड पण्डित थे तथा उनमें असाधारण कवित्व की क्षमता थी। संस्कृतज्ञ होते हुए भी हिन्दी (अवधी) में रामचरितमानस की रचना करने का इनका उद्देश्य

द्धी हिन्दूमात्र का नैतिक जागरण था। इनकी अन्य प्रसिद्ध रचनायें विनय-पत्रिका, कवितावली, गीतावली आदि हैं।



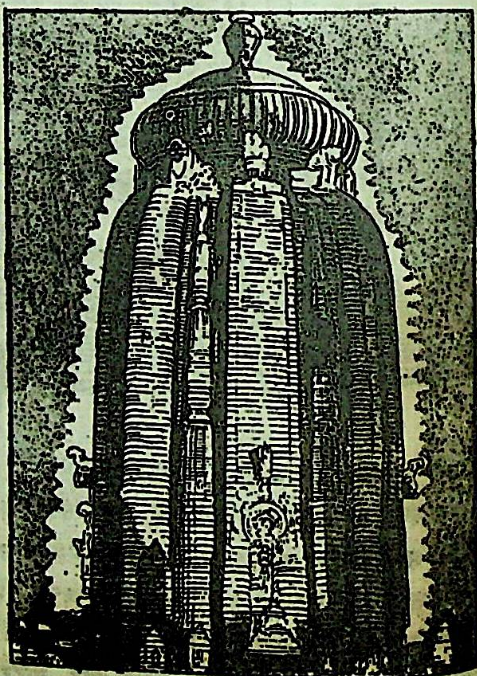
तुलसीदास

मध्ययुग में साहित्य के क्षेत्र में प्रभूत उपलब्धियाँ हुईं। बहुत से हिन्दू-मुस्लिम सन्त केवल सन्त ही नहीं, अपने समय के अच्छे कवि भी थे। प्रसिद्ध सूफी सन्त मलिक मुहम्मद जायसी अवधी के अच्छे कवि थे। ये अलाउद्दीन के समकालीन थे और इनकी प्रसिद्ध रचना पद्मावत है। निर्गुण सन्त-साहित्य के प्रसिद्ध कवि कबीर, दादू, मलूकदास और सुन्दरदास थे। अकबरकालीन

सूरदास और तुलसीदास की चर्चा हम कर चुके हैं। मीरावाई और रसखान भी कृष्ण-भक्ति-शाखा के प्रसिद्ध कवि थे। अन्य हिन्दी कवियों में बीरबल, गंग, अब्दुर्रहीम खानखाना, सुन्दरदास, केशवदास, सेनापति, देव, बिहारी, मतिराम, पद्माकर, भूषण आदि थे। इनकी रचनाओं से मध्यकालीन हिन्दी साहित्य बड़ा ही कीर्तिमान हुआ। उर्दू साहित्य की भी बड़ी उन्नति हुई। बली, नुसरत, हाशमी, सेवा, रामराव, शौकी, गब्बासी, चन्द्रभान, बरहमन, मीर, सैदा, शौज आदि प्रसिद्ध उर्दू कवि थे। फारसी साहित्य को सुल्तान तथा मुगल बादशाहों द्वारा बड़ा प्रश्रय मिला। नजीर, उर्फी, फैजी आदि इस युग के अच्छे फारसी कवि थे। मुगलों ने गीता, श्रीमद्भागवत आदि अनेक संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद फारसी में कराया। पण्डितराज जगन्नाथ मध्ययुगीन कवियों में सर्वश्रेष्ठ थे। ये शाहजहाँ के समकालीन थे। मुगल बादशाहों ने अपनी जीवनियाँ लिखी हैं।

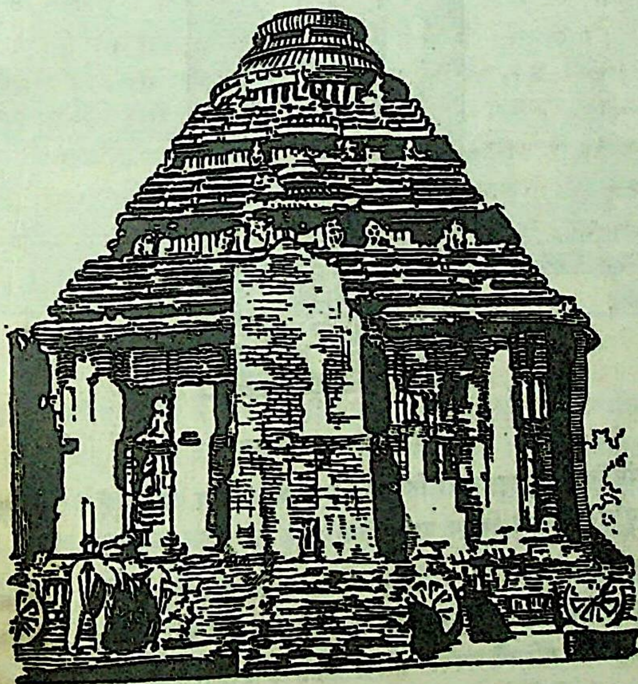
मध्ययुग में अबुल-फजल, फिरस्ता, खफी खाँ, गुलबदन बेगम, जौहर आदि प्रसिद्ध इतिहासकार थे जिनके ग्रन्थों का ऐतिहासिक ही नहीं, अपितु साहित्यिक महत्व भी है।

पूर्व मध्यकाल-युगीन वास्तुकला को मुस्लिम आक्रमणों से बड़ा धक्का लगा। हिन्दूमूर्तिकला और वस्तु का प्रचलन हिन्दू राज्यों की संरक्षता में होता रहा, किन्तु दिल्ली



भुवनेश्वर के लिङ्गराज मन्दिर का शिखर

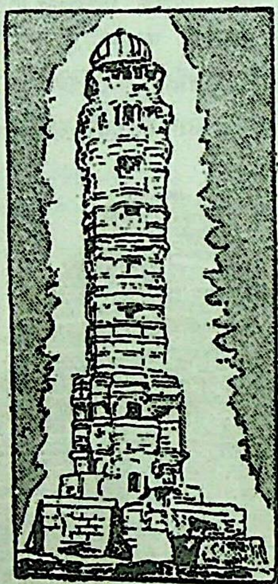
के सुल्तानों ने इस्लामी ढंग और आवश्यकता के अनुसार भवनों, मक्बरों अथवा अन्य प्रकार के स्मारकों को निर्मित कराया। इस इस्लामी शैली पर हिन्दू वास्तुशैली का प्रभाव रहा; फलतः आत्मा और स्वरूप में बहुविध भेद होते हुए भी सुल्तानों तथा अन्य मुस्लिम बादशाहों के बनवाये हुए वास्तु ईरानी परम्परा की अपेक्षा भारतीय परम्परा के ही निकट रहे। बहुत से हिन्दू वास्तु मुस्लिम वास्तु में परिवर्तित कर दिये गये। मुस्लिम वास्तु की सादगी इसकी प्रसिद्ध विशेषता है, साथ ही इसमें प्रान्तीय भेद भी है। जौनपुर



कोणार्क का सूर्यमंदिर

बंगाल, गुजरात, मांडू आदि प्रसिद्ध वास्तुकेन्द्र थे जहाँ के भवन ऊपर से समान इस्लामी ढांचा धारण करते हुए भी स्थानीय भेद के कारण विभिन्न शैलियों के

हैं। अढ़ाई दिन का झोपड़ा, कुतुबमीनार, तुगलकशाह का मकबरा, अताला मस्जिद आदि सुल्तानों के युग के प्रसिद्ध निर्माण हैं। हिन्दू रियासतों में हिन्दू शैली के निर्माण होते रहे जिनमें भुवनेश्वर का लिंगराज मन्दिर और कोणार्क

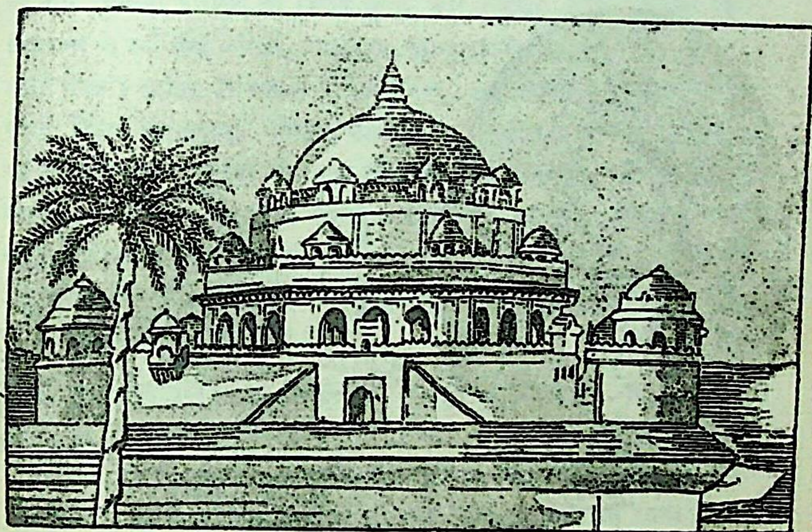


राणा कुम्भा का जय-स्तम्भ

का सूर्यमन्दिर, कुम्भा द्वारा निर्मित जयस्तम्भ विशेष प्रसिद्ध हैं। राजपूतों ने दुर्ग-निर्माण-कला को विशेष प्रश्रय दिया।

मुगलों में औरंगजेब को छोड़कर शेष सभी बादशाह निर्माता थे। बाबर को निर्माण का अवसर ही नहीं मिला किन्तु हिमायूं की बनवायी आगरे और फतेहाबाद की मस्जिदें अपनी ईरानी शैली के अलंकरण के लिए विख्यात हैं। शेरशाह द्वारा निर्मित सहसराम के मकबरे और मस्जिदें अपनी सादगी तथा भारतीयता के लिए दर्शनीय हैं। अकबर द्वारा निर्मित आरम्भिक भवनों पर, तथा दिल्ली के हिमायूं के मकबरा पर, ईरानी प्रभाव है। किन्तु आगरा, फतेहपुर

सीकरी, अजमेर, दिल्ली और इलाहाबाद में अकबरकालीन वास्तु पर भारतीय प्रभाव सबल है। इनमें संगमरमर का प्रयोग प्रचुर है जिससे



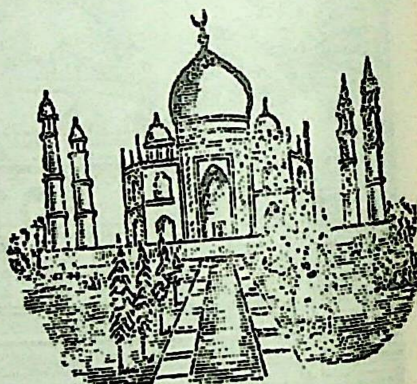
शेरशाह का मकबरा

अकबर द्वारा निर्मित भवनों से अकबर की सुरुचि और उसका उदात्त व्यक्तित्व झलकता है। वास्तु-निर्माण में अकबर की कल्पना महान थी। फतेहपुरशीकरी में बना जोधाबाई का महल, दीवाने खास, शेखसलीम चिस्ती का मकबरा, पञ्चमहल, बुलन्द दरवाजा आदि बड़े ही दर्शनीय हैं। जहाँगीर चित्रकला से तो बड़ी अभिरुचि रखता ही था, वास्तुकला के प्रति भी उदासीन न था। उसके समय को सिकन्दरा में बनी अकबर की समाधि और आगरे में बना एतमादुद्दौला का मकबरा तत्कालीन वास्तु के उत्तम उदाहरण हैं। शाहजहाँ का नाम ताजमहल के निर्माण के लिए अमर है। ताजमहल का निर्माण उसने अपनी चहेती बेगम मुमताज महल की स्मृति में करवाया था। इसका निर्माण बाईस वर्षों में पूरा हुआ था और इसके निर्माण पर तीस करोड़

रुपये खर्च हुए थे। यह सफेद संगमरमर का बना हुआ मकबरा है जो अपनी भव्यता और दीप्ति से दर्शकों का मन सहज ही हर लेता है। बारीक पच्ची-



मुमताज महल



ताजमहल

कारियों के लिए ताजमहल दर्शनीय है। पच्चीकारी में बहुमूल्य रत्नों का प्रयोग हुआ है।

शाहजहाँ के बनवाये अन्य भवनों में दिल्ली का लाल किला और उसके अन्दर के महल तथा दीवाने आम और दीवाने खास प्रसिद्ध हैं। लाहौर में जहाँगीर का मकबरा इसी समय में निर्मित हुआ था। औरंगजेब वास्तुकला के प्रति उदासीन था और हिन्दू वास्तु शैली का कट्टर दुश्मन। इसके समय से इस्लामी और हिन्दू वास्तुकला का पतन होने लगा।

हिन्दू रियासतों की संरक्षता में मुगलों के समय में भी कुछ मन्दिरों और भवनों का निर्माण हुआ, जो आकर्षक हैं।

चित्रकला के प्रति दिल्ली के सुल्तानों की कम अभिरुचि थी। किन्तु जहाँगीर के समय में चित्रकला को विशेष प्रश्रय मिला। चित्रकला की अनेक स्थानीय शैलियाँ प्रचलित थीं जिनमें मुगल और राजपूत शैलियाँ विशिष्ट थीं। चित्रकला के कई केन्द्र काँगड़ा, राजस्थान, हिमाचलप्रदेश, विजयनगर, जौनपुर आदि में थे। प्रसिद्ध चित्रकारों में आगा रजा, अबुल हसन, मुहम्मद नादिर, मुराद, मंसूर, विशनदास, मनोहर, बसावन, गोवर्धन आदि के नाम आते हैं। संगीत का मुगल बादशाहों को बड़ा शौक था, विशेषकर अकबर को। इसके समकालीन प्रसिद्ध संगीतकार तानसेन और बैजूबावरा थे। औरंगजेब अन्य कलाओं की तरह संगीत का भी शत्रु था। हिन्दू रियासतों में अनेक चित्रकारों और संगीतज्ञों को प्रश्रय मिला था। मालवा का बाजबहादुर और उसकी रानी रूपमती को भी संगीत प्रिय था।

मध्यकालीन संस्कृति का आर्थिक ढाँचा बहुत कुछ सुदृढ़ था और मुख्यतया कृषि पर ही निर्भर था। कृषि तथा कृषक जीवन को सुधारने के लिए अलाउद्दीन, शेरशाह और अकबरकालीन टोडरमल के नाम उल्लेखनीय हैं। अकबर के समय में कृषि-व्यवस्था को जो रूप दिया गया था वह इतना उत्तम और व्यवस्थित था कि उसका निर्वाह अठारहवीं और बहुत कुछ उन्नीसवीं शती तक होता रहा। उद्योग-व्यापार की भी उन्नति थी। विलास की वस्तुओं के निर्माण में मुगलकालीन कारीगरों ने बड़ी कुशलता प्राप्त कर ली थी। इनकी बनाई ऊनी, सूती और रेशमी वस्तुओं का निर्यात विदेशों में भी होता था। कसीदकारी, धातु, हाथीदाँत और लकड़ी की कलात्मक वस्तुओं पर पच्चीकारी और मीनाकारी भी उत्तम होती थी। मार्ग और यातायात के साधन पुराने ढंग के थे तथा कुछ स्थितियों में अरक्षित भी। जलयानों और पोतों की सुरक्षा पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था, जिससे विदेशी व्यापार पर भारतीय नियन्त्रण करीब-करीब नहीं के बराबर था। मुगलों की नौ-शक्ति की निर्बलता के ही कारण भारतीय व्यापार में अरब तथा अन्य पश्चिम एशियाई और यूरोपीय जातियों का बोलबाला था जिसका कुप्रभाव कालान्तर में भारतीय राजनीति पर भी पड़ा।

प्रश्न

१. चौदहवीं से सोलहवीं शती के सन्तों का परिचय दीजिए ।

२. मुगलों ने वास्तुकला का जो प्रश्रय दिया उसकी विवेचना कीजिए ।

३. मुगलकालीन संस्कृति पर निबन्ध लिखिए ।

४. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

कबीर, तुलसीदास, ताजमहल ।



अध्याय २४

भारत में योरोपीय व्यापारी

सातवी शती से ही भारतीय समुद्री व्यापार पर अरब व्यापारियों का व्यापक प्रभाव पड़ता रहा। धीरे-धीरे अरब व्यापारियों ने मिस्र और सीरिया को जीतकर भूमध्यसागर और लालसागर से होकर चलने वाले भारत और पश्चिमी देशों के व्यापार को पूर्णरूपेण नियंत्रित कर लिया। योरोपीय व्यापारी भूमध्यसागर और लालसागर से होकर भारत तक नही आ पाते थे, फलतः योरोपीय व्यापारियों को भारत से व्यापार करने के लिए नई राहें खोजनी पड़ीं। योरोपीय व्यापारियों के पास अच्छे जहाज, जहाजरानी के अच्छे साधन कुतुबनुमा और नक्शे भी थे। इन साधनों से सम्पन्न होकर योरोपीय व्यापारी भारत के लिए नये रास्तों की खोज में प्रवृत्त हुए। भारत की खोज में कोलम्बस ने अमेरिका का पता लगाया और वास्कोडिगामा १४९७ ई० में उत्तमाशा अंतरीक्ष का चक्कर लगाकर १४९८ई० में कालीकट पहुँच गया। कालीकट के राजा जमोरिन ने पूर्तगाली व्यापारियों को व्यापार की सुविधाएँ दीं और उन्हें बढ़ावा दिया। १५०५ ई० के लगभग पुर्तगाली व्यापारियों का अरब सागर से समुद्री रास्तों पर बड़ा प्रभाव जम गया। १५०५ ई० में अलमिडा नामक पुर्तगाली गर्वनर ने भारत में कई पुर्तगाली उपनिवेश स्थापित किये और उन्हें दुर्ग तथा सैनिक बल से सुरक्षित किया। १५१० ई० में अबुकर्क अलमिडा के बाद पुर्तगाली गर्वनर हुआ था तथा उसने गोवा पर अधिकार किया और इसे पुर्तगाली उपनिवेशों का केन्द्र बनाया। १६वीं शती में पुर्तगालियों का भारतीय समुद्री व्यापार पर एकाधिकार स्थापित हो गया।



वास्कोडिगामा

जितनी शीघ्रता से भारत में पुर्तगाली उपनिवेशवाद का उत्थान हुआ उतनी ही शीघ्रता से पतन भी। पुर्तगाली व्यापारी और प्रशासन केवल व्यापारी ही नहीं थे अपितु लुटेरे भी थे। ये व्यापार भी करते थे और अन्य व्यापारियों को लूटते भी थे। बलात् ईसाई मत के प्रचार की चेष्टा भी करते थे। मुसलमानों से इनका सम्बन्ध बुरा था और हिन्दुओं के बीच में ये लोग प्रिय नहीं थे। पुर्तगाली उपनिवेश के कर्मचारी क्रूर और व्यभिचारी थे जो स्त्रियों का अपहरण जैसा कुकर्म भी करते रहते थे। इन कारणों से भारत में पुर्तगाली व्यापारियों को विशेष सफलता न मिली। पुर्तगाल पर जब स्पेन का अधिकार हो गया तो पुर्तगाली हितों को बड़ी क्षति पहुँची और उनका व्यापार तथा उनका औपनिवेशिक व्यापार भी टप पड़ गया।

पुर्तगालियों के व्यापारिक प्रतिद्वन्द्वी हालैण्ड के डच व्यापारी थे। १६०१ ई० में डच व्यापारियों ने भारत तथा पूर्वी देशों से व्यापार करने के लिए एक कम्पनी स्थापित की। डच व्यापारियों का भारत पर कम प्रभाव रहा क्योंकि इसका ध्यान अधिकतर मशाला वाले पूर्वी द्वीपसमूह पर केन्द्रित था।

१६०० ई० में इंगलैण्ड के कुछ व्यापारियों ने भारत से व्यापार करने के लिए एक कम्पनी खोली। महारानी एलिजाबेथ ने इन व्यापारियों को भारत से व्यापार करने की अनुमति दी। इंगलैण्ड में भारत से व्यापार करने के लिए बनी अन्य कम्पनियों को मिलाकर एक में कर दिया गया, जिसे संयुक्त ईस्ट इण्डिया कम्पनी कहने लगे। १६१५ ई० में अंग्रेजों ने भारत के व्यापार और राजनीति में रुचि लेना प्रारम्भ किया। १६१५ ई० से सर टामस रो इंगलैण्ड के राजा जेम्स प्रथम का राजदूत बनकर जहांगीर के दरबार में आया। इसके प्रभाव से मुगल दरबार में पुर्तगालियों की प्रतिष्ठा घटी और उनका प्रभाव कम हुआ। ईस्ट इण्डिया कम्पनी को व्यापार की कई सुविधाएँ प्राप्त हुईं और अंगरेजों ने भारतीय समुद्र-तट के कई स्थानों पर केन्द्र खोले। व्यापार के प्रसिद्ध केन्द्र आरमा गांव और मछलीपट्टम थे। १६४० ई० के आसपास अंगरेजों ने मद्रास का शहर बसाया और वहाँ पर फोर्ट सेन्टजार्ज की स्थापना की। अंगरेजों

ने उड़ीसा में बालासोर में भी कारखाने खोले। बंगाल के सूबेदार की चिकित्सा करके प्रसिद्ध डाक्टर ग्रैबिल बटम ने १६५१ ई० में हुगली में कारखाना खोलने की अनुमति प्राप्त की और १६६१ ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी को बम्बई प्राप्त हुआ। इन सब उपलब्धियों से अंग्रेज व्यापारियों का प्रभाव बहुत बढ़ गया। किन्तु औरंगजेब से इन व्यापारियों की न पटी। १६७५ ई० में चुङ्गी के प्रश्न को लेकर औरंगजेब और कम्पनी में युद्ध भी छिड़ गया जो लगभग एक वर्ष तक चलता रहा। अन्त में औरंगजेब और अंगरेज व्यापारियों में सन्धि हो गयी और अंगरेजों को पुनः हुगली में व्यापार करने की आज्ञा मिल गई। बंगाल के नवाब विशेषकर शाइस्ता खाँ अंगरेजों को हुगली में व्यापार देने के पक्ष में न थे। किन्तु १६९० ई० में औरंगजेब से अंगरेज व्यापारियों को हुगली में किला बनाने और व्यापार करने की अनुमति मिल गई। १७०० ई० में अंग्रेजों ने सुतान्ति, कालीकता और गोविन्दपुर गाँवों को मिलाकर कलकत्ता नगर की स्थापना की। मुगल सम्राट् फरुंखसियर की चिकित्सा करके विलियम हेमस्टिन ने कम्पनी के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण सुविधाएँ प्राप्त कीं जिनका प्रभाव यह हुआ कि भारत में अंगरेज व्यापारियों का प्रभाव बहुत बड़ गया।

१६६४ ई० में फ्रांसीसियों ने भी एक व्यापारिक कम्पनी बनाई जिसका उद्देश्य भारत से व्यापोर करना था। फ्रांसीसो व्यापारी बड़े चतुर और व्यवहारिक थे तथा उन्हें भारत में अपना प्रभाव जमाने में अन्य कम्पनियों की अपेक्षा शीघ्र सफलता मिली। १६७४ ई० में फ्रांसीसियों ने पांडचेरी, चन्द्रनगर और माही में सुदृढ़ व्यापारिक और औपनिवेशिक केन्द्र स्थापित किये। इनका प्रभाव दक्षिण की देशी रियासतों पर विशेष रूप से था।

प्रश्न

१. भारत में योरोपीय व्यापारियों की कम्पनियों का परिचय दीजिए।

२. अंगरेज कम्पनी का मुगल बादशाहों से क्या सम्बन्ध था और उन्हें उनसे क्या-क्या सुविधाएँ मिलीं।

अध्याय २५

योरोपीय व्यापारियों की प्रतिद्वन्द्विता और उनका देशी रियासतों पर प्रभाव

१७०७ ई० में औरंगजेब की मृत्यु हुई। इसके बाद मुगलों की शक्ति क्षीण होती गई। औरंगजेब के बाद ऐसा कोई मुगल बादशाह न हुआ जो दिल्ली में बैठे-बैठे अंगरेजों और फ्रांसीसियों की औपनिवेशिक बस्तुओं को नियन्त्रित कर पाता। मुगलों और मराठों के संघर्ष के कारण भी मुगल बादशाह इन व्यापारियों की गतिविधियों पर दृष्टि नहीं डाल पाते थे। बंगाल के नवाबों ने जरूर कुछ चेष्टा इस प्रकार की कि जिससे हुगली के अंगरेजों को नियन्त्रण में लाया जा सके, किन्तु पाण्डिचेरी, बम्बई तथा सूरत के व्यापारियों को नियन्त्रण में रखना कठिन सा था। १७३९ ई० में पेशवाओं से भी अंग्रेजों को सूरत में व्यापार करने का अधिकार मिल गया था। अंग्रेज कम्पनी प्रारम्भ में व्यापार की ओर ही अपना ध्यान केन्द्रित किये रही। अंग्रेज व्यापारियों को कर न देना पड़ता था, अतएव वे अपना माल भारतीय व्यापारियों की स्पर्धा में सस्ते मूल्य पर भी बेच लेते थे। ये कारीगरों को उत्पादन के लिए रुपया और कच्चा माल देते थे और उनसे बनी वस्तुओं को बहुत सस्ती कीमत देकर प्राप्त कर लेते थे, इससे उनको बड़ा लाभ था क्योंकि कम से कम मूल्य देकर



डुप्ले

अधिक से अधिक लाभ पाने में वे सफल थे। साथ ही अन्य व्यापारियों का माल भी वे अपना कहकर बेचते थे और इस माल पर भी चुङ्गी न देते थे। अन्य व्यापारियों ने इसके लिए वे नाजायज घूस लेते थे। इन सब बातों के कारण अंग्रेज व्यापारी और उनकी कम्पनी बड़े लाभ में थी।

फ्रांसीसी कम्पनी अंगरेजों की स्पर्धा में थी। डुप्ले के नेतृत्व में फ्रांसीसी व्यापार और उपनिवेश बहुत संघटित हो गया था। डुप्ले ने सोचा कि अंग्रेजों को जिन्हें बहुत से व्यापारिक अधिकार प्राप्त हैं व्यापारिक तरीकों से पछाड़ना कठिन हैं, अतएव डुप्ले ने देशी रियासतों को अंग्रेज व्यापारियों के विरुद्ध भड़काया। उसने देशी रियासतों के आपसी झगड़ों में हाथ बँटाना शुरू किया। भारतीय सैनिकों को योरोपीय ढंग से प्रशिक्षित करके अपने अधीन एक अच्छी सेना एकत्रित कर ली। इसके बाद उसने देशी राज्यों के तत्कालीन शासकों और उत्तराधिकारियों के विरुद्ध नये दावेदार खड़े किये। इन बातों से डुप्ले ने देशी रियासतों के आपसी सम्बन्धों को बहुत बिगाड़ दिया और इनकी नीति पर हावी हो गया। देशी रियासतों पर अपना प्रभाव जमाकर उसने न केवल अंग्रेजों को भारत से बाहर निकाल देने की चेष्टा की अपितु वह भारत पर फ्रांसीसी साम्राज्य की स्थापना का स्वप्न भी देखने लगा। संयोग से दक्षिण में मराठों की शक्ति प्रबल थी। किन्तु वे उत्तरी भारत की राजनीति में अधिक रुचि लेते थे और दक्षिणी भारत में कम! हैदराबाद का निजाम नाममात्र के लिए मुगलों के अधीन था। किन्तु स्वतन्त्र होते हुए भी निजाम पर मराठों का आतंक था। कर्नाटक का नवाब अवश्य ही कुछ स्वाधीन था तथा उसकी राजनीतिक प्रभुता अन्य दक्षिणी रियासतों की अपेक्षा बढ़-चढ़ कर थी। अन्य स्वतन्त्र और सबल देशी रियासतें मैसूर और तंजौर की थी जिन्हें अपने अस्तित्व के लिए मराठों, निजाम और कर्नाटक की रियासतों से बराबर लड़ते रहना पड़ता था।

कर्नाटक के युद्ध—१७४४ और १७६३ ई० के बीच में कर्नाटक में तीन युद्ध हुए जिनमें फ्रांसीसियों और अंग्रेजों का प्रत्यक्ष हाथ रहा। कर्नाटक का पहला युद्ध १७४४ और १७४८ई० के बीच हुआ। फ्रांसीसियों और अंग्रेजों

के बीच यह युद्ध यूरोप में दोनों देशों की प्रतिद्वन्द्विता के कारण हुआ। आस्ट्रिया के उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर १७४० ई० ही में फ्रांस और इंग्लैंड में युद्ध हो रहा था। इन्हीं युद्धों की प्रतिच्छाया में दोनों देशों के व्यापारियों ने भारत में भी लड़ना शुरू किया। फ्रांसीसियों ने अंग्रेजों से मद्रास छीन लिया। अंग्रेजों को कर्नाटक के नवाब अनवरुद्दीन ने सहायता का वचन दिया था। अतएव नवाव की फौजों ने डुप्ले की फ्रांसीसी सेना पर आक्रमण कर दिया। डुप्ले की विजय हुई। इस विजय से फ्रांसीसियों का हौसला बहुत बढ़ गया और कर्नाटक के नवाब की प्रतिष्ठा बहुत घट गई।

कर्नाटक का दूसरा युद्ध (१७४८–१७५४ ई०) :—आस्ट्रिया के उत्तराधिकार का युद्ध जब समाप्त हुआ तो अंग्रेजों और फ्रांसीसियों में सन्धि हो गई। दोनों ने परस्पर विजित प्रदेश एक दूसरे को वापस कर दिये। किन्तु शीघ्र ही कर्नाटक के उत्तराधिकार का प्रश्न लेकर भारत में अंग्रेजों और फ्रांसीसियों में पुनः युद्ध छिड़ गया। १७४८ ई० में हैदराबाद के निजाम आसफजाह की मृत्यु हो गई। डुप्ले ने निजाम पद के लिए नासिरजंग को जो हैदराबाद के निजाम पद के लिए वास्तविक उत्तराधिकारी था, हैदराबाद का नवाव न मानकर मुजफ्फरजंग का समर्थन किया। फिर कर्नाटक के नवाब अनवरुद्दीन से प्रथम कर्नाटक युद्ध का प्रतिशोध लेने के लिए उसने मुजफ्फरजंग से अनवरुद्दीन के स्थान पर कर्नाटक का नवाब चाँदासाहव को बनवाने के लिए कहा। इस प्रकार डुप्ले, मुजफ्फरजंग और चाँदासाहब की एक संयुक्त सेना कर्नाटक के नवाव अनवरुद्दीन के विरुद्ध चढ़ दौड़ी। अनवरुद्दीन भाग गया और चाँदासाहव का कर्नाटक पर अधिकार हो गया। अनवरुद्दीन के पुत्र और उत्तराधिकारी मुहम्मद अली ने अंग्रेजों और हैदराबाद के नवाब नासिरजंग से सहायता माँगी। नासिरजंग ने कर्नाटक पर धावा बोल दिया। चाँदासाहब मैदान छोड़कर भाग गया और मुजफ्फरजंग जो नासिरजंग का निजाम पद का प्रतिद्वन्द्वी था, नासिरजंग का शरणापन्न हुआ। १७५० ई० में नासिरजंग धोखे से मार डाला गया। इस पर डुप्ले को अवसर मिला कि वह पुनः मुजफ्फरजंग को हैदराबाद का नवाब बनवा दे। मुजफ्फरजंग

को नवाब बनाकर डुप्ले ने उससे कृष्णा नदी के दक्षिणी भाग की गवर्नरी प्राप्त कर ली। इससे डुप्ले का प्रभाव हैदराबाद और कर्नाटक दोनों पर ही बढ़ गया। अंग्रेजों के लिए यह कठिन समय था। अतएव अंग्रेजों ने मुहम्मद अली की सहायता की तथा कर्नाटक की राजनीतिक गतिविधि को अपने पक्ष में नियन्त्रित करने का विचार किया। क्लाइव नामक एक लेखक की सलाह मानकर १७४६ ई० में अंग्रेजों ने त्रिचनापल्ली, जहाँ मुहम्मदअली चाँदासाहब के घेरे में आ पड़ा था और अर्काट जो कर्नाटक की राजधानी थी, पर एक साथ



लार्ड क्लाइव

आक्रमण किया। चाँदासाहब घबरा गया। १७५१ ई० में पराजित होकर मार गया। कर्नाटक पर मुहम्मद अली का अधिकार हो गया। मुहम्मद अली से अंग्रेजों को कई गाँव प्राप्त हुए जिसके आधार पर अंग्रेजी राज्य का शिलान्यास हुआ। इधर हैदराबाद में फ्रांसीसियों का प्रभाव भी जमा रहा। मुजफ्फरजंग अचानक बीमार पड़कर मर गया, किन्तु डुप्ले ने बुशी की संरक्षता में मुजफ्फरजंग

के स्थान पर सलामतजंग को निजाम पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। १७५४ ई० में डुप्ले फ्रांस बुला लिया गया और फ्रांसीसियों और अंग्रेजों में सन्धि हो गयी।

कर्नाटक का तीसरा युद्ध (१७५६–६३ ई०) :—ज्यों-ज्यों भारत में अंग्रेज और फ्रांसीसी व्यापारियों की जड़ जमती जा रही थी, दोनों में संघर्ष और प्रतिद्वन्द्विता बढ़ती जा रही थी। डुप्ले के चले जाने के बाद भारत में फ्रांसीसी उपनिवेशों का गवर्नर काउण्ट लैली नियुक्त हुआ। इसमें बुशी को, जो हैदराबाद में निजाम के संरक्षक के रूप में नियुक्त हुआ था, हैदराबाद से वापस बुला लिया। इस पर मराठों ने हैदराबाद पर आक्रमण कर दिया और निजाम से कई जिले छीन लिये। निजाम फ्रांसीसियों से बहुत चिढ़ गया और अंग्रेजों से सन्धि कर ली। निजाम राज्य का उत्तरी सरकार का इलाका जो फ्रांसीसियों के अधिकार में था, अंग्रेजों ने फ्रांसीसियों से छीन लिया तथा उस पर विधिवत् अधिकार जमाया। उत्तरी सरकार पर अंग्रेजों के आधिपत्य की पुष्टि भी निजाम ने कर दी। फिर धीरे-धीरे क्लाइव के नेतृत्व में अंग्रेजों ने फ्रांसीसियों को हराना प्रारम्भ कर दिया। वांडेवाश के पास लैली हार कर अंग्रेजों का बन्दी बना और चन्द्रनगर और पांडेचेरी अंग्रेजों के कब्जे में आ गया। १७६३ ई० में पुनः अंग्रेजों और फ्रांसीसियों में सन्धि हो गयी। दोनों ने एक दूसरे का विजित प्रदेश वापस कर दिया किन्तु फ्रांसीसियों को यह वचन देना पड़ा कि वे भारत की राजनीति में भविष्य में कोई रुचि न लेंगे। कर्नाटक के इस तीसरे युद्ध ने फ्रांसीसियों की कमर तोड़ दी। अंग्रेज कम्पनी का भारतीय राजनीति में रोब-दाब बढ़ गया।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सफलता के कारण :—पुर्तगाली, डच, फ्रांसीसी व्यापारियों की अपेक्षा अंग्रेज व्यापारियों की कम्पनी भारत में विशेष सफल रही। पुर्तगाली व्यापारी भारत में लोकप्रिय न हो सके और उनका प्रभाव भी डच व्यापारियों ने नष्ट कर दिया। डच व्यापारियों की दृष्टि भारत की अपेक्षा पूर्वी द्वीप समूहों में केन्द्रित थी। फ्रांसीसी व्यापारियों ने बहुत दिनों तक अंग्रेज व्यापारियों से टक्कर ली, किन्तु वे भी अंग्रेज व्यापारियों के सामने टिक न सके। फ्रांसीसी सरकार फ्राँसीसी व्यापारिक कम्पनी की ओर बहुत ध्यान न देती थी और भारत में इसकी राजनीतिक गतिविधि को रुचि

पूर्वक प्रश्रय ही देती थी। फ्रांसीसी व्यापारी भी स्वार्थी थे तथा उनमें मेल नहीं था। फ्रांस की सरकार भी इंगलैण्ड की अपेक्षा कमजोर थी। इसके विपरीत अंग्रेज व्यापारियों की जड़ भारत में बहुत पहले से जम चुकी थी और उन्हें समय-समय पर व्यापार और उपनिवेश सम्बन्धी अनेक अधिकार प्राप्त हो चुके थे। यह कम्पनी व्यक्तिगत व्यापारियों की कम्पनी थी जो फ्रांसीसी कम्पनी की तरह हर बात के लिए अपनी सरकार की मुखापेक्षी नहीं थी। कम्पनी के व्यापारियों का शासन में प्रभाव था। इंगलैण्ड की सरकार कम्पनी की व्यापारिक और राजनीतिक गतिविधि में पूरी-पूरी रुचि लेती थी और हर समय कम्पनी को सैनिक तथा आर्थिक सहायता देने के लिए तैयार रहती थी। इंगलैण्ड की नौसेना का भी आतंक अन्य यूरोपीय व्यापारी कम्पनियों को था। साथ ही अंग्रेजी कम्पनी को क्लाइव, वाटसन जैसे योग्य अधिकारियों और सैनिकों का नेतृत्व भी प्राप्त था।

प्रश्न

१. डुप्ले कौन था ? उसकी नीति क्या थी ? उसकी नीति का देशी रियासतों पर क्या प्रभाव पड़ा ?

२. कर्नाटक के युद्धों का वर्णन कीजिए।

३. अंग्रेजी कम्पनी की सफलताओं के कारणों पर प्रकाश डालिए।

अध्याय २६

बंगाल के नवाब और कम्पनी

१७०० ई० में औरंगजेब से बहुत-सी सुविधायें प्राप्त करके अंग्रेजों ने हुगली में अपना प्रभाव बढ़ा लिया था। बंगाल के नवाब मुर्शिदकुली खाँ से कम्पनी की न पटी। फर्रुखशियर से भी जब अंग्रेजों को कई ग्राम मिले तो बंगाल के नवाब और कम्पनी में खुला संघर्ष छिड़ गया। अंग्रेजों ने सैनिक बल के आधार पर ही फर्रुखशियर से मिले गाँवों को बंगाल के नवाब से छीना था। मुर्शीदकुली खाँ के दो उत्तराधिकारी शुजा और अलीवर्दी खाँ बड़े प्रबल थे ओर इनके सामने कम्पनी की एक न चली। कम्पनी के कर्मचारियों की उद्दण्डता रोकने के लिए अलवर्दी खाँ ने अंग्रेज और फ्रांसीसी व्यापारियों की किलेबन्दी पर भी नियन्त्रण लगवा दिया। किन्तु इसका उत्तराधिकारी शिराजुद्दौला कमजोर और नवयुवक था। फिर भी उसने अंग्रेजों के विरुद्ध उचित कदम उठाया। १७५६ ई० के लगभग अंग्रेज और फ्रांसीसी व्यापारी बंगाल में पुनः किलेबन्दी करने लगे। सिराजुद्दौला ने दोनों ही कम्पनियों को किलेबंदी रोकने का आदेश दिया। फ्रांसीसी मान भी गये। किन्तु अहंकारी अंग्रेज व्यापारियों ने विवेक से काम न लिया और बंगाल के नवाब की आज्ञा का उल्लंघन किया। इतना ही नहीं, अंग्रेजों ने सिराशुद्दौला के विद्रोहियों को शरण दी तथा व्यापार पर चुंगी देना भी बन्द कर दिया। फलतः सिराजुद्दौला ने हुगली पर आक्रमण करके अंग्रेजों को बंगाल से निकाल दिया।

क्लाइव और सिराजुद्दौला—क्लाइव ने अंग्रेजों के परभाव को रोक दिया और स्वयं स्थल मार्ग से एक बड़ी सेना लेकर बंगाल की ओर चढ़ दौड़ा। वाटसन भी जलमार्ग से बंगाल आया। १७५७ ई० में क्लाइव ने कलकत्ते पर पुनः अधिकार कर लिया तथा अन्य कई नगर जीते। १७५७ ई० में अंग्रेजों और सिराजुद्दौला में सन्धि हो गई, तथा कम्पनी को सभी व्यापारिक

सुविधायें पूर्ववत् प्राप्त हो गयी। इसी बीच क्लाइववंगाल का गवर्नर नियुक्त कर दिया गया। इस पद पर आसीन होते ही वह बंगाल में हलचल मचाने लगा। सिराजुद्दौला के विरोध में उसने उसके सेनापति मीरजाफर से, जो स्वयं सिराजुद्दौला के स्थान पर बंगाल का नवाब बनना चाहता था, साँठगाँठ की। मुर्शिदाबाद के हिन्दू व्यापारी भी सिराजुद्दौला के विरोधी थे। उनके नेता जगतसेठ अमीचंद को भी क्लाइव ने अपने पक्ष में किया। अमीचन्द के माध्यम से ही क्लाइव ने मीरजाफर को फोड़ा था।



सिराजुद्दौला

क्लाइव और मीरजाफर में यह सन्धि हुई कि सिराजुद्दौला को हटाकर मीरजाफर जब नवाबी पा जायगा तो वह कम्पनी को एक करोड़ रुपया और चौबीस परगने की जागीर देगा। उस जागीर की वार्षिक आय १७ लाख रुपये थी। साथ ही मीरजाफर ने कम्पनी के कर्मचारियों को घुस देने का भी वचन दिया था। अमीचंद को क्लाइव ने धोखे में रखा और उसे यह झाँसा दिया कि मीरजाफर जब नवाब हो जायगा तो नवाब के कोष का ५ प्रतिशत रुपया और जवाहरात का २४ प्रतिशत अमीचन्द को मिलेगा। अमीचन्द की वह शर्तें जाली कागज पर लिखी गई थीं। असली सन्धि पर अमीचन्द की चर्चा नहीं थी। इन सब तैयारियों के बाद क्लाइव सिराजुद्दौला के विरुद्ध यह छेड़ने का अवसर ढूंढने लगा।

प्लासी का युद्ध (१७५७ ई०)—क्लाइव ने सिराजुद्दौला पर आरोप लगाया कि उसने अंग्रेज कम्पनी की क्षति का हरजाना नहीं दिया और फ्रांसीसियों से मिला हुआ है। इन थोथे आरोपों को सिराजुद्दौला के सिर पर थोप कर बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए ही मुर्शिदाबाद की ओर सेना लेकर चढ़ दौड़ा। बंगाल का नवाब इस अप्रत्याशित आक्रमण के लिए तैयार न था। फिर भी सिराजुद्दौला ने अपनी सेना लेकर क्लाइव का प्रतिरोध किया। प्लासी के मैदान में दोनों की सेनायें डट गयीं। युद्ध छिड़ने पर मीरजाफर जो सिराजुद्दौला का सेनापति था, क्लाइव की सेना से मिल गया। सिराजुद्दौला पकड़ा गया

और मीरजाफर के पुत्र मीरन के द्वारा मारा गया। इस प्रकार २६ जून १७५७ ई० को बंगाल की स्वतन्त्र नवाबी का अन्त हुआ।

अमीचन्द को देशद्रोह का फल केवल प्रायश्चित मिला। जब वह अपनी हक माँगने के लिए मीरजाफर और क्लाइव के पास गया तो उसे असली संधि पत्र दिखला दिया गया जिस पर अमीरचन्द की चर्चा नहीं थी। वह क्षोभ और ग्लानि से पागल हो गया और कुत्तों की मौत मरा। क्लाइव और उसकी कम्पनी पूरी तरह से मालामाल हुई। उसे जागीर की आय के रूप में ९० हजार प्रतिवर्ष मिलने का वचन मिला और २३॥ लाख रुपये कम्पनी के कर्मचारियों को भेंट रूप में मिले। फिर भी कम्पनी को अभी १ करोड़ रुपया मिलना शेष था जो मीरजाफर तत्काल न दे सका।

क्लाइव और मीरजाफर—मीरजाफर के सम्बन्ध कम्पनी तथा क्लाइव से अच्छे न रह सके। क्लाइव के हस्तक्षेप के कारण नाममात्र का नवाब था। कम्पनी ने इतना धन उससे लूटा था कि वह निर्धन हो गया था। उसके पास अच्छी सेना भी न थी। सेना और कर्मचारियों के अभाव में वह कर भी नहीं वसूल पाता था। फलतः वह दिन-प्रतिदिन क्लाइव और कंपनी के चंगुल में फँसता जा रहा था। बंगाल पर शाहआलम ने अवध के नवाब की सहायता से इसी बीच आक्रमण कर दिया। बंगाल में भी कम्पनी के अनुशासन के कारण बड़ी अशान्ति थी। जगह-जगह विद्रोह हो रहे थे। क्लाइव ने बड़ी तत्परता से इन विद्रोहों को दबाया और शाहआलम को रोकने के लिए बढ़ा। मगध का नवाब शाहआलम का साथ छोड़कर भाग गया। शाहआलम और क्लाइव में सन्धि हो गई। शाहआलम की ओर से क्लाइव को अमीर की खिताब मिली। क्लाइव ने मीरजाफर से कलकत्ता का दक्षिणी प्रदेश अपने लिए जागीर के रूप में प्राप्त



शाहआलम

कर लिया। इस प्रकार जब मीरजाफर बहुत कुछ वसूल किया गया तो उसे बंगाल की नवाबी से हटा दिया गया। क्लाइव १७६० ई० में इंगलैंड वापस बुला लिया गया। नये गवर्नर वेन्सिटार्ट ने मीरकासिम को, जो मीरजाफर का दामाद था, मीरजाफर की जगह बंगाल का नवाब बनाया। मीरकासिम से कम्पनी ने वर्दवान, चटगाँव, मिदनापुर के लिए २० लाख रुपये प्राप्त किये।

मीरकासिम :—१७६० ई० में मीरकासिम बंगाल का नवाब बना। वह योग्य था और कम्पनी का कठपुतली नहीं बनना चाहता था। उसने एक सेना भी संगठित कर ली थी और प्रशासन मे कुछ सुधार भी किया था। शासन और सेना में अंग्रेजों के अतिरिक्त अन्य विदेशियों को भी उसने रखा। ये बातें कम्पनी कर्मचारियों को सह्य न थीं। न तो वे यह चाहते थे कि मीरकासिम विदेशियों का सहयोग और सम्पर्क प्राप्त करे और न वे यही चाहते थे कि मीरकासिम स्वयं अपना शासन सुधार ले। किन्तु संघर्ष का प्रत्यक्ष कारण चुंगी हुई। कम्पनी के कर्मचारी न तो कम्पनी के माल पर चुंगी देते थे और न अपने। बल्कि अन्य व्यापारियों के माल पर भी अपनी मुहर लगाकर एवज में व्यापारियों से कुछ रुपया वसूल कर उनका भी माल अपना कहकर बिना चुंगी के बेचते थे। मीरकासिम ने कम्पनी की कौंसिल से इसकी कई बार शिकायतें कीं। जब उसके लिये कुछ न हो सका तो उसने चुंगी प्रथा ही हटा दी। इससे अंगरेज व्यापारियों के व्यक्तिगत हितों पर धक्का लगा और कम्पनी ने मीरकासिम को गद्दी से उतार कर मीरजाफर को पुनः गद्दी पर बैठाना तय किया। मीरकासिम ने विद्रोह कर दिया तथा अंग्रेज कोठियों को नष्ट-भ्रष्ट करके बहुत से अंग्रेजों को मार डाला। उसकी सहायता शाहआलम और अवध के नवाब भी कर रहे थे। बंगाल की कौंसिल ने मीरकासिम की जगह पुनः मीरजाफर को गद्दी पर बैठा दिया और उससे फिर बड़ा धन तथा मीरकासिम द्वारा की गई कम्पनी की हानियों के लिए हरजाना देने का वचन प्राप्त किया। १७६४ ई० में बक्सर में कम्पनी की सेना की मुठभेड़ मीरकासिम, अवध के नवाब और शाहआलम की संयुक्त सेना से हुई। मीरकासिम हारकर

भाग गया और लुप्त हो गया। शाहआलम कम्पनी के अधिकार में आया। अवध के नवाब को भी कम्पनी से सन्धि करनी पड़ी। इस बीच पुनः क्लाइव दो वर्षों के लिए (१८६५–१८६७ ई०) कम्पनी का गवर्नर बनाकर भेजा गया। उसने अनेक आन्तरिक सुधार किये और अवध से सन्धि करके अवध के नवाब सिराजुद्दौला से ४० लाख रुपया युद्ध का हरजाना वसूल किया और उसे कम्पनी की एक सेना भी रखनी पड़ी। बंगाल का नवाब मीरजाफर इसी बीच मर गया। अंग्रेजों ने उसके पुत्र नज्मुद्दौला को बंगाल का सूबेदार नियुक्त किया। नज्मुद्दौला को वस्तुतः कम्पनी के अधीन कर दिया गया था। बंगाल में क्लाइव ने दोहरे शासन की व्यवस्था की। बंगाल का नवाब नज्मुद्दौला केवल अब सूबेदार था और उसे बंगाल में आन्तरिक शान्ति और सुरक्षा की व्यवस्था करनी थी। कम्पनी ने बंगाल के नवाब की दीवानी ली और वह कर वसूलती थी। इस द्वैध शासन का बड़ा ही बुरा परिणाम बंगल पर पड़ा। कम्पनी के कर्मचारी कमीशन के लोभ में बंगाल के किसानों पर बड़ा-बड़ा अत्याचार करते थे तथा क्रूरता से कर वसूलते थे। बंगाल दरिद्र हो गया और १७७० ई० में अकालग्रस्त हो गया। बंगाल की जनसंख्या का $\frac{1}{2}$ भाग भूखों मर गया तथा $\frac{1}{2}$ भूमि बंजर हो गयी। १७७२ ई० में वारेन हेस्टिंग्स ने कम्पनी की स्थिति में कुछ सुधार किया। उसने बंगाल को नवाब के निकम्मा सिद्ध करके उसे १६ लाख वार्षिक पेंशन दे दी। संपूर्ण बंगाल को कम्पनी के शासन में ले आया और इस प्रकार बंगाल की नवाबी का अन्त कर दिया।

प्रश्न

१. क्लाइव कौन था ? उसके कार्य की आलोचना कीजिए।
२. प्लासी के युद्ध के क्या कारण थे ? उसका क्या परिणाम हुआ ?
३. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिये :—
सिराजुद्दौला, मीरजाफर, मीरकासिम, अमीचन्द और शाहआलम।



अध्याय २७

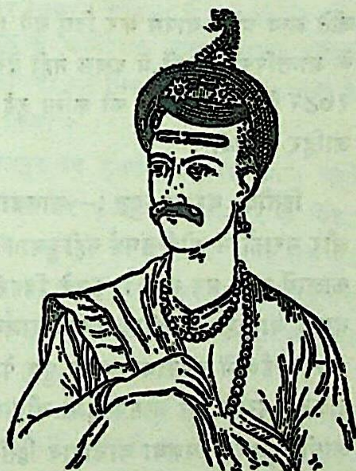
मराठा और मैसूर राज्य तथा कम्पनी

कर्नाटक युद्धों के कारण हैदराबाद का निजाम अंगरेजों का मित्र हो गया था, किन्तु मराठों और मैसूर के हैदरअली से कम्पनी की जो अनबन चल रही थी, बंगाल में कम्पनी को जो सफलता मिली थी उसके कारण कम्पनी के भारत स्थित कर्मचारियों का हौसला बहुत बढ़ गया था। वे साम्राज्यवादी नीति के द्वारा युद्ध और कूटनीति से कम्पनी के साम्राज्य का विस्तार करना चाहते थे।

कम्पनी और मराठे :—१७७५ और १८१८ ई० के बीच मराठों और कम्पनी में कई युद्ध हुए। दुर्भाग्य से मराठों में बड़ी फूट थी और पेशवापद के लिए मराठा सरदारों में बड़ी होड़ लगी थी। १७७५ ई० में रघुनाथराव ने



राघोबा



नाना फड़नवीश

बम्बई के गवर्नर से पेशवा पद के लिए सहायता माँगी और कम्पनी को प्रतिमास डेढ़ लाख खर्च देकर तीन हजार सैनिक प्राप्त करने की चेष्टा की, तथा यह भी वचन दिया कि पेशवा पद पाने के बाद वह कम्पनी को सालसेट, वेसीन, भड़ौच

और सूरत का कुछ हिस्सा देगा। १७७६ ई० में बम्बई के गवर्नर की उपेक्षा करके बंगाल के गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स से नाना फड़नवीस ने एक संधि कर ली और यह तय किया कि वह रघुनाथराव या राघोवा को २५ हजार रुपया प्रतिमास पेंशन देगा तथा कम्पनी को १२ लाख आय का इलाका देगा। किन्तु वारेन हेस्टिंग्स की शर्तों को कम्पनी के डाइरेक्टरों ने नामंजूर किया और बम्बई के गवर्नर की बात मानकर रघुनाथराव की सहायता करना स्वीकार किया, साथ ही कम्पनी ने निजाम को भी पूना दरबार को सहायता न करने के लिए कहा। पेशवा अकेला पड़ गया, फिर भी इस बीच अंगरेजों की परिस्थिति हैदरअली के कारण डाँवाडोल थी क्योंकि हैदरअली ने मद्रास पर आक्रमण कर दिया था। कम्पनी और पेशवा में संधि हो गई जिसे सालबाई की संधि कहते हैं। सन्धि की शर्तों के अनुसार कम्पनी को सालसेट के अलावा उनके द्वारा जीते अन्य प्रदेश वापस कर दिए गये। अङ्गरेजों ने वचन दिया कि वे मराठों के आन्तरिक मामलों में दखल नहीं देंगे, मराठों ने रघुनाथराव को पेंशन दिया। १७८२ ई० में सालबाई की सन्धि हुई थी। इस युद्ध से मराठों की कमजोरियाँ जाहिर हो गयीं।

द्वितीय मराठा युद्ध :—सालबाई की सन्धि के बीस वर्षों तक कम्पनी और मराठों में कोई संघर्ष नहीं हुआ। इसी बीच कम्पनी की शक्ति और महत्त्वाकांक्षायें बहुत बढ़ गयीं। इसके विपरीत मराठों का वैमनस्य, ईर्ष्या और द्वेष बढ़ता जा रहा था और उनका राजनीतिक प्रभाव भी घटता जा रहा था। १७९५ ई० में रघुनाथराव का पुत्र पेशवा बना। इसी के लगभग यशवंतराव होलकर इन्दौर का शासक हुआ और दौलतराव सिन्धिया ग्वालियर की गद्दी पर आसीन हुआ। पेशवा बाजीराव द्वितीय ने सिन्धिया और होलकर दोनों को असन्तुष्ट कर दिया तथा १८०२ ई० में होलकर से पराजय होकर अंगरेजों की शरण में गया। अंग्रेज और बाजीराव द्वितीय में बसीन की सन्धि हुई और बाजीराव ने वेलजली की सहायक शर्तें स्वीकार कर लीं। इस शर्त के अनुसार बाजीराव ने यह वचन दिया कि पेशवा पद प्राप्त करने के बाद वह कम्पनी को २६ लाख वार्षिक आय वाले इलाके को देगा और कम्पनी को अन्य व्यापारिक

सुविधायें भी देगा। कम्पनी ने एक सेना भेजकर पूना से होल्कर की सेना को भगा दिया तथा बाजीराव द्वितीय को पेशवा पद पर पुनः प्रतिष्ठित करा दिया। सिन्धिया और भोसले कम्पनी के इस व्यवहार से बहुत रुष्ट हुए तथा उन दोनों ने कम्पनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। कम्पनी की ओर से सिन्धिया और भोसले के खिलाफ उत्तर और दक्षिण से दो सेनायें भेजी गयीं। वेलजली ने, जो दक्षिणी सेना का नेतृत्व कर रहा था अहमद नगर के किले को जीतकर भोसले और सिंधिया की संयुक्त सेना को पराजित किया। सिंधिया से आसीरगढ़ और बुरहानपुर भी छीन लिया। कम्पनी की उत्तरी सेना के सेनापति ने दिल्ली और आगरे पर अधिकार कर लिया तथा लासवाड़ी नामक स्थान पर सिंधिया को पूरी तरह परास्त किया। १८०३–५ ई० के लगभग भोसला और सिंधिया दोनों से ही कम्पनी की सन्धि हो गई और दोनों ने बाजीराव द्वितीय की तरह बेसीनकी सन्धि की शर्तों को स्वीकारकर लिया। भोसला से कम्पनी को कटक और बरार तथा सिंधिया से आसीरगढ़ के अतिरिक्त उसका सारा दक्षिणी प्रदेश मिला। दिल्ली और आगरा भी कम्पनी को मिला। दोनों ने कम्पनी के रेजीडेण्ट और सेना को रखना स्वीकार किया।

तृतीय मराठा युद्ध :—होल्कर ने जयपुर पर हमला कर दिया था। वहाँ के राजा ने कम्पनी से सहायता माँगी जिस पर कम्पनी ने होल्कर के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। होल्कर और कम्पनी के बीच दो वर्षों तक युद्ध (१८०४ से १८०६ ई०) चलता रहा। १८०६ ई० में होल्कर ने भी सहायक सन्धि स्वीकार कर ली। इसके एक वर्ष पूर्व ही गायकवाड भी सहायक सन्धि को मान चुका था।

चतुर्थ मराठा युद्ध :—सब कुछ गवाँ करके और एक-एक करके जब सभी मराठा सरदार अंग्रेजों के चंगुल में फँस गये तो मराठों को बड़ी ग्लानि हुई। बाजीराव द्वितीय स्वयं भी बहुत पछताया और मराठों को एक सूत्र में बाँधकर कम्पनी से युद्ध करने के लिए प्रेरित किया। पेशवा ने १८१७ ई० में किर्की नामक स्थान पर अंग्रेजों पर हमला कर दिया। भोसला और होल्कर ने भी बाजीराव का अनुसरण किया, किन्तु परिणाम कुछ अच्छा न हुआ और अंग्रेजों के सामने पेशवा, होल्कर और भोसला तीनों को पराजित होना पड़ा।

पेशवाई का अन्त कर लिया गया और पेशवा को आठ लाख का वार्षिक पेंशन देकर पूना से बिठूर भेज दिया गया। उत्तरी भारत में भोंसला का जो प्रदेश पड़ता था उसे कम्पनी ने अधिकृत कर लिया। होल्कर की भी शक्ति कमकर दी गई और इस प्रकार १८१८ ई० तक मराठों की स्वतन्त्रता का अन्त कर दिया गया।

मराठों के पतन के कई कारण थे। शिवाजी के बाद मराठों को कोई योग्य नेता न मिला था। मराठा सरदार स्वार्थी थे और व्यक्तिगत लाभ के लिए लड़ते-झगड़ते रहते थे। उनका सैन्य-बल भी अंग्रेजों के सामने टिकने योग्य न था। चौथ और सरदेसमुखी की आड़ में मराठे लूट-खसोट करते थे जिसके कारण वे लोकप्रिय न थे। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही प्रकार की रियासतें मराठों की इस प्रकार की नीति से परेशान थी और मराठों के पराभव पर उन्हें अफसोस न था। इन कारणों से मराठों का शासन और व्यवहार लोकप्रिय न था और उनका पतन हुआ।

मैसूर पर अधिकार—दक्षिण भारत की रियासतों में मैसूर का राज्य बड़ा प्रमुख था। यहाँ का शासक हैदरअली बड़ा ही प्रतिभावान और नीतिज्ञ था। एक साधारण सिपाही की हैसियत से इसने राज्य-पद की प्राप्ति अपने गुणों और विशेषताओं के द्वारा ही की थी। १७६१ ई० तक इसका प्रभाव बहुत बढ़ गया। मराठे भी इससे ईर्ष्या करते थे। १७६५ ई० में मराठों ने हैदरअली को हरा भी दिया था। अगले ही वर्ष निजाम, मराठा और अङ्गरेजों ने एक साथ हैदरअली पर आक्रमण करने की एक योजना बनाई। किन्तु हैदरअली ने बड़ी चतुरता से निजाम और मराठों को अङ्गरेजों से अलग कर दिया। इस सफलता के बाद निजाम के साथ सन्धि करके (१७६७-६९ ई० में) अङ्गरेजों पर धावा कर दिया। हैदरअली ने कर्नाटक को रौंद डाला और मद्रास को घेर लिया। भयभीत होकर अंग्रेजों



हैदरअली

ने हैदरअली से सन्धि कर ली। इस सन्धि के अनुसार हैदरअली और अंग्रेजों में यह शर्त हुई कि किसी तीसरे शत्रु के आक्रमण पर वे एक दूसरे की सहायता करेंगे।

मैसूर का दूसरा युद्ध—हैदरअली और कम्पनी का मनमुटाव चल ही रहा था। प्रथम मैसूर युद्ध के अन्त में अंग्रेजों ने हैदरअली को यह वचन दिया था कि वे हैदरअली पर यदि किसी शत्रु ने हमला किया तो सहायता देंगे। १७७१ ई० में मराठों ने हैदरअली पर आक्रमण किया किन्तु अंग्रेजों ने हैदरअली की कोई सहायता नहीं की। साथ ही हैदरअली की इच्छा के विरुद्ध अंग्रेजों ने माही पर अधिकार भी कर लिया। अतएव १७७९ ई० में हैदरअली ने अंग्रेजों के विरुद्ध निजाम ने फिर साँठ-गाँठ की। इस पर अंग्रेज और हैदरअली में युद्ध छिड़ गया। इसे मैसूर का द्वितीय युद्ध कहते हैं, जो १७८० ई० से १७८४ ई० तक चलता रहा।

हैदरअली ने बड़ी तेजी से कर्नाटक और अरकाट पर अधिकार कर लिया, किन्तु १७८१ ई० में हैदरअली हार गया। हैदरअली के पुत्र टीपू को अवश्य ही कुछ सफलताएँ मिलीं और उसने १७८२ ई० में कुहनोर जीत लिया और अंग्रेजों की एक बहुत बड़ी सेना को, जो ब्रैथयेट के अधीन टीपू से लड़ने आयी थी, बुरी तरह पराजित किया। इसी बीच हैदरअली मर गया किन्तु टीपू ने युद्ध को जारी रखा। टीपू ने बदनौर और मंगलौर पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार टीपू १७८५ ई० तक अंग्रेजों से लड़ता रहा, तदुपरान्त दोनों में सन्धि हो गयी उभय पक्षों ने एक दूसरे का जीता हुआ राज्य वापस कर दिया।

मैसूर का तीसरा युद्ध—टीपू जानता था कि उसका युद्ध अंग्रेजों से होना फिर भी अनिवार्य है। अतएव वह चुपके-चुपके फ्रांसीसियों और तुर्की देश से सहायता की बातचीत कर रहा था। इन दिनों भारत का गवर्नर जनरल कार्नवालिस था। वह भी सतर्क था और उसने टीपू के विरुद्ध निजाम और मराठों को फोड़ लिया था। टीपू ने निजाम से गुण्टूर का इलाका छीन लिया। इसी प्रकार ट्रावनकोर के हिन्दू राज्य पर भी उसने आक्रमण कर दिया। वह हिन्दू राज्य अंग्रेजों का मित्र था। १७९० ई० में कार्नवालिस ने मराठों और निजाम के संयुक्त सहयोग से टीपू पर हमला कर दिया। युद्ध के आरम्भिक

परिणाम टीपू के पक्ष में रहे, किन्तु अन्त में टीपू की हार हुई। १७९२ ई० में टीपू और कम्पनी में सन्धि हो गई, जिसके अनुसार टीपू को ३० लाख पौण्ड युद्ध का हर्जाना देना पड़ा तथा अपना आधा राज्य अङ्गरेजों, मराठों और निजाम को देना पड़ा। उसे अपने दो पुत्रों को भी जमानत के रूप में अंग्रेजों



टीपू सुल्तान

के अधीन करना पड़ा। इस सन्धि को श्रीरंगपट्टम की सन्धि के नाम से जाना जाता है। इस सन्धि की वजह से टीपू की वास्तविक सत्ता बहुत घट गई और वह कमजोर हो गया।

मैसूर का चौथा युद्ध—मैसूर के तीसरे युद्ध में पराजित और अपमानित होकर भी टीपू ने अपना उत्साह नहीं खोया। वह बड़ा ही वीर और स्वतन्त्रताप्रिय था। प्रजा में वह लोकप्रिय था तथा धार्मिक-सहिष्णुता उसकी महान् विशेषता थी। अंग्रेज योरप में नेपोलियन के बढ़ावे के कारण त्रस्त थे और उन्हें इसकी भी आशका थी कि कहीं भारत में फ्रांसीसियों का आक्रमण न हो जाय। टीपू ने फ्रांसीसियों से मित्रता कर ली थी तथा काबुल और तुर्की से भी स्वातन्त्र्य युद्ध के लिए सहायता प्राप्त करने की चेष्टा कर रहा था। इन दिनों वेलजली भारत का गवर्नर था और उसने यह धारणा बनाई कि बिना टीपू की सत्ता को मिटाये कम्पनी का भविष्य भारत में सुरक्षित नहीं है। अतएव बिना किसी पूर्व भूमिका के वेलजली ने टीपू से सहायक सन्धि को स्वीकार कर लेने क संदेश भेजा। यह प्रस्ताव टीपू के लिए अपमानजनक था। १७९९ ई० में अंग्रेजों ने मैसूर पर आक्रमण कर दिया। टीपू की तैयारियां

अपूर्ण थीं। युद्ध थोड़े दिन चला। मल्लवल्ली में टीपू हार गया तथा श्रीरंगपट्टम् में अपने किले की सुरक्षा करते हुए वीर-गति को प्राप्त हुआ। मैसूर का अधिकांश राज्य कम्पनी ने हड़प लिया। शेष भाग को एक हिन्दू राजा को देकर, जो कि प्राचीन मैसूर राजवंश का ही था, नये हिन्दू मैसूर राज्य की स्थापना की। टीपू का सारा परिवार अंग्रेजों द्वारा बन्दी बना लिया गया।

प्रश्न

१. कम्पनी और मराठों के सम्बन्धों पर टिप्पणी लिखिए।
२. मराठों के पतन के क्या कारण थे ?
३. मैसूर और कम्पनी के सम्बन्धों की व्याख्या कीजिए।
४. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए :—
   राघोबा, बाजीराव द्वितीय, हैदरअली, टीपू सुल्तान, नाना फड़नवीस।



अध्याय २८

कम्पनी का राज्य विस्तार

भारत में कम्पनी का राज्य-विस्तार धीरे-धीरे हुआ। क्लाइव के समय में किस तरह बंगाल की नवाबी हड़प ली गयी, इसका विवरण हम प्रस्तुत कर रहे हैं। वारेन हेस्टिंग्स (१७७२-१७७४ ई०) का शासन काल अंग्रेजी साम्राज्य के विस्तार के लिए बड़ा महत्त्वपूर्ण था। मराठों के सरदार महादजी सिन्धिया



वारेन हेस्टिंग्स

और शाहआलम के मनसूबों पर हेस्टिंग्स पानी फेर चुका था। अवध के नवाब से सन्धि करके उसने अपनी शक्ति उत्तरी भारत में मजबूत कर ली थी। बिना

किसी निमित्त और नैतिक आधार के, केवल लोभ और साम्राज्य-कामना से वह रुहेलों को परास्त कर उनका राज्य जीतकर अवध के सूबे में मिला चुका था। बनारस के राजा चेतसिंह को भी उसने बिना किसी औचित्य के पदच्युत किया, तथा बनारस का राज्य कम्पनी के नियन्त्रण में लाया। मराठों को पानीपत की तीसरी लड़ाई (१७६१ ई०) में बड़ी क्षति उठानी पड़ी थी। उनकी रही-सही प्रतिष्ठा भी कम्पनी और मराठों के बीच हुए प्रथम मराठा युद्ध के कारण जाती रही। वारेन हेस्टिंग्स का व्यवहार अवध के नवाब के साथ भी अच्छा न रह सका। शुजाउद्दौला के बाद नवाब आसफउद्दौला हेस्टिंग्स से परेशान था। अवध की बेगमों की लूट में भी हेस्टिंग्स का हाथ था। हेस्टिंग्स के ही शासन-काल में प्रथम दो मैसूर युद्ध हो चुके थे, जिससे हैदरअली और टीपू को बड़ी क्षति पहुँची थी।

लार्ड कार्नवालिस (१७८५-१७९३ ई०) शान्तिप्रिय होते हुए भी साम्राज्यवादी था तथा तृतीय मैसूर युद्ध में बड़ी रुचि ली थी। किन्तु सबसे बड़ा साम्राज्यवादी गवर्नर जनरल लार्ड वेलेजली (१७९८-१८०५ ई०) था जिसने अपनी सहायक नीति से अनेक देशी राज्यों को पंगु कर दिया था। इस



लार्ड कार्नवालिस



लार्ड वेलेजली

नीति के अनुसार कम्पनी से सन्धि करने वाले देशी राज्यों को अंग्रेजी अफसरों की देख-रेख में अपनी रक्षा के लिए एक सेना रखनी होती थी, तथा सेना के खर्च के लिए अपने राज्य का कुछ भाग अंग्रेजों को देना पड़ता था, जिसके

बदले में अंग्रेज सरकार उनकी रक्षा करती थी। देशी रियासतें इस सन्धि के अनुसार बिना कम्पनी सरकार की अनुमति के अन्य किसी से युद्ध या सन्धि न कर सकती थीं। साथ ही देशी राज्यों को अपने दरबार में एक अंग्रेज रेजीडेण्ट भी रखना पड़ता था।

इस सहायक नीति का सबसे पहला शिकार १७९८ ई० में निजाम हुआ। इसे स्वीकार करने के बाद निजाम का स्वतन्त्र राज्य अंग्रेजों का मुखापेक्षी हो गया। तीन कमजोर राज्य—कर्नाटक, सूरत और तंजोर पर कुशासन का आरोप लगाकर वेलेजली ने सहायक सन्धि उन पर जबरदस्ती लाद दी और इस प्रकार उनकी प्रभुसत्ता का अपहरण किया। अवध के नवाब भी, जो अङ्गरेजों के मित्र माने जाते थे, वेलेजली के नीति-चक्र से न बच सके। विदेशी आक्रमण का झूठा भय दिखाकर १८०१ ई० में वेलेजली ने अवध से नयी सन्धि की जिसके परिणामस्वरूप कम्पनी को रुहेलखण्ड और गंगा-यमुना दोआबा का काफी हिस्सा मिला। टीपू सुल्तान को भी सहायक सन्धि न स्वीकार करने के कारण चतुर्थ मैसूर युद्ध के फलस्वरूप अपना सर्वनाश कराना पड़ा। मराठों की आपसी फूट, अहंकार और स्वार्थ ने उन्हें भी सहायक सन्धि के फन्दे में डाल दिया। १८०२ ई० में पेशवा ने, १८०४ ई० में भोसले और सिन्धिया ने, १८०६ ई० में होल्कर ने सहायक सन्धि को स्वीकार कर लिया। इन सन्धियों से मराठों की सत्ता नष्ट हो गई।

गोरखा और कम्पनी—१८१३ ई० में लार्ड हेस्टिंग्स भारत का गवर्नर जनरल होकर आया। यह भी बड़ा साम्राज्यवादी था। १८१७ ई० में इसने अन्तिम रूप से मराठों को पूना और ग्वालियर की सन्धियों द्वारा अपनी सत्ता में मिलाया। मन्दसोर की सन्धि से होल्कर भी कम्पनी के वशीभूत हुए। लार्ड हेस्टिंग्स की दृष्टि उत्तर में नेपाल की ओर भी थी। गोरखपुर तक का भाग जब कम्पनी की स्वायत्तता में आ गया तो नेपाल के गोरखों और अंग्रेजों में संघर्ष होना भी अनिवार्य हो गया। कई युद्धों में गोरखों को अंग्रेजों के विरुद्ध सफलता भी मिली और अंग्रेज सैनिक पराजित भी हुए; किन्तु अक्टर लोनी के सेनापतित्व में अन्त में, अल्मोड़ा के लगभग, गोरखों की पराजय हो गई। १८१६ ई० में सिगौली की संधि द्वारा गोरखों और कम्पनी में समझौता हो गया। नेपाल

सरकार ने कम्पनी के पक्ष में तराई पर से भी अपना दावा छोड़ दिया। सिक्किम का भी प्रदेश अंग्रेजों को मिला तथा काठमाण्डू में कम्पनी के रेजीडेण्ट का रखना भी स्वीकार किया।

अब अंग्रेजों को भारतीय साम्राज्य पर सुदृढ़तापूर्वक अधिकार करने तथा कम्पनी द्वारा अधिकृत प्रदेशों की सुरक्षा के लिए दो काम थे। एक तो बर्मा को अपने नियन्त्रण में लाकर भारत की पूर्वी सीमा की सुरक्षा करना तथा पश्चिमोत्तर-सीमा के अफगानी राज्य को अपने प्रभाव में लाना। दूसरा काम भारत के अन्दर के उन गिरे-पड़े राज्यों को आत्मसात् करना जो कि अभी तक कम्पनी के प्रत्यक्ष शासन में नहीं आये थे। पंजाब में रणजीत सिंह ने सिक्खों का एक सबल राज्य स्थापित कर लिया था। सिक्खों की अंग्रेजों से कोई शत्रुता नहीं थी, फिर भी पंजाब में एक सबल राज्य की स्थिति कम्पनी शासन की आँखों का एक रोड़ा था।

बर्मा युद्ध :—लार्ड एमहर्स्ट के शासनकाल में बर्मा से कम्पनी साम्राज्य का कुछ खतरा उत्पन्न हो गया था। बर्मा के राजा ने १८१३ ई० में मणिपुर जीत लिया था तथा उनका बढ़ाव आसाम की ओर होता जा रहा था। १८२३ ई० में चटगाँव के कुछ ऐसे हिस्से पर, जिस पर कम्पनी का राज्य था, बर्मा का अधिकार हुआ। फलतः १८२४ ई० में लार्ड एमहर्स्ट ने बर्मा के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया और रंगून पर अधिकार कर लिया। अगले वर्ष प्रोम भी अंग्रेजों के अधिकार में आ गया। इस प्रकार पूरा निचला बर्मा कम्पनी के अधीन हुआ। १८२६ ई० में याण्डबू में बर्मा के राजा और कम्पनी में सन्धि हो गयी जिसके अनुसार मणिपुर स्वतन्त्र रियासत मान ली गयी, अराकान और तेनासरीन के जिले अंग्रेजों को मिले, जयन्तिया आदि पर बर्मा ने अपना दावा छोड़ा, कम्पनी के एक रेजीडेण्ट को अपने यहाँ रखना स्वीकार किया तथा १ करोड़ रुपया युद्ध का हर्जाना भी स्वीकार किया।

द्वितीय बर्मा युद्ध :—याण्डबू की सन्धि का निर्वाह बर्मा के राजा न कर सके। सन्धि की शर्तें बड़ी कड़ी थीं और वे बर्मा-वासियों पर बलात् लाद दी गयी थीं। सन्धि की अवहेलना होने पर पुनः युद्ध की सम्भावनाएं होने लगी। अंग्रेजों ने चुपके-चुपके काफी तैयार कर ली। डलहौजी के शासन-काल में

बर्मा और कम्पनी में पुनः युद्ध छिड़ गया। इस बार फिर कम्पनी ने रंगून, प्रोम और पेगू पर अधिकार कर लिया। बर्मा वासी जब अंग्रेजों का बढ़ाव न रोक सके और उनकी राजधानी भी संकट में घिरी तो सन्धि हो गयी। इस सन्धि के अनुसार बर्मा का निचला भाग कम्पनी के प्रत्यक्ष शासन में मिला लिया गया, जिसके परिणाम से बर्मा का राज्य अत्यन्त क्षीण और निर्बल हो गया।

कम्पनी और अफगानिस्तान :—भारत की पश्चिमोत्तर सीमा की सुरक्षा के लिए कम्पनी की निगाह अफगानिस्तान पर जमी। अफगानिस्तान को हड़पना कम्पनी के लिए इस कारण भी जरूरी था कि उसे रूस से, जिसकी सीमा अफगानिस्तान से टकराती थी, खतरा था। वहाँ का अमीर दोस्त मुहम्मद था। अफगानिस्तान को पश्चिम में फारस और पूर्व में रणजीत सिंह के सिक्ख राज्य से बड़ा खतरा था। १८३४ ई० में रणजीतसिंह ने अफगानियों से काबुल छीन लिया था। दोस्तमुहम्मद का एक प्रतिद्वन्दी शाहशुजा था, जो दोस्तमुहम्मद को हटाकर गद्दी पर बैठना चाहता था। यह अंग्रेजों और रणजीत सिंह से मिला था। लार्ड आकलैण्ड, जो १८३६ ई० में भारत का गवर्नर जनरल था, के पास दोस्तमुहम्मद ने मैत्री का संदेश भेजा और चाहा कि अंग्रेज अपना प्रभाव रणजीतसिंह पर डालकर पेशावर दोस्तमुहम्मद को दिला दें। आकलैण्ड ने दोस्तमुहम्मद की बात नहीं मानी और अफगानिस्तान पर हमला भी कर दिया। शस्त्रबल से शाहशुजा अफगानिस्तान की गद्दी पर बैठा दिया गया और दोस्तमुहम्मद को कलकत्ते बुला लिया गया। शाहशुजा का शासन लोकप्रिय न था। साथ ही अंग्रेजों के अत्याचार और व्यभिचार से अफगानी सरदार बिगड़ गये। इस विद्रोह का दमन अंग्रेज न कर सके तथा प्राण लेकर अफगानिस्तान से भागे। कहते हैं कि १६ हजार कम्पनी के सिपाहियों में केवल १२० सिपाही ही अफगानिस्तान से बचकर लौटे। अंग्रेजों की बड़ी अपमान-जनक स्थिति हुई जिसके कारण १८४२ ई० में आकलैण्ड को इस्तीफा दे देना पड़ा। अगले गवर्नर जनरल एलेनबरा के शासनकाल में स्थिति कुछ सँभली जरूर, किन्तु अंग्रेजों को अफगानिस्तान आक्रमण से कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। एलेनबरा ने एक सेना द्वारा काबुल और गजनी पर पुनः अधिकार

कर लिया। शाहशुजा को गद्दी से हटाकर दोस्तमुहम्मद को पुनः गद्दी पर बैठाने के लिए मजबूर हुए। इस प्रकार अंग्रेजों को अफगानिस्तान की झंझटों में पड़कर कोई लाभ नहीं हुआ, उलटे २० हजार सैनिक और १॥ करोड़ रुपया गँवाना पड़ा।

कम्पनी का सिन्ध पर अधिकार :—सिन्ध के अमीर अंग्रेजों के मित्र थे, और इस तरह सहायता के लिए तैयार रहते थे। किन्तु आकलैण्ड ने जान-बूझकर उन्हें अंग्रेजी सेना रखने के लिए विवश किया और उसके व्यय के लिए ३ लाख रुपया वार्षिक वसूलने का कुचक्र रचा। एलेनबरा तथा उसके रेजीडेण्ट चार्ल्स नेपियर ने सिन्ध में स्वार्थों का नंगा नाच किया तथा तरह-तरह के षडयन्त्रों में फाँस कर पूरे सिन्ध को कुछ ही समय में हड़प लिया। सिन्ध पर आक्रमण करने और उसे अपने अधीन करने का अंग्रेजों के पास न तो कोई कारण था और न कोई नैतिक आधार।

सिक्ख और कम्पनी :—ज्यों-ज्यों मुगल सल्तनत पतन के गर्त में गिरती गयी, सिक्खों का उत्थान होता गया। अठारहवीं शती ई० के पूर्वार्ध ही में सिक्ख एक प्रबल राजनीतिक शक्ति के रूप में संगठित हो गये थे। रणजीत सिंह के नेतृत्व में सिक्खों के सभी सम्प्रदाय या संघराज्य। जिन्हें मिसिल कहते थे और जिनकी संख्या १२ थी) एकबद्ध हो गये थे। १७९८ ई० में रणजीत सिंह ने राजा की उपाधि धारण करके लाहौर केन्द्र से शासन प्रारम्भ किया। अंग्रेज भी रणजीत सिंह की बढ़ती हुई सत्ता से भय-भीत थे, अतएव १८०९ ई० में उन्होंने अमृतसर में रणजीत सिंह के मैत्री-सम्बन्ध निर्वाह के लिए सन्धि कर ली थी। रणजीत सिंह के नेतृत्व में सिक्खों के अधिकार में पेशावर, कांगड़ा और कश्मीर आ चुका था। सतलज और यमुना के बीच सिक्खों का बढ़ाव अंग्रेजों के कारण रुका हुआ था। रणजीत सिंह के मरने के बाद (१८३९ ई०) सिक्खों का संगठन ढीला पड़ गया तथा रणजीत सिंह के


रणजीत सिंह

उत्तराधिकारी सिक्ख साम्राज्य की रक्षा में असमर्थ सिद्ध हुए। सिक्खों की कमजोरी का लाभ उठाकर अंग्रेज स्वयं सिक्खों से युद्ध करने का बहाना खोजने लगे। लार्ड हार्डिज ने, जो उस समय भारत का गवर्नर जनरल था, सिक्खों को छेड़ने के लिए सतलज पर पुल बँधवाने का प्रयास किया। इससे सिक्ख सशंक हुए। उन्होंने १८४५ ई० में सतलज के पार कम्पनी द्वारा अधिकृत प्रदेश पर आक्रमण कर दिया। अंग्रेज तो युद्ध के लिए तैयार ही बैठे थे,अतएव सिक्खों का डटकर प्रतिरोध किया और धीरे-धीरे सिक्खों को पराजित करते हुए लाहौर तक चढ़ दौड़े। १८४६ ई० में सिक्खों को पराजित होकर सन्धि करनी पड़ी जिसके अनुसार उन्हें कम्पनी को सतलज के दोनों भाग की सारी भूमि और १॥ करोड़ रुपया युद्ध का हरजाना देना पड़ा। उन्हें लारेन्स को कम्पनी के रजिडेण्ट के रूप में अपने दरबार में रखना पड़ा तथा सेना भी घटानी पड़ी।

द्वितीय सिक्ख युद्ध :—सिक्ख अपनी पराजय और अपमान को न भूले थे, साथ ही अंग्रेजों की वक्रदृष्टि पंजाब पर पूर्ववत् बनी रही। डलहौजी के समय में पुन; युद्ध का वातावरण उत्पन्न हो गया। सिक्ख राज्य का एक सूबा मुल्तान था जिसने विद्रोह कर दिया। १८४८ ई० में मुल्तान का विद्रोह धीरे-धीरे द्वितीय सिक्ख युद्ध में परिणत हुआ। इस बार भी सिक्ख पराजित हुए। डलहोजो ने पूरा का पूरा पंजाब भी हड़प लिया और उसे कम्पनी राज्य में मिला लिया। सिक्खों का राजा दिलीप सिंह को ५ लाख रुपयों की पेन्शन देकर इंगलैण्ड भेज दिया गया।

डलहौजी की गोद-नीति और उसका देशी राज्यों पर परिणाम :—शस्त्र और भेद नीति से जब सम्पूर्ण भारत अंग्रेजी शासन में आ गया तो डलहौजी ने गोद सम्बन्धी नई नीति प्रचलित की जिसका परिणाम यह हुआ कि रहे-सहे छोटे-छोटे अर्द्ध स्वतन्त्र राज्य भी अपनी सत्ता मिटाकर कम्पनी शासन के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में आ गये। डलहौजी (१८४८-१८५६ ई०) बड़ा ही निरंकुश स्वभाव का तथा साम्राज्यलोलुप था। राज्य हड़पने के पीछे वह नीति-अनीति का भी विचार नही करता था। द्वितीय सिक्ख और द्वितीय बर्मा युद्ध में वह अपने स्वार्थ और लोलुपता का आभास दे चुका था। ये दोनों राज्य तो उसने शस्त्र बल और कूटनीति से जीते। इनके अतिरिक्त उसने गोद-नीति चलाई। कुछ राज्यो को उसने उन पर कुशासन का आरोप लगाकर हड़पा।

अवध के नवाब वाजिदअली पर कुशासन का आरोप लगाकर उसे राज्यच्युत कर दिया तथा पेंशन देकर लखनऊ से कलकत्ते हटा दिया। बिना किसी

ब्रिटिश साम्राज्य
१८४८ ई०

अंग्रेजी राज्य
अंग्रेजों की संरक्षता में

अपराध के, केवल साम्राज्यलिप्सा की पूर्ति के लिए उसने कर्नाटक, तंजोर के

राज्यों को कम्पनी में मिलाया तथा उत्तराधिकारियों की उपाधियाँ और पेंशन जब्त कर ली। पेशवा धून्धूपन्त (नानासाहब) और बाजीराव को मिलने वाली पेंशन को भी बन्द कर दिया।

गोद के सम्बन्ध में डलहौजी ने यह नीति निर्धारित की कि जिस राजा का कोई उत्तराधिकारी न हो, उसे गोद लेने का कोई अधिकार नहीं है। उसके मरने के बाद उसका उत्तराधिकारी अंग्रेज सरकार है और वह राज्य कम्पनी शासन में विलीन हो जायगा। इस नीति से उसने सतारा, तेजपुर, सम्भलपुर, नागपुर और झाँसी राज्यों को गोद लेने के धर्मशास्त्रीय अधिकार से वंचित रखा तथा इन राज्यों को कम्पनी शासन के अन्तर्गत कर लिया। कर्नाटक, तंजोर राजा की पदवियाँ, और धून्धूपन्त की जो बाजीराव द्वितीय का दत्तक था, पेंशन भी उसने इस नीति का आधार लेकर छीना। डलहौजी की इस नीति की बड़ी भीषण प्रतिक्रिया हुई तथा १८५७ ई० के प्रथम स्वातन्त्र्य युद्ध का योग जुटाने में डलहौजी की गोद और उत्तराधिकार सम्बन्धी नीति ने घर में आग का काम किया।

प्रश्न

१. कम्पनी के राज्य-विस्तार में वारेन हेस्टिंग्स, वेलेजली और डलहौजी के योग की समीक्षा कीजिए।

२. वेलेजली की सहायक नीति क्या थी ? इसका देशी रियासतों पर क्या प्रभाव पड़ा ?

३. कम्पनी और अफगानों के सम्बन्ध पर टिप्पणी लिखिए।

४. सिक्खों के उन्मूलन के लिए हार्डिंज और डलहौजी के प्रयत्नों का विवरण दीजिए। सिक्खों के पतन के क्या कारण थे ?

५. डलहौजी की गोद-नीति क्या थी ?
इस नीति का क्या परिणाम हुआ ?

६. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए :—
दोस्तमुहम्मद, रणजीत सिंह।

अध्याय २९

कम्पनी-शासन के अन्तर्गत प्रशासनिक और सामाजिक सुधार

कम्पनी-प्रशासन का क्रमिक विकास हुआ। पहले कम्पनी अपने आन्तरिक शासन और व्यवस्था में स्वतन्त्र थी तथा आवश्यकता पड़ने पर ही इंगलैण्ड की पार्लियामेंट कम्पनी के कार्यों पर नियन्त्रण लगाती या सुविधा देती थी। किन्तु ज्यों-ज्यों कम्पनी का स्वरूप व्यापारिक से राजनीतिक होता गया, ब्रिटिश पार्लियामेंट कम्पनी में रुचि लेने लगी और कम्पनी की गतिविधि का नियन्त्रण करने लगी।

रेग्यूलेटिंग ऐक्ट :—१७७३ ई० में पार्लियामेंट ने रेग्यूलेटिंग ऐक्ट पास किया जिसके द्वारा उसने कम्पनी की आर्थिक स्थिति सुधारने और कम्पनी के कर्मचारियों के नैतिक स्तर को उठाने की चेष्टा की। इस ऐक्ट की मुख्य बातें निम्नलिखित थीं :—

(१) बंगाल का गवर्नर अब गवर्नर जनरल बना दिया गया, जिसे अन्य प्रान्तों के वैदेशिक मामलों को नियन्त्रित करने का अधिकार था।

(२) चार सदस्यों की एक कमेटी बनायी गई जो गवर्नर जनरल को परामर्श देती थी। गवर्नर जनरल को इस कौंसिल की इच्छा के विरुद्ध कार्य करने का अधिकार नहीं था।

(३) कौंसिल और गवर्नर जनरल पर डाइरेक्टरों का नियन्त्रण था।

(४) डाइरेक्टर ब्रिटिश सरकार के नियन्त्रण में थे तथा ब्रिटिश सरकार को आय-व्यय का व्यौरा देते थे।

(५) कौंसिल और गवर्नर के नियन्त्रण से स्वतन्त्र एक सुप्रीम कोर्ट की स्थापना की गई।

(६) कम्पनी के कर्मचारियों के निजी व्यापार को निषिद्ध घोषित किया गया, किन्तु उनका वेतन बढ़ा दिया गया।

पिट का इण्डिया बिल :—बंगाल के गवर्नर जनरल का कौंसिल और अन्य प्रान्तों के गवर्नरों पर नियन्त्रण मजबूत करने के लिए १७८४ ई० में कौंसिल के सदस्यों की संख्या घटाकर ३ कर दी गई तथा गवर्नर जनरल को २ वोट देने का अधिकार दिया गया—एक कौंसिल का सदस्य होने के नाते और दूसरा कौंसिल का सभापति होने के नाते। साथ ही गवर्नर को आदेश दिया गया कि वे युद्ध, सन्धि तथा आय-व्यय के प्रसङ्ग में गवर्नर जनरल की आज्ञा का उल्लंघन न करे अन्यथा अस्थायी रूप से पदच्युत कर दिए जायेंगे। साथ ही इस ऐक्ट द्वारा एक गुप्त कमेटी बनाई गई जो ब्रिटिश सरकार की ओर से बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स को नियन्त्रण में रखती थी।

चार्टर एक्ट :—१७८६, १७९३, १८१३, १८३३ और १८३५ में क्रमशः पाँच चार्टर ऐक्ट पास किये गए जिनके द्वारा ब्रिटिश सरकार का नियन्त्रण कम्पनी के ऊपर बढ़ाया गया और कम्पनी के कर्मचारियों में फैले भ्रष्टाचार को दूर करने की चेष्टा की गई। १७८६ ई० के आज्ञापत्र से गवर्नर जनरल को कौंसिल की सलाह के विरुद्ध आचरण करने की अनुमति दे दी गयी। १६९३ ई० के आज्ञापत्र से इसी प्रकार की व्यवस्था प्रान्तीय गवर्नरों के सम्बन्ध में की गई और उन्हें भी यह अधिकार दिया गया कि वे कौंसिल के मत के विरुद्ध भी कार्य कर सकते हैं। १८१३ ई० के आज्ञापत्र द्वारा कम्पनी का व्यापारिक एकाधिकार हटा दिया गया और १८३३ ई० के अधिकार-पत्र द्वारा कम्पनी के अन्य व्यापारिक अधिकार भी छीन लिए गये। बंगाल के गवर्नर जनरल को भारत का गवर्नर जनरल माना गया तथा उसकी कौंसिल में एक ला मेम्बर की नियुक्ति की गई। इसी चार्टर से यह भी व्यवस्था की गई कि शिक्षा पर १० लाख प्रतिवर्ष व्यय किया जाय। १८५३ ई० के आज्ञापत्र द्वारा बंगाल के प्रशासन के लिए एक लेफ्टिनेण्ट की नियुक्ति की गई और गवर्नर जनरल के लिए अखिल भारतीय मामले ही रखे गये। इसके लिए एक अलग कौंसिल का गठन किया गया।

वारेन हेस्टिंग्स के सुधार :—क्लाइव के दोहरे शासन का बड़ा बुरा प्रभाव ‘गाल पर पड़ा . कर उगाहने में बड़ी लूट-खसोट की गयी तथा कम्पनी

के कर्मचारियों में व्यक्तिगत लाभ उठाने की प्रवृत्ति बहुत बढ़ गई। वारेन हेस्टिंग्स ने कर्मचारियों का नैतिक ऊँचा करने के लिए तथा उनकी घूस आदि की प्रवृत्ति रोकने के लिए वेतन-वृद्धि कर दी। बंगाल से दोहरे शासन का अन्त करने के लिए नवाब को पेंशन देकर शासन से अलग कर दिया गया तथा शासन और कर की वसूली दोनों कम्पनी के जिम्मे हो गई। सम्पूर्ण प्रान्त जिलों में बाँट दिया गया और हर जिले में एक कलक्टर की नियुक्ति कर दी गई जो शासन, कर उगाहने और न्याय, इन तीनों का काम करता था। कम्पनी की आर्थिक स्थिति ठीक करने के लिए कतिपय कर्मचारियों को नौकरी से अलग किया, बंगाल के नवाब की पेंशन ३२ लाख से घटाकर १६ लाख की, शाह-आलम की पेंशन बन्द की, कड़ा और इलाहाबाद का सूबा अवध को ५० लाख रुपये पर दे दिया, बनारस के चेतसिंह और अवध की बेगमों को लूटकर धन प्राप्त किया, बनारस का कर दूना किया। इनके अतिरिक्त ५ वर्ष के ठेके पर जमींदारों को जमीन दी। दीवानी और फौजदारी मुकदमों के लिए अपील की अदालतें भी अलग-अलग खोलीं।

कार्नवालिस के सुधार :—इसने भी कम्पनी के कर्मचारियों का वेतन बढ़ाया तथा उनके अन्दर व्याप्त घूसखोरी को नियन्त्रित किया। कलक्टर से न्याय सम्बन्धी काम छीन लिया गया तथा न्याय के लिए अलग न्यायाधीशों की नियुक्तियाँ की गयीं। दीवानी और फौजदारी मामलों के लिए अपील की चार अदालतें ढाका, मुर्शिदाबाद, पटना और कलकत्ता में खोली गयीं। दौरा जजों की नियुक्तियाँ की गयीं जो जगह-जगह जा-जाकर मुकदमों की सुनवाई करते थे। दीवानी के छोटे मामलों के लिए अवैतनिक मुन्सिफों की नियुक्तियाँ की गयीं। इसी प्रकार अपराधों का पता लगाने के लिए दरोगा भी नियुक्त किये गये।

१७९३ ई० में कार्नवालिस ने पंचसाली बन्दोबस्त की जगह स्थायी या इस्तमरारी बन्दोबस्त की प्रथा चलाई। इसके अनुसार अधिक से अधिक कर वसूल कर देने वाले जमींदार को सदैव के लिए ठेके पर जमीन दे दी गई। इस व्यवस्था से किसानों की स्थिति सुधरी, कर व्यवस्था स्थायी हुई, कर वसूलने का व्यय घटा, कम्पनी की आय निश्चित हुई तथा जमीन के ठेकेदार कम्पनी सरकार के समर्थक हो गये।

हेस्टिंग्स के सुधार :—हेस्टिंग्स ने न्यायालयों का सुधार किया। मुन्सिफों को वेतन देने लगा। मुन्सिफों और जजों की संख्या भी बढ़ा दी तथा अपील की अदालतों की अधिक सुविधाजनक व्यवस्था की। ग्रामपंचायतों को भी न्याय करने का सामान्य अधिकार दिया। ठेकेदारों और जमींदारों के अत्याचार और मन-मानी से कृषकों को बचाने के लिए उसने १८२३ ई० के मौरूसी एक्ट द्वारा यह व्यवस्था दी कि नियमपूर्वक कर देने वाले किसान को न तो भूमि से बेदखल किया जा सकता है और न सामान्य स्थिति में कर की दर ही चढ़ायी जा सकती है। गाँवों को महालों में बाँटकर महालदारों को कर सीधे कोष में जमा करने की व्यवस्था चलाई। मद्रास में रैयतवाड़ी प्रथा चलाई जिसके अनुसार किसान सीधे सरकारी कोष में कर जमा कर सकते थे। शिक्षा पर १ लाख रुपया वार्षिक व्यय करने की व्यवस्था थी। शान्ति और सुव्यवस्था के लिए पिण्डारियों और पठानों का दमन करके उन्हें शान्तिपूर्ण जीवन-यापन के लिए बाध्य किया।

लार्ड विलियम बैंटिंग के सुधार :—यह १८२८ से १८३५ ई० तक भारत का गवर्नर जनरल था। इसका नाम शिक्षा तथा सामाजिक सुधारों के लिए अमर है। कम्पनी की आर्थिक दशा सुधारने के लिए इसने कई उपाय किए। अस्थायी सेना को बरखास्त किया तथा कलकत्ता से ४०० मील के अन्दर रहने वाले सिपाहियों का भत्ता आधा किया। अपील की कुछ अदालतें तोड़ दीं। प्रशासन के पदों को भी घटाया। बहुत से पदों पर अंग्रेजों की जगह कम वेतन देकर भारतीय कर्मचारी रखे। उत्तर प्रदेश में ३० साला बन्दोबस्त करके कम्पनी की आमदनी बढ़ायी। माफीनामा के आधार पर जमीन का उपयोग करने वाले किसानों से जमीन वापस ले ली तथा मध्यभारत में अफीम की खेती करने



लार्ड विलियम बैंटिंक

वालों पर बम्बई बन्दरगाह द्वारा अफीम निर्यात करने की शर्त लगायी। इन उपायों से कम्पनी की आय बहुत बढ़ गयी।

उसने पुलिस और न्याय व्यवस्था को भी सुधारा। प्रान्तीय अदालतों को तोड़ कर जिला जजों के अधिकारों को बढ़ाया। न्याय सम्बन्धी अधिकार कलेक्टर और उसके अधीन डिप्टी कलेक्टरों को भी दिया। जमींदार और पटेल भी पुलिस का काम करने लगे।

सतीप्रथा पर प्रतिबन्ध तथा अन्य सामाजिक सुधार :—हिन्दुओं में यह प्रथा थी, विशेषकर राजस्थान के हिन्दुओं में, कि पति की मृत्यु के बाद पत्नी को भी पति की चिता में जलकर सहमरण करना पड़ता था। कभी-कभी अनिच्छापूर्वक, केवल लोकलाज के भय से, स्त्रियों को जिन्दा जलना पड़ता था। इसी अमानुषी प्रथा को राजाराम आदि समाज-सुधारकों की सहायता से १८२९ ई० में बैंटिक ने निषिद्ध घोषित किया। इसी प्रकार उसने शिशु-हत्या और नर-हत्या को भी अपराध घोषित किया। १८४३ ई० में उसने दास-प्रथा पर भी प्रतिबन्ध लगाया।

शिक्षा के क्षेत्र में भी उसने व्यापक सुधार किये। उसने अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार किया तथा इसके लिए बंगाल, मद्रास आदि में शिक्षा संस्थाएँ खोलीं।

शांति और सुव्यवस्था के लिए ठगी का अन्त करना भी बेंटिक के शासन-काल की महत्त्वपूर्ण देन है। सारे भारत में, विभिन्न जातियों के लोगों ने मिलकर अपराध के संगठन कायम कर रखे थे। ये यात्रियों को ठगते थे और उनकी हत्या करके लूट-खसोट करते थे। १८३२-१८३७ ई० के बीच स्लीमन नामक अधिकारी की नियुक्ति करके विभिन्न उपायों से उसने ठगों का विनाश किया।

डलहौजी के शासन सम्बन्धी सुधार :—डलहौजी ने अनेक प्रशासनिक सुधार किये। सेना और अर्थ विभाग का पुनः संगठन किया। सार्वजनिक निर्माण विभाग की नींव डाली। इसके द्वारा रेल, तार, डाक की व्यवस्था की गयी।

इसी के शासन काल में सर्वप्रथम बम्बई से थाना तक रेलगाड़ी चलाई गयी। शिक्षा पर भी इसने ध्यान दिया।

इसके सुधारों का कोई अच्छा प्रभाव न पड़ा। इसके सुधारों के प्रति भारतीय जनता सशंक थी, फलतः १८५७ के स्वतन्त्रता समर के कुछ पूर्व इसके सुधारों से काफी उत्तेजना फैली।

प्रश्न

१. वारेन हेस्टिंग्स के सुधारों का संक्षिप्त परिचय दो।
२. लार्ड कार्नवालिस के क्या सुधार थे ? उन सुधारों पर टिप्पणी लिखिए।
३. लार्ड विलियम बेंटिक के सुधारों का वर्णन कीजिए।
४. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए :—
(१) रेगुलेटिंग ऐक्ट
(२) पिट का इण्डिया बिल
(३) हेस्टिंग्स के सुधार।
(४) डलहौजी के सुधार।

अध्याय 30

अँगरेजी शासन के विरुद्ध प्रथम स्वतन्त्रता युद्ध

इस राष्ट्रीय समर के कई वर्षों पूर्व से ही भारत में अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध आंतरिक आन्दोलन हो रहे थे। अन्ततः १८५७ई० में वह समय आ ही गया जब भारतीय जनता विदेशियों की दासता से मुक्त होने के लिए उद्यत हो गयी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए भारतीयों का यह प्रथम सशस्त्र प्रयास था। इसके अनेक कारण थे——

(१) राजनीतिक कारण :——लार्ड डलहौजी की देशी रियासतों के छीनने की नीति ने, जिसमें सतारा, नागपुर, झांसी तथा संभलपुर आदि सम्मिलित थे, देशी शासक वर्ग को भड़का दिया। अवध के नवाब और उसके सहायक भी अपना पद, सम्मान और आजीविका छिन जाने से असंतुष्ट थे। इस प्रकार हिन्दू और मुसलमान सभी अंग्रेजी राज्य से असंतुष्ट थे और उन्होंने प्रथम स्वातंत्र्य समर में खुलकर हाथ बंटाया।

(२) सामाजिक कारण :—देश की साधारण अनपढ़ जनता में पश्चिमी यूरोपीय सुधारों से काफी उथल-पुथल मच गयी थी। अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार तथा अंग्रेजी पढ़े लोगों को नौकरियाँ देना, सती की प्रथा का अन्त, विधवा विवाह को कानूनी सुविधा तथा हिन्दू धर्म छोड़कर दूसरा धर्म ग्रहण कर लेने पर कानूनी सुरक्षा कुछ ऐसी बातें थीं जिनसे भारतीय जनता के हृदय में यह डर पैदा हो गया था कि अंग्रेज हमारे धर्म पर आघात कर रहे हैं और हमलोगों को बलात् ईसाई बनाना चाहते हैं। ईसाई पादरियों के अशिष्ट व्यवहार, रेल, तार और डाक का प्रयोग आदि भी हिन्दू जनता को भड़काने में योगदान दे रहे थे।

(३) आर्थिक कारण:——कंपनी का अंतिम लक्ष्य भारतीयों का आर्थिक शोषण था। विभिन्न राजघराने अपनी रियासतें छिन जाने तथा उनके कर्मचारीगण अपनी रोजी छिन जाने के कारण असंतुष्ट थे। लगान भी अधिक था तथा कड़ाई से वसूल की जाने की नीति से कृषक वर्ग में भी असंतोष की भावना

व्याप्त थी। भारत में पैदा हुए कच्चे माल वाहर भेजे जाने लगे थे। इससे औद्योगिक श्रमिक और कारीगर वर्ग भी निराधार हो गये थे। फलतः देश में वेकारी और गरीबी का बोलबाला हो गया और जनता सरकार के विरुद्ध खड़ी हो गयी।

(४) सैनिक कारण—इस राष्ट्रीय विप्लव में सैनिक कारण भी था। सैनिकों को दूर-दूर तक लड़ाइयों पर जाने के लिए अतिरिक्त भत्ता नहीं मिलता था। वार-बार लड़ाई लड़ते-लड़ते सिपाहियों का मन ऊब गया था। लार्ड केनिंग ने जब "जनरल सर्विस एनलिस्टमेण्ट" नामक कानून पास कर दिया, जिसके अनुसार सभी सिपाहियों के लिए यह अनिवार्य हो गया था कि उन्हें जहाँ भेजा जाय, जाना पड़ेगा, तब उनका असन्तोष चरम सीमा पर पहुँच गया।

(५) तात्कालिक कारण——उपर्युक्त असन्तोष की आग को जिस घटना ने प्रज्वलित लपट का रूप दिया, वह थी कारतूसों वाली घटना। सिपाहियों को एक 'एनफील्ड' नामक ऐसी रायफल दी गयी थी जिसका कारतूस गाय और सूअर की चर्बी से चिकनी की गयी होती थी और उसे दाँत से छीलना पड़ता था। इस घटना ने आग में घी का काम किया और विद्रोह प्रारम्भ हो गया।

विप्लव :—विप्लव का स्वरूप पहले से ही तैयार किया जा रहा था। नानासाहब, बहादुरशाह, वाजिदअली शाह तथा कुँवरसिंह के गुप्तचर सिपाहियों में अपना-अपना पूरा प्रचार कर रहे थे जिसकी तिथि ३१ मई १८५७ ई० रखी गयी थी। लेकिन इसके पहले वंगाल की एक टुकड़ी ने बारकपुर में मंगल पाण्डे के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया। इसके बाद बरहामपुर में भी विप्लव शुरू हो गया। मंगल पाण्डे को फाँसी की सजा दी गयी। फौजी सेनायें बरखास्त कर दी गयीं। विप्लव की आग अम्बाला की छावनी से होते हुए मेरठ पहुँची। मेरठ में घुड़सवार सेना के ८५ सिपाहियों ने चर्बीदार कारतूस प्रयोग करने से इनकार कर दिया जिससे उन्हें दो साल के लिए जेल भेज दिया गया। इस पर तीन रेजीमेंटों ने खुला विद्रोह कर दिया। कैद से अपने साथियों को छुड़ाकर वे अब दिल्ली की ओर रवाना हुए। दिल्ली पर अधिकार करके उन्होने बहादुरशाह कोभारतीय सम्राट् घोषित कर दिया। इसके बाद अविलम्ब विद्रोह

रुहेलखण्ड, मध्य-भारत तथा अवध में फैल गया। इसके साथ ही कानपुर, लखनऊ तथा बनारस में भी सैनिकों ने विद्रोह कर दिया। झाँसी की रानी ने अंग्रेजों का कड़ा मुकाबला किया और उनके छक्के छुड़ा दिये। बहुत से अंग्रेज



रानी लक्ष्मीबाई



ताँत्या टोते

सैनिक अफसर मौत के घाट उतार दिये गये।(नाना साहब और ताँत्या टोपे के नेतृत्व में कानपुर में भी युद्ध छिड़ गया और बहुत से अंग्रेज मारे गये। अब विद्रोहियों ने लखनऊ की रेजीडेंसी पर भी अधिकार कर लिया। ग्वालियर के विद्रोही नेता ताँत्या टोपे ने कई जगह अंग्रेजों को करारी हार दी। कानपुर के इंचार्ज जनरल विण्डहम को भगाकर कानपुर पर अधिकार कर लिया। अब दिल्ली से लेकर अवध तक विद्रोहियों का पूरा अधिकार हो गया। हर जगह पर विद्रोहियों ने यूरोपियनों को मार डाला, जेलखानों को तोड़ दिया और दिल्ली

की तरफ कूच कर दिया, लेकिन पंजाब में इस विप्लव की आग न फैलने पायी क्योंकि वहाँ सर जान लारेंस ने सिक्खों को शान्त रखा।

विप्लव का दमन :—लेकिन अंग्रेजों ने पंजाबियों की मदद से दिल्ली पर पुनः अधिकार कर लिया। काश्मीरी दरवाजा उड़ा दिया गया और शहर पर अधिकार हो जाने के बाद अंग्रेजों ने निरीह जनता और विद्रोहियों का वध कर दिया। बहादुरशाह कैद करके रंगून भेज दिया गया। उसके शाहजादों की



बहादुरशाह

हत्या कर दी गयी। इसके बाद अंग्रेजी सेना ने धीरे-धीरे बिहार, बनारस, लखनऊ, इलाहाबाद आदि स्थानों पर अधिकार पा लिया। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई वीरतापूर्वक लड़ती हुई वीरगति को प्राप्त हुई और तांत्या टोपे को फाँसी की सजा मिली। नानासाहब नेपाल की तरफ भाग गये। इस तरह

मध्य भारत और बुन्देलखण्ड में भी उपद्रव शांत कर दिया गया। अंग्रेज विप्लव को शान्त करने में पूर्णतः सफल हो गये।

असफलता के कारण :—स्वतन्त्रता का यह प्रथम समर शस्त्र के बल से दबा दिया गया। अब प्रश्न उठता है कि इतने बड़े विप्लव को, जिसमें अधिकांश जनता और सेनाओं का हाथ था, क्यों असफलता मिली ? इसके अनेक कारण थे—

(१) विप्लव का क्षेत्रीय होना :—यह विप्लव कुछ ही क्षेत्र के अन्तर्गत रह गया, इसका देशव्यापी प्रसार नहीं हुआ। इससे अंग्रेज सरकार उसे दमन करने में सक्षम हो सकी। बंगाल, पंजाब तथा दक्षिण की जनता बिलकुल शांत बैठी रही और उसने इस विप्लव में कोई भी रुचि नहीं दिखलायी।

(२) देशी राजाओं की सहायता :—अंग्रेजों के अनुगृहीत राजाओं ने अंग्रेजों का साथ दिया और विप्लव दमन करने में अंग्रेजों के दाहिने हाथ बने रहे। हैदराबाद के सालारजंग ने, नेपाल के शासक जंगबहादुर ने तथा अफगानिस्तान के अमीर दोस्तमुहम्मद ने अंग्रेजों को सहायता पहुँचायी।

(३) योजनाओं की कमी :—इस विप्लव की योजना के परिचालन में गलती हुई। इसके पहले कि पूरी योजना तैयार की जाय और तब कार्य रूप में परिणत हो, सिपाहियों ने विद्रोह कर दिया। योजना के अनुसार ३१ मई १८५७ ई० विप्लव के शुरूआत की तारीख थी लेकिन विप्लव १० मई को ही मेरठ आदि में प्रारम्भ हो गया।

(४) नेतृत्व का अभाव और युद्ध-सामग्री की कमी :—विद्रोह का नेतृत्व कई राजाओं, नवाबों और अमीरों के अधीन था, जिसने नेतृत्व में एकता का अभाव रहा। इसके विपरीत अंग्रेज अफसर लारेंस, निकल्सन आदि कुशल सेनापति थे। यही नहीं, युद्ध सामग्रियाँ भी उनके पास कम थी। आधुनिक युद्ध के तरीकों और आवश्यकताओं से वे पूर्णतः अवगत नहीं थे। अंग्रेजों के पास इसके विपरीत गोले, तोपें और बारूद तथा बन्दूकें थीं।

व्यवस्था का अभाव :—आंदोलनकारियों ने विजित क्षेत्रों पर अधिकार बनाये रखने की कोई व्यवस्थित योजना नहीं बनायी और न उसकी सुरक्षा का

ही कोई समुचित प्रबन्ध किया। इससे जनता में विद्रोहियों के प्रति विश्वास की कमी हो गयी।

इन सब के अतिरिक्त अंग्रेजों ने इस विप्लव का दमन बड़ी निर्ममता के साथ किया। अनेक नेता फांसी पर चढ़ा दिये गये। बहुतेरे सैनिकों को गोली से उड़ा दिया गया तथा अनेक जगहों पर निरीह जनता का भी बध किया गया।

विप्लव के परिणाम

(१) कम्पनी के शासन का अन्त :—१८५७ ई० के विप्लव का यह सबसे महत्त्वपूर्ण परिणाम हुआ कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन का अन्त हो गया। इस भयंकर उपद्रव के कारण इंग्लैण्ड में कम्पनी के शासन के प्रति बहुत असंतोष फैला और पार्लियामेंट ने भारत सरकार को कम्पनी के नियन्त्रण से निकल कर सीधे ब्रिटिश सम्राट् के अन्तर्गत करने का निश्चय किया। ब्रिटिश मंत्रिमण्डल में एक भारत मंत्री की व्यवस्था की गयी जिसे भारत वर्ष के शासन को चलाने का अधिकार दिया गया। भारतीयों के साथ समानता, न्याय और सदाचार के बर्ताव की घोषणा की गयी।

(२) अन्य परिणाम—भारतीयों ने इस विप्लव की असफलता से यह सबक सीख लिया कि शस्त्र के बल से स्वाधीनता प्राप्त करना कठिन ही नहीं अपितु असम्भव भी है। इसलिए उनका झुकाव संवैधानिक प्रणालियों और शांतिपूर्ण उपायों की ओर हुआ। अंग्रेजी सरकार ने भी दमन की नीति त्याग कर भारतीयों का सहयोग प्राप्त करने की कोशिश की।

प्रश्न

१. १८५७ ई० के प्रथम स्वतन्त्रता युद्ध के कारण और परिणाम पर प्रकाश डालिए।

२. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए :—

तांत्या टोपे, लक्ष्मी बाई, मंगल पांडे।

अध्याय ३१

भारत में ब्रिटिश शासन

ब्रिटिश-शासन का प्रारम्भ :—जैसा पिछले अध्याय में बताया जा चुका है, १८५७ ई० के राष्ट्रीय-विप्लव के बाद कम्पनी के हाथ से भारतवर्ष का राज्यभार सीधे इंगलैण्ड की पार्लियामेंट के हाथ में चला गया। गवर्नर जनरल को वाइसराय की उपाधि मिली और अंग्रेजी पार्लियामेंट में एक भारतमंत्री नियुक्त किया गया।

१८५८ई० का घोषणा पत्र :—पहली नवम्बर सन् १८५८ई० को महारानी विक्टोरिया ने एक घोषणा-पत्र जारी किया तथा उनके द्वारा भारतीय जनता को यह सूचना दी गयी कि घोषणा में उल्लिखित बातों के आधार पर ही भारत का शासन स्वरूप निश्चित होगा। राजाओं को यह आश्वासन दिया गया कि उनके अधिकार और सम्मान की रक्षा की जायगी और उनके साथ हुई संधियों का अक्षरशः पालन किया जायगा। जनता को धार्मिक स्वतन्त्रता दी गयी और योग्यता के आधार पर सरकारी पद देने की घोषणा की गयी। विद्रोहियों को क्षमा कर दिया गया।

प्रथम इण्डियन कौंसिल एक्ट :—(१८६१) :—वाइसराय लार्ड कैनिंग के समय में १८६१ ई० में एक कौंसिल एक्ट पास हुआ जिसके अनुसार भारतीयों को अपने देश के शासन में अधिकाधिक हाथ बँटाने का अवसर दिया गया। गवर्नर जनरल की कौंसिल के सदस्यों की संख्या ४ से ५ कर दी गयी और उनके अधिकारों में वृद्धि की गयी। एक केन्द्रीय धारा सभा की नीव पड़ी। कानून बनाने के लिए गवर्नर जनरल को अपनी कार्यकारिणी समिति के सदस्यों के अतिरिक्त कम से कम ६ और अधिक से अधिक १० व्यक्ति नामजद करने की आज्ञा दी गयी। केन्द्रीय धारा सभा की भाँति बम्बई, मद्रास और बंगाल के लिए भी धारा-सभायें बनीं। सुप्रीम कोर्ट और सदर अदालतों को तोड़कर हाईकोर्ट की स्थापना की गयी।

द्वितीय इण्डियन कौंसिल ऐक्ट :—(१८९२)—१८६१ ई० के कौंसिल ऐक्ट ने शासन सम्बन्धी अनेक कानून पास किये परन्तु उनका प्रयोग कभी-कभी भारतीयों की राजनैतिक चेतना को दबाने के लिए किया गया। फलतः १८९२ ई० में लार्ड लैंसडाउन के समय में द्वितीय इण्डियन कौंसिल ऐक्ट पास हुआ जिसके अनुसार भारतीय और प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं की सदस्य संख्या बढ़ा दी गयी। नामजद किये हुए व्यक्तियों में से कुछ का चुनाव सार्वजनिक संस्थाओं द्वारा होता था और निर्वाचित व्यक्तियों को ही गवर्नर जनरल नामजद कर देते थे। इस प्रकार परोक्ष-निर्वाचन प्रणाली का आरम्भ हुआ। धारा सभाओं के अधिकार बढ़ा दिये गये। उन्हें आय-व्यय पर भी बहस करने का अधिकार दिया गया पर वे उस पर मतदान नहीं दे सकती थीं।

मार्ले मिण्टो सुधार :—(१९०९) :—लेकिन १८९२ ई० के सुधार ऐक्ट से भारतीय जनता को सन्तोष न हो सका। अस्तु १९०९ ई० में एक नया सुधार नियम पास हुआ जो भारत मन्त्री मार्ले तथा गवर्नर जनरललार्ड मिंटो के सुझावों पर आधारित था। इसके अनुसार केन्द्रीय धारा-सभा के सदस्यों की संख्या ६० कर दी गयी जिसमें ३३ नामजद किये जाते थे और २७ जनता द्वारा चुने जाते थे। सीधे चुनाव कराने का यह प्रथम अवसर था। परन्तु इस सुधार से साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली का आरम्भ हुआ जो बाद में चलकर देश के लिए बहुत घातक सिद्ध हुआ। हिन्दू और मुसलमानों में भेद पैदा करने का यह पहला सरकारी कदम था। भारतवर्ष के दलीय राजनीतिज्ञों ने तो इसका स्वागत किया परन्तु गरमदलीय नेताओं ने इसे ठुकरा दिया। फलतः देश में आतंकवादियों का जोर हो गया। इसी बीच १९१४ ई० का प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ गया और भारतीयों ने इस विश्वयुद्ध में अंग्रेजी सरकार का खुलकर हाथ बँटाया।

मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड-सुधार—(१९१९) :—भारतीय नेताओं की जोरदार माँगों और अंग्रेजों की सहायता की आवश्यकता के फलस्वरूप इंग्लैण्ड की पार्लियामेंट ने १०१९ ई० में पुनः एक सुधार-ऐक्ट प्रस्तावित किया जिसे मांटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार (१९१९) कहते हैं। इसके अनुसार केन्द्रीय व्यवस्थापक मण्डल में दो सभायें कर दी गयी। एक का नाम राज्यपरिषद्

(कौंसिल-आफ स्टेट) तथा दूसरे का नाम 'व्यवस्थापिका सभा' (लेजिस्लेटिव एसेम्बली) रखा गया। इसके सदस्यों की संख्या क्रमशः ६० और १४४ रखी गयी। निर्वाचित सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गयी, परन्तु सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व की प्रथा अब भी बनी रही। दोनों सभाओं को समान अधिकार प्राप्त थे। इससे सरदार की इच्छा के विरुद्ध कानून बना सकना असंभव था। भारतीय सचिव और कौंसिल में भी कुछ परिवर्तन किये गये। गवर्नर जनरल और कार्यकारिणी समितियों में भारतीयों को अधिक स्थान मिलने लगे। प्रांतीय विषयों में भी दो भाग किये गए--संरक्षित (रिजर्व्ड) और हस्तांतरित (ट्रांसफर्ड)। मन्त्री लोग प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं के प्रति अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी होते थे। इस प्रकार द्वैध शासन-प्रणाली का सूत्रपात हुआ जिसके अनेकों दोष थे। मन्त्रियों को अधिकार का पद नहीं दिया गया। उस पर अंग्रेजी गवर्नरों का अधिकार था।

१९३५ ई० का गवर्नमेंट आफ इण्डिया ऐक्ट :—१९१९ ई० के सुधार में अनेक कमियाँ थीं जिनके फलस्वरूप भारतीयों का असन्तोष ज्यों-का-त्यों बना रहा। इधर महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारतीय जनता का आन्दोलन भी चल रहा था। अंग्रेजी सरकार एक ओर तो भारतीय राष्ट्रीय-आन्दोलन को दबाने का प्रयत्न कर रही थी दूसरी ओर वह कुछ और अधिकार तथा सुधारों को कार्यान्वित करने की योजना बना रही थी। फलस्वरूप १५ वर्षों के बाद पुनः १९३५ ई० में ऐक्ट पास हुआ जिसके अनुसार देशी राज्यों और ब्रिटिश प्रांतों को मिलाकर एक सार्वभौम भारतीय संघ शासन की योजना बनायी गयीं। दूसरा सुधार प्रांतीय स्वराज्य की स्थापना थी जिसके अनुसार प्रांतीय कौंसिलों का जनता द्वारा निर्वाचन कराने की व्यवस्था की गयी। इस ऐक्ट के अनुसार केन्द्रीय सरकार में द्वैध शासनप्रणाली तथा संघीय न्यायालय की स्थापना भी प्रस्तावित थी। फलस्वरूप ब्रिटिश पार्लियामेंट का प्रभाव इन नये सुधारों से कुछ कम हो गया।

पर इतना होने पर भी यह ऐक्ट भारतीय जनता को ग्राह्य नहीं हुआ। इसमें

गवर्नर जनरल और गवर्नरों को कई विशेषाधिकार प्राप्त थे जिनका उपयोग वे भारतीय जनता के विरुद्ध कर सकते थे। लेकिन इनका सबसे बड़ा दोष यह था कि इस ऐक्ट ने भारतीय स्वतन्त्रता की माँग को ठुकरा दिया। यह सब कार्य चल रहा था कि द्वितीय विश्व-संग्राम आरम्भ हो गया और अंग्रेजी सरकार ने बिना भारतीय राजनीतिज्ञों की राय लिये भारत को भी विश्व युद्ध में सम्मिलित होने की घोषणा कर दी। परन्तु महात्मा गांधी ने भारतवर्ष को युद्ध में जबरदस्ती खींचने का विरोध किया। महात्मा गांधी तथा जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में देश स्वतन्त्रता आन्दोलन की ओर उन्मुख होने लगा।

प्रश्न

१. १९०९ और १९१९ के ऐक्ट की प्रमुख बातें बताइए।
२. १९३५ के ऐक्ट के गुण-दोषों की विवेचना कीजिए।



अध्याय ३२

आधुनिक युग के सामाजिक, धार्मिक और शिक्षा सम्बन्धी आन्दोलन

मध्ययुगीन विकृतियाँ, मान्यताएँ और संस्कार आधुनिक युग की बदली परिस्थितियों के मेल में न थे। इस कारण उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध से ही सामाजिक, धार्मिक और शिक्षा सम्बन्धी आन्दोलनों के प्रति भारतीय नेताओं में उत्कण्ठा जाग चुकी थी। वैसे तो अनेक छोटे-छोटे आन्दोलन चले और सबका कुछ न कुछ सामाजिक जीवन के उन्नयन में हाथ रहा किन्तु उनमें कुछ विशिष्ट का यहाँ संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है।

ब्रह्म समाज :—शिक्षा और सामाजिक क्षेत्र में राजा राममोहन राय (१७७२-१८३३ ई०) का नाम विशिष्ट है। इनके प्रयत्न से ही सती-प्रथा का अन्त हुआ। ये अंग्रेजी शिक्षा के हामी थे और यूरोपीय मिशनरियों के धार्मिक आग्रह तथा पश्चिम की वैज्ञानिक उन्नति से प्रभावित थे। भारतीय धर्म और समाज की कुरीतियों को दूर करने तथा धर्म और समाज के प्रति एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करने के लिए इन्होंने १८३० ई० में ब्रह्म समाज का संगठन किया। ब्रह्म समाज की मान्यता थी कि ईश्वर सर्वव्यापी है, उसकी उपासना की सर्वोत्तम विधि भक्ति है।



राजाराममोहन राय

इसके सदस्य जातिव्यवस्था, छूतछात, बालविवाह, सती-प्रथा के विरोधी तथा विधवा-विवाह और शिक्षा प्रचार के समर्थक थे। इस समाज के बौद्धिक पक्ष पर उपनिषद् और बौद्ध दर्शन का प्रभाव था।

आर्य समाज :—ब्रह्म समाज पर ईसाई और यहूदी धर्म का विशेष प्रभाव था। साथ ही इसका स्वरूप भी बहुत कुछ बौद्धिक था। फलतः इसका प्रभाव सीमित रहा। इसके विपरीत स्वामी दयानन्द (१८२४-१८८३ ई०) द्वारा संचालित आर्य समाज आन्दोलन विशेष व्यापक और प्रभावशाली रहा। दयानन्द ने आर्यसमाज की स्थापना १८७३ ई० की थी। वे बड़े शास्त्रार्थी और तार्किक थे तथा वेद और वैदिक मान्यताओं के आधार पर हिन्दू समाज का पुनर्गठन चाहते थे। आर्यसमाज छूआछूत, जातिभेद, मूर्तिपूजा और बालविवाह का घोर विरोधी तथा शिक्षासुधार-सहयोग, अन्तर्जातीय विवाह, अहिन्दुओं अथवा जातिभ्रष्ट हिन्दुओं को शुद्धि पर विशेष बल देता था। आर्यसमाज की प्रवृत्ति उग्र सुधारवादी थी। फलतः ईसाई धर्म के विरुद्ध यह एक सबल मोर्चा था। हिन्दू धर्म की रूढ़िवादिता के प्रति इसकी आलोचनाने हिन्दू धर्म को काफी उदार बनाया तथा इसने हिन्दू धर्म की वैज्ञानिक और सार्वजनीन व्याख्या प्रस्तुत की।



स्वामी दयानन्द सरस्वती

अन्य सामाजिक और धार्मिक संगठनों में बम्बई के प्रार्थना समाज (१८६७ ई०) जिसके नेता रानाडे थे, का विशेष महत्त्व है। डेक्कन एजुकेशन सोसाइटी, सर्वेण्ट्स आफ इण्डिया-सोसाइटी, सोशल सर्विस लीग, सेवा समिति आदि का भी भारतीय नवजागरण में विशेष महत्त्व है। शिक्षा के क्षेत्र में तथा सभी धर्मों का समन्वित स्वरूप प्रस्तुत करने में थियासोफिकल सोसाइटी का विशेष महत्त्व है। एनीबेसेण्ट के नेतृत्व में थियासोफिकल सोसाइटी की विशेष प्रतिष्ठा हुई। इस समाज का हिन्दू धर्म और दर्शन से निकट का सम्बन्ध था। रामकृष्ण मिशन ने अपनी सेवा और शैक्षणिक योग से हिन्दू जाति ही नहीं पूरे भारतीय समाज की बहुत बड़ी प्रतिष्ठा बढ़ायी। रामकृष्ण परमहंस बहुत बड़े भक्त थे तथा भक्ति के प्रचारक थे। स्वामी विवेकानन्द के द्वारा हिन्दूधर्म और

दर्शन को विदेशों में बड़ी ख्याति मिली। मुसलमानों में भी कई तरह से सुधारवादी आन्दोलन चले। किन्तु उनका प्रभाव और दृष्टिकोण संकुचित था।



एनीबेसेंट

शिक्षा की दशा में सरकारी प्रयत्न के अतिरिक्त आर्यसमाज, थियासोफिकल सोसाइटी और रामकृष्ण मिशन ने बड़ा उद्योग किया। इन संस्थाओं ने अंग्रेजी शिक्षा के आधार पर शिक्षा का संगठन किया। इन संस्थाओं के द्वारा संचालित शिक्षा आन्दोलन का लोकमत संग्रह और राष्ट्रीय चेतना के विकास पर बड़ा प्रभाव पड़ा।

प्रश्न

निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए :—

ब्रह्मसमाज, आर्य समाज, थियोसोफिकल सोसाइटी।



अध्याय ३३

स्वतन्त्रता आन्दोलन और महात्मा गाँधी

१८५७ ई० के बाद इंगलैण्ड की सरकार ने भारत का शासन-सूत्र अपने हाथ में लिया। उसने अच्छी तरह से समझ लिया था कि भारतीयों को बिना कुछ अधिकार दिये और उनकी शासन व्यवस्था में बिना सुधार किए उन पर अधिक दिनों तक शासन करना असम्भव है। स्वतन्त्रता का प्रथम सशस्त्र विप्लव का दमन तो अंग्रेजी सरकार कर चुकी थी लेकिन आंतरिक असंतोष और सुधार के प्रति उत्सुकता ज्यों की त्यों बनी रही। फलतः देश में अनेक सुधारक जिनका अन्तिम ध्येय राजनीतिक और सामाजिक सुधार था, प्रकाश में आये। अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार, धर्म-सुधार, पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव, समाचारपत्रों के आन्दोलन और इलबर्ट बिल की घटना से भारतीयों के हृदय में अधिकार वृद्धि और सुधार की भावना बलवती होती जा रही थी। इसी आन्तरिक ऊहापोह में राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म हुआ।

कांग्रेस का जन्म :— कांग्रेस का जन्म अंग्रेज और भारतीय दोनों के प्रयत्न के फलस्वरूप सम्भव हुआ था। फलतः १८८४ ई० में एक अंग्रेज, श्री ए० ओ० ह्यूम द्वारा भारतीयों के जोश और अंग्रेजों की सहानुभूति के आधार पर "इण्डियन नेशनल कान्फ्रेन्स" का जन्म हुआ। इसके प्रथम सभापति उमेशचन्द्र बनर्जी थे। इस बैठक के बाद इस संस्था का नाम 'इण्डियन नेशनल कांग्रेस' पड़ा। यद्यपि प्रारम्भ में कांग्रेस के उद्देश्य अंग्रेजों के हितों के पक्ष में ही थे लेकिन बाद में कांग्रेस का उद्देश्य क्रमशः राष्ट्रीय होता गया और राष्ट्रीयता की लहर उठनी प्रारम्भ हो गयी।

कांग्रेस के अधिवेशन प्रतिवर्ष होते थे और उसके प्रस्ताव अंग्रेजी सरकार और भारतमन्त्री के पास भेज दिये जाते। इसी के फलस्वरूप १८९२ ई० का प्रथम कौन्सिल ऐक्ट सक्षम हो सका, जिसका वर्णन पिछले अध्याय में किया जा चुका है।

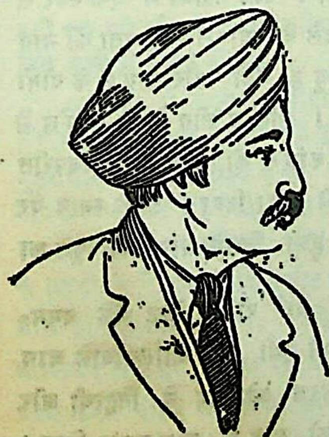
बंग-विभाजन :— १८९२ से १९०५ ई० के बीच कोई विशेष घटना नहीं

हुई। १९०५ ई० में जापान ने रूस के कुछ भाग को जीत लिया। इससे पूर्वी देशों में एक उत्साह की लहर दौड़ पड़ी। उससे भारत का भी मनोबल ऊंचा हुआ। १९०३ ई० में लार्ड कर्जन ने 'बंग-विभाजन' की आज्ञा दे दी। इसके कारण भारतीयों में असन्तोष फैला और कांग्रेस का आन्दोलन और अधिक प्रखर हो गया।

कांग्रेस में फूट :—आन्दोलन के स्वरूप के प्रश्न पर कांग्रेस के नेताओं में कुछ विवाद हुआ। कांग्रेस के विनम्र विचारों से कुछ नेताओं के दिल में असंतोष फैल गया और वे उग्र आंदोलन के पक्ष में थे। फलतः उग्रदल और नरम दल, दो भागों में कांग्रेस बंट गयी। उग्रदल के नेता लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक थे जिन्होंने 'स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' का नारा बुलन्द किया। अपने पत्र 'केशरी' द्वारा उन्होंने



बालगंगाधर तिलक



लाला लाजपतराय



विपिनचन्द्र पाल

अंग्रेजी सरकार की अनेक आलोचनाएँ कीं। इसके अतिरिक्त उग्र दल में लाला लाजपत राय, विपिनचन्द्र पाल आदि अधिक प्रसिद्ध थे। १९०६ ई० की सूरत की कांग्रेस में झगड़ा छिड़ जाने की वजह से दोनों दल अलग-अलग हो गए।

मुसलीम लीग की स्थापना :—इसी समय एक आकस्मिक घटना घटी। मुसलमान नेताओं ने जिसमें सर सैयद अहमद और आगा खाँ मुख्य थे, कांग्रेस से अपने को अलग कर लिया और १९०६ ई० में मुस्लिम लीग की स्थापना की, जिसका उद्देश्य धारा-सभाओं तथा स्थानीय स्वराज्य की संस्थाओं में अलग सदस्य चुनकर भेजने का अधिकार प्राप्त करना चाहा था। १९०९ ई० के मार्ले मिण्टो के सुधार में यह अधिकार प्राप्त हो गया। लेकिन कांग्रेस का एक भी दल इससे संतुष्ट न हो सका।

हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रश्न :—अंग्रेजी सरकार की दमन नीति और नवयुवकों के उत्साह से राष्ट्रीय आंदोलन जोर पकड़ता गया। १९०८ ई० में लोकमान्य तिलक को ६ वर्ष की कड़ी सजा दी गयी। धीरे-धीरे मुस्लिम लीग भी साम्प्रदायिकता को जोड़कर स्वतन्त्रता की ओर झुकने लगी। इसी बीच १९१५ ई० में 'बंग-विभाजन' प्रस्ताव रद कर दिया गया और बंगाल के दो प्रान्तों के स्थान पर बंगाल, बिहार और आसाम तीन प्रान्त बनाये गये। इसी बीच १९१४ ई० का प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ गया। देशी नेताओं ने एक स्वर से अंग्रेजी सरकार की सहायता की और इसके बदले वे स्वायत्त स्वतन्त्रता की मांग करने लगे। सन् १९१६ ई० में गोखले की मृत्यु हो गयी और कांग्रेस के दोनों दल मिल गये और तिलक उसके संचालक हुए। मुस्लिम लीग ने भी कांग्रेस से समझौता कर लिया। महायुद्ध की समाप्ति पर कांग्रेस की आकांक्षा के विपरीत अंग्रेजी सरकार ने स्वायत्त शासन के प्रस्ताव को ठुकरा दिया। इसके स्थान पर १९१९ ई० में माण्टेग्यू-चेम्स-फोर्ड सुधार पास हुआ जिसमें भारत की फूट का वृक्ष और मजबूती से लगा दिया गया।

जालियाँवाला बाग की घटना :—इस वर्ष रौलेट ऐक्ट जैसे दमन-कारी कानूनों के द्वारा भारतीय जनता पीसी जाने लगी और जालियाँवालें बाग जैसी घटना घटी। जालियाँवाले बाग में जनरल ओडायर ने निहत्थी और शान्त भीड़ पर गोली चलवा दी और हजारों को मौत के घाट उतार दिया।

गया। पंजाब में फौजी कानून लगा दिया गया और आन्दोलनकारियों को गोली का शिकार बनाया गया। इसी बीच १ अगस्त १९२० ई० को लोकमान्य तिलक का देहान्त हो गया और उनका स्थान मोहनदास करमचन्द गांधी ने ले लिया।

महात्मा गांधी—मोहनदास करमचन्द गांधी का जन्म २ अक्टूबर १८६९ ई० में सौराष्ट्र के पोरबन्दर नामक स्थान पर हुआ था। इनके पिता और माता दोनों ही धार्मिक प्रवृत्ति के थे जिनका इनके जीवन पर मौलिक प्रभाव पड़ा। मैट्रिक उत्तीर्ण करने के बाद वे बैरिस्टरी पढ़ने के लिए विलायत गये। विलायत से लौटने पर उन्होंने अहमदाबाद में बैरिस्टरी प्रारम्भ कर दी, पर वे सफल वकील न हो सके। कुछ दिनों बाद एक मुकदमे के दौरान उन्हें अफ्रीका जाना पड़ा जहाँ बहुत-से भारतीय भी रहते थे, जिन पर गौराङ्ग प्रभुओं (अंग्रेजों) द्वारा आये-दिन अत्याचार होते थे। गांधीजी के साथ भी वहाँ के अंग्रेज अधिकारियों ने बुरा बर्ताव किया। गांधीजी ने इसका विरोध किया और भारतीयों की दशा सुधारने के लिए वे वहीं रुक गये और वे अपनी सविनय अवज्ञा आन्दोलन की नीति से भारतीयों का हित करने में सफल भी रहे।



महात्मा गांधी

भारतवर्ष में आने पर गांधीजी ने राष्ट्रीय आन्दोलन को गाँव-गाँव तक फैलाया और प्रत्येक भारतीय के हृदय में देशभक्ति का सञ्चार किया। उन्होंने मुसलमानों को भी मिलाने का प्रयत्न किया और मुसलमानों के 'खिलाफत' नामक आन्दोलन को विशेष रूप से प्रोत्साहित किया।

असहयोग आन्दोलन और स्वराज्य पार्टी—१९२२ ई० में गांधीजी के आन्दोलन ने खूब जोर पकड़ा। सरकारी नौकरियों से अलग होना, विदेशी माल का बहिष्कार करना, गांधीजी की नीति थी। लेकिन अभी गांधीजी का आन्दोलन चल ही रहा था कि कांग्रेस में दो दल हो गये। एक दल कौंसिलों में प्रवेश करके भीतर से अंग्रेजी सरकार को सुधार और स्वतन्त्रता के लिए प्रेरित करना चाहता था तो दूसरा दल बाहरी आन्दोलन के पक्ष में था। अन्त में

१९२३ ई० में मोतीलाल नेहरू, चित्तरंजनदास आदि के नेतृत्व में एक स्वराज्य पार्टी की स्थापना हुई। इस पार्टी का जोर बढ़ता गया और अन्त में १९१९ ई० के सुधारों की जाँच के लिए १९२७ ई० में 'साइमन-कमीशन' बैठाया गया।



देशबन्धु चित्तरंजनदास



मोतीलाल नेहरू

लेकिन कांग्रेस ने उसका जोरदार विरोध किया और काले झण्डे दिखलाये गए। १९२९ ई० में लाहौर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ, जिसमें पं० जवाहरलाल नेहरू अध्यक्ष बनाए गये और उनका उद्देश्य पूर्ण-स्वराज्य मान लिया गया। इसी बीच भारत के वाइसराय लार्ड इरविन ने गोलमेज कान्फ्रेंस का प्रस्ताव रखा, लेकिन कांग्रेस इससे भड़क उठी और उसे अस्वीकार कर दिया।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन और प्रान्तीय स्वराज्य :—१९३० ई० में गाँधीजी ने पुनः सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। दुकानों पर धरना, विदेशी माल का बहिष्कार और सरकारी पदों से इस्तीफे दिये जाने लगे। बहुत-से कांग्रेसी नेता एक बार फिर जेलों में ठूंस दिये गए। १९३० ई० में पं० मोतीलाल नेहरू मर गये और आन्दोलन कुछ दिनों के लिए शिथिल हो गया। १९३५ ई० का नया कानून भी पास हो गया जिसे कार्यान्वित करने के

लिए कांग्रेस के सहयोग की आवश्यकता थी। फलतः एक-एक करके सभी नेता छोड़ दिये गये। १९३७ ई० में व्यवस्थापकों के लिए जो चुनाव हुए उसमें कांग्रेस ने भाग लिया। ११ प्रांतों में से ६ में कांग्रेस का बहुमत रहा और जुलाई १९३७ ई० में कांग्रेस का ही मन्त्रिमण्डल बना। अन्य प्रांतों में मुस्लिम लीग ने भी मन्त्रिमण्डल बनाया। १९३९ ई० तक कोई विशेष घटना नहीं हुई परन्तु उस वर्ष द्वितीय महासमर छिड़ जाने पर लार्ड लिनलियगो ने भारतीयों की राय लिये बिना ही भारत का जब धुरी राष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया तो कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों ने गाँधी जी के परामर्श से त्यागपत्र दे दिया। युद्ध में भारत को बलात् घसीटे जाने के विरोध में १९४० ई० में गाँधीजी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह चलाया और सहस्रों व्यक्ति जेल में ठूंस दिये गये।

आजाद हिन्द फौज :—इसी समय नेताजी श्री सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में मलाया और बरमा में 'आजाद हिन्द फौज' का संगठन हुआ और जापान



सुभाषचन्द्र बोस

जर्मनी, इटली तथा श्याम ने उसे स्वीकृत भी कर दिया। परन्तु यह प्रयत्न असफल रहा और आजाद हिन्द फौज पर मुकदमा चला लेकिन अन्ततागत्वा उसके अधिकारी छोड़ दिये गये।

पाकिस्तान की मांग :—युद्ध नीति से असन्तुष्ट होने के कारण जब सरकार से कांग्रेस ने असहयोग किया तो मुस्लिम लीग का प्रभाव बढ़ने लगा। मुहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व में १९४० ई० में लाहौर वाले मुस्लिम लीग के

वार्षिक सम्मेलन में पाकिस्तान की स्थापना का प्रस्ताव पास हो गया। अब अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग की राजनीति भिन्न-भिन्न दिशाओं में चलने लगी।

भारत छोड़ो आन्दोलन और समझौते के प्रयत्न :—१९४२ ई० आते-आते महायुद्ध से अंग्रेजों की दशा खराब होती गयी और इधर भारत में महात्मा गाँधी ने 'भारत छोड़ो' आन्दोलन आरम्भ कर दिया। ८ अगस्त १९४२ ई० को सभी नेता जेल में ठूंस दिये गये। देश के अधिकांश क्षेत्र विद्रोहियों के अड्डे बन गये और अंग्रेजी राज्य की नींव हिलने लगी। ६ मई १९४५ ई० को महात्माजी जेल से छूटे। १९४६ ई० में इङ्गलैण्ड से एक शिष्टमण्डल 'कैबिनेट-मिशन' के नाम से भारत आया। इस योजना की मुख्य बात 'भारत को एक संघ राज्य' स्वीकार करना था। ६ अगस्त १९४६ ई० को संविधान सभा की प्रथम बैठक हुई, मुस्लिम लीग उससे अलग रही। नोआखाली में मुसलमानों ने हजारों हिन्दुओं को मौत के घाट उतार दिया और साम्प्रदायिक दंगे आरम्भ हो गये। १९४७ ई० में इङ्गलैण्ड को सरकार ने लार्ड माउण्टबेटेन को सत्ता हस्तान्तरित करने का पूरा अधिकार देकर भारत भेजा।

सत्ता-हस्तान्तरण, देश का विभाजन :—लार्ड माउण्टबेटेन ने ३ जून १९४७ ई० को अपनी योजना उपस्थित की जिसके द्वारा १५ अगस्त १९४७ ई० को हिन्दुस्तान का बँटवारा हुआ और हिन्दू-बहुल जनता वाले प्रान्तों को भारत में रहने दिया गया तथा मुसलमान बहुल प्रांतों में पाकिस्तान नामक एक नये देश की स्थापना हुई। भारत का विभाजन हो गया।

१९४६ ई० में जो संविधान-सभा संविधान बना रही थी उसने अपना कार्य पूरा कर लिया और २६ जनवरी १९५० ई० को वह भारतवर्ष में लागू भी हो गया। लेकिन जिनके प्रयत्नों, सुझावों और उत्सर्ग ने भारत को स्वराज्य दिलाया वे विश्ववन्द्य बापू २६ जनवरी १९५० ई० के दिन को न देख सके। ३० जनवरी १९४८ ई० को ही बिड़ला भवन दिल्ली में उनकी हत्या कर दी गयी। लेकिन इसके बाद साम्प्रदायिकता की रीढ़ टूट गयी, गाँधीजी का स्वप्न साकार हुआ।

प्रश्न

१. भारतीय स्वतन्त्रता-आन्दोलन का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

२. महात्मा गांधी के विषय में आप क्या जानते हैं। देश के लिए उन्होंने क्या किया ?

३. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए :—

बंग-भंग, लोकमान्य तिलक, जालियाँवाला बाग।

अध्याय ३४

स्वतन्त्र भारत और नेहरू-युग

भारत को १५ अगस्त १९४७ ई० को स्वतन्त्रता मिली और २६ जनवरी १९५० ई० को स्वनिर्मित संविधान आत्मार्पित किया। इस संविधान के द्वारा भारत में 'सर्वसत्तात्मक लोकतन्त्रीय गणतन्त्र' की स्थापना हुई। फिर भी यह देश ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल का सदस्य बना रहा। इसके पीछे अन्य राष्ट्रों के प्रति सद्भावना की स्थिति बनाये रखना ही उद्देश्य था।

राज्यों का पुनर्गठन :—

भारतीय संघ शासन की दृष्टि से कई प्रदेशों में बाँटा गया। स्वतन्त्रता के पूर्व जो राज्य थे, उनकी स्थिति पूर्ववत् बनी रही, किन्तु मद्रास प्रान्त के अतिरिक्त आन्ध्र प्रान्त तथा बम्बई प्रान्त के स्थान पर महाराष्ट्र और गुजरात दो अन्य प्रान्त भी संगठित हुए। देशी रियासतों में से कुछ बड़ी रियासतों को पृथक् प्रान्त माना गया किन्तु कुछ को मिलाकर नये प्रशासनिक संघ बनाये गये अथवा बड़े राज्यों में मिला दिया गया।

संविधान तथा बाद की राज्य पुनःसंगठन आयोगों के आधार पर भारत भूमि को राज्य और संघीय क्षेत्र में विभक्त किया गया।

राज्य :—जम्मू-कश्मीर, हिमाचलप्रदेश, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, मैसूर, केरल, मद्रास, आन्ध्रप्रदेश, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल, असम, नागालैण्ड, मेघालय, बिहार और उत्तरप्रदेश।

संघीय-क्षेत्र :—दिल्ली, मणिपुर, त्रिपुरा, अण्डमान, निकोबार द्वीप, लंकाद्वीप, अमीन द्वीप, मिनिकोय द्वीप, दादर, नगरहवेली, गोआ, डामन, दिव और पाण्डुचेरी।

नये संविधान की विशेषताएं :—

नये संविधान के द्वारा सुकेन्द्रित शासन की व्यवस्था की गयी यद्यपि राज्यों को भी पर्याप्त स्वायत्तता मिली। देश में संसदीय व्यवस्था लागू की गयी तथा भारतीय संघ का प्रधान राष्ट्रपति को माना गया। सरकार का संघटन संघात्मक तथा एकात्मक शासन प्रणाली के सम्मिश्रण से तैयार किया गया और भारतीय

प्रजातन्त्र का आधार धर्मनिरपेक्षता स्वीकार किया गया। सम्पूर्ण भारत में वयस्क मताधिकार का सिद्धान्त लागू किया गया। केन्द्र के शासन के लिए द्विसदनीय व्यवस्था लागू की गई और भारतीय संसद के दो अंग-राज्यसभा और लोकसभा संगठित हुए। राज्यों में उनके आकार और जनसंख्या का ध्यान करके एक या दो सदनीय व्यवस्थापिका सभाएँ संगठित हुई।

वास्तविक जनतन्त्र की स्थापना के लिए भारतीय नागरिकों को अनेक मौलिक अधिकार दिये गए और राज्य की नीति के आधारभूत सिद्धान्तों तथा निर्देशक तत्वों की व्याख्या करके जनतन्त्र को और प्रगतिशील और आशाप्रद बनाया गया। नागरिकों के मौलिक अधिकार के अन्तर्गत भारतीय नागरिकों को समता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, शोषण के विरुद्ध अधिकार, धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार, संस्कृति और शिक्षा का अधिकार, सम्पत्ति का अधिकार तथा सांविधानिक उपचारों का अधिकार मिला।

विभाजन का परिणाम :—

विभाजन के अनेक आर्थिक और राजनीतिक परिणाम हुए, जिनमें अधिकांश बुरे सिद्ध हुए। देश के विभाजन से आर्थिक समृद्धि भी दो टूक हो गयी, फलतः दोनों ही देशों में तमाम योजनाओं और प्रयत्नों के बाद भी अन्न और वस्त्र का अभाव आज भी बना हुआ है। दोनों देशों में वैमनस्य बढ़ता गया है। कश्मीर के लिए पाकिस्तान के दुराग्रह के कारण भारत को प्रभूत धन का व्यय करना पड़ रहा है तथा दोनों ही देशों में परस्पर अरक्षा की भावना बनी है। शरणार्थियों की समस्यायें भी विकट सिद्ध हुई। विश्वबैंक और संयुक्त राष्ट्रसंघ को कश्मीर तथा अन्य भारत-पाकिस्तान सम्बन्धी विवादों को सौंप देने से अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के प्रभाव के कारण कोई हित नहीं हो पा रहा है।

देशी रियासतों का विलयन :—

स्वतन्त्रता के पूर्व भारत देश ब्रिटिश साम्राज्य और देशी रियासतों में विभक्त था। सत्ता के हस्तान्तरण से देशी रियासतें स्वतन्त्र हो गयीं। छोटी रियासतें जिनकी संख्या लगभग ५०० थी, देश में वास्तविक सार्वभौम सत्ता की स्थापना

के लिए इनका भारतीय गणराज्य में विलयन सर्वथा आवश्यक था। इस दिशा में लोहपुरुष वल्लभभाई पटेल का प्रयत्न सराहनीय सिद्ध हुआ। छोटी रियासतों का विलयन तो सफलतापूर्वक हुआ किन्तु कश्मीर, भोपाल, हैदराबाद, ट्रावंकोर, जूनागढ़, ग्वालियर और मंगलोर की रियासतें विलयन के लिए सर्वथा तैयार न थीं। ग्वालियर, भोपाल, ट्रावंकोर, जूनागढ़, मंगलोर आदि रियासतें पटेल महोदय की नीति के कारण सहज ही भारत की प्रभुसत्ता में विलीन हो गयीं। हैदराबाद के साथ थोड़ी लड़ाई करनी पड़ी तथा १६ सितम्बर १९४८ ई० की पुलिस कारवाई के द्वारा हैदराबाद का विलयन सम्भव हुआ।



सरदार पटेल

कश्मीर की समस्या :—

कश्मीर भारत का अविभाज्य अंग था; इसलिए उसके विलयन का प्रश्न नहीं उठता। किन्तु पाकिस्तान की दुर्नीति और भारतीय पक्ष की ओर से कतिपय राजनीतिक भूलों के कारण कश्मीर की समस्या नेहरू युग की एक प्रमुख समस्या बन गयी। २६ अक्टूबर १९४७ ई० को ही कश्मीर भारत का अंग बन गया। तब से लेकर आज तक पाकिस्तान के निरन्तर हमले जम्मू-कश्मीर पर हो रहे हैं। १९६१ ई० में कश्मीर का सम्बन्ध भारतीय संविधान से और भी सुदृढ़ हुआ जिसके विरोध में पाकिस्तानी षड्यन्त्र तथा उपद्रव और भी उग्र हो उठा। खेद है कि पश्चिमी राष्ट्र भी भारत के नैतिक दृष्टिकोण की उपेक्षा करते आ रहे हैं।

नेहरू की परराष्ट्र नीति और पंचशील :—

स्वतन्त्र भारत के प्रथम प्रधान मन्त्री के रूप में पं० जवाहरलाल नेहरू ने पुष्ट परराष्ट्र नीति की नींव डाली। स्वार्थी और साम्राज्यवादी राजनीतिक वातावरण में भले ही नेहरू द्वारा संस्थापित परराष्ट्र नीति का सही मूल्यांकन न

हो पाया हो, किन्तु यह एक निर्विवाद तथ्य है कि इस नीति के कारण भारत को



अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति और महत्ता मिली तथा भारत के नैतिक मूल्यों का महत्त्व आँका गया।

भारतीय परराष्ट्र-नीति की आधार-शिला सहअस्तित्व और जवाहरलाल नेहरू का दलबन्दी से अलग रहना है। नेहरूजी के पंचशील सिद्धान्त के आधार पर भारत ने अपनी परराष्ट्र-नीति का निर्माण किया है। पंचशील की महत्त्वपूर्ण बात इस प्रकार हैं—

१. सब राज्य अन्य राज्यों की प्रभुता और भौगोलिक सीमाओं को स्वीकार करे।

२. कोई राज्य किसी अन्य राज्य पर आक्रमण न करे।

३. सब राज्य एक दूसरे को समान समझें व पारस्परिक हितों में सहयोग प्रदान करें।

४. कोई राज्य किसी दूसरे राज्य के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करे।

५. सब राज्य शान्तिपूर्वक एक दूसरे के साथ रहें और अपनी पृथक् सत्ता व स्वतन्त्रता स्थायी रखे।

भारत का अन्य राज्यों से सम्बन्ध :—

भारत का सम्बन्ध सभी देशों से अच्छा रहा। फलतः रूस, अमेरिका, इङ्गलैंड, फ्रांस आदि सभी योरप और एशिया के राष्ट्र भारत के मित्र हुए। भारत का संयुक्त राष्ट्रसंघ में अटूट विश्वास है। वह एशियाई एकता का भी

पक्षपाती है। फलतः भारत ने ऐसे समस्त संगठनों और सम्मेलनों में भाग लिया जिनका सम्बन्ध और प्रभाव एशियायी मैत्री पर पड़ता। भारत की गुटनिरपेक्षता का स्थायी प्रभाव संयुक्त अरब गणराज्य पर पड़ा है। नेहरू के नेतृत्व और सद्भाव की अपेक्षा लंका, वर्मा, हिन्दचीन आदि देशों को भी रहती रही। हिन्द-चीन की स्वतन्त्रता में भारत ने महत्त्वपूर्ण योगदान किया है।

पाकिस्तान और चीन से भारत का सम्बन्ध :—

पाकिस्तान के जन्म का आधार ही हिंसा और साम्प्रदायिक होने के कारण भारत के शान्तिपूर्ण मैत्री सम्बन्ध और आचरण का कोई विशेष प्रभाव उस पर न पड़ा। पाकिस्तान में अल्पसंख्यक हिन्दुओं के प्रति पाकिस्तान सरकार ने कुटिल ओर अनीतिपूर्ण व्यवहार किया तथा निरन्तर अत्याचार से प्रताड़ित असंख्य हिन्दू भागकर भारत आये। फलतः पाकिस्तान से भागे शरणार्थियों की समस्या भारत के लिए सिरदर्द बनी हुई है। कश्मीर की समस्या लेकर भारत और पाकिस्तान में काफी विवाद हुआ। दोनों देशों में विवाद की कटुता धीरे-धीरे शीत युद्ध का रूप लेती रही। पाकिस्तान अपनी सामरिक और सैनिक गतिविधियों से भारत की शान्ति को भंग करता रहा।

स्वतन्त्रता के बाद से भारत और चीन में घनी मित्रता का निर्वाह हो रहा था। १९५३ ई० तक यही स्थिति बनी रही। किन्तु इसके बाद धीर-धीरे स्थिति बदलने लगी और चीन का चेहरा एक मक्कार दुश्मन के रूप में निखरने लगा। यद्यपि तिब्बत का सीमा सम्बन्धी विवाद भारत और चीन के बीच टल गया था और दोनों देशों के बीच समझौता भी हो गया था किन्तु चीन ने अपनी विस्तार-वादी नीति के कारण भारत पर आक्रमण कर दिया और मैकमोहन सीमा सिद्धांत की उपेक्षा कर दी। जुलाई १९६२ ई० में लद्दाख क्षेत्र चीनियों में आतंक उपस्थित किया किन्तु अक्टूबर १९६२ ई० में उसने भारत पर विधिवत् आक्रमण कर दिया तथा आक्रमण क्षेत्र लद्दाख और नेफा तक विस्तृत कर दिया। नवम्बर १९६२ ई० तक भारत की स्थिति बड़ी बुरी हो गयी। भारत अपनी सीमाओं की सुरक्षा के प्रति, विशेषकर चीनियों के सहसा आक्रमण के प्रति अपेक्षित सजगता

नहीं प्रदर्शित कर सका था। २० नवम्बर, १९६२ ई० को अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव, भारतीय एकता और निष्ठा के अपूर्व प्रदर्शन, अपनी आर्थिक और सामरिक असुविधाओं तथा प्राकृतिक बाधाओं के कारण चीन ने भारत के साथ विराम सन्धि कर ली। अभी तक यही स्थिति बनी हुई है यद्यपि वह पाकिस्तान के साथ दुरभिसन्धि करके भारत के लिए खतरनाक स्थिति पैदा करता जा रहा है।

भारत को अपनी शान्ति और सुरक्षा के लिए अनेक उपाय करने पड़े। भारत में सुरक्षा अधिनियम (२६ अक्टूबर १९६२ ई०) लागू करना पड़ा। इसी नियम के अन्तर्गत स्वर्ण नियन्त्रण नियम लागू किया गया (१० जनवरी १९६३ ई०) और युद्ध के लिए आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए राष्ट्रीय सुरक्षा कोष का संगठन करना पड़ा।

योजनाएँ और आर्थिक समृद्धि :—

नेहरू युग (१५ अगस्त १९४७ ई०–२७ मई १९६४ ई०) में देश को विषम परिस्थितियों में सुयोग्य नेतृत्व मिला। नेहरूजी का ध्यान भारत की सर्वतोमुखी प्रतिभा के विकास में था। फलत: राष्ट्र निर्माण की दिशा में अनेक योजनाएँ लागू की गयी। कतिपय क्षेत्रों में कुछ आर्थिक प्रगति भी हुई। किन्तु योजनाओं के पीछे होने वाले व्यय की तुलना में उत्पादन की स्थिति सन्तोषप्रद न हो सकी। विदेशी ऋणों में जहाँ एक ओर विभिन्न योजनाओं के संचालन के लिए महत्त्वपूर्ण योग दिया वहाँ उसका बुरा प्रभाव भारतीय मुद्रा स्थिति पर भी पड़ा।

२७ मई १९६४ ई० को जवाहरलाल नेहरू की मृत्यु हुई। सर्वसम्मति से लाल-बहादुर शास्त्री को कांग्रेस के संसदीय दल का नेता चुना गया, जिसके फल-स्वरूप वे भारत के प्रधान मन्त्री बनाये गये।

लालबहादुर शास्त्री का जन्म काशी में १९०४ ई० में हुआ था। इनका बचपन बड़ी ही विपन्नावस्था में व्यतीत हुआ था। अत्यन्त साधारण परिवार में उत्पन्न होते हुए भी बचपन से ही ये बड़े प्रत्युत्पन्न, मनीषी तथा कर्तव्यपरायण थे। काशी विद्यापीठ से शास्त्री की परीक्षा पास की थी। असहयोग आन्दोलन से

प्रभावित होकर इन्होंने अध्ययन त्याग दिया और स्वतन्त्रता आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने लगे। १९२१ ई० में प्रथम बार जेल गये। १९२६ ई० में इन्होंने भारत सेवक समाज की सदस्यता ली। १९३०ई० में नमक सत्याग्रह में भाग लेने के कारण ढाई वर्ष की सजा पायी। १९३५-३८ ई० के बीच वे उत्तर प्रदेश कांग्रेस के महामन्त्री बने रहे। १९३७ ई० में और १९४६ ई० में ये प्रदेश विधान परिषद् के संसदीय मन्त्री के रूप में कार्य करते रहे। १९४६ ई० में ये पुलिस मन्त्री भी बने। इन विभिन्न प्रशासकीय पदों को सुचारूपूर्वक सँभालते हुए भी इनका मन कांग्रेस के संगठनात्मक और रचनात्मक हितों की ओर केन्द्रित रहा अतएव १९५१ ई० में मन्त्रित्व का परित्याग करके इन्होंने अखिल भारतीय कांग्रेस का महामन्त्रित्व सँभाला। १९५६ ई० में ये केन्द्रीय सरकार के रेलमन्त्री बने और निष्ठापूर्वक कार्यरत रहे। एक रेल दुर्घटना से ये इतने दुःखी हुए कि इन्होंने उस दुर्घटना का रेल मन्त्री होने के नाते व्यक्तिगत उत्तरदायित्व माना और मन्त्रित्व का परित्याग कर कांग्रेस की सेवा में लग गये। मन्त्रित्व का परित्याग कर कांग्रेस दल के प्रमुख निर्वाचन संचालक बने। इसके अनन्तर ये यातायात मन्त्री, वाणिज्य मन्त्री, गृहमन्त्री आदि अनेक प्रशासकीय पदों को सँभालते हुए भारत सरकार के सुयोग्य संचालन में योग देते रहे। १९६३ ई० में 'कामराज-योजना' के अन्तर्गत इन्होंने सहर्ष अपने प्रशासनिक पदों का परित्याग करके कांग्रेस के



लालबहादुर शास्त्री

लालबहादुर शास्त्री

प्रति अनूठी निष्ठा व्यक्त की। जनवरी १९६३ ई० में जब नेहरूजी अस्वस्थ हुए तो इन्हें पुनः नेहरूजी ने अपनी सहायता के लिए सरकार में आने के लिए बाध्य किया। इनकी अनूठी देशभक्ति, निःस्वार्थ देशभाव और व्यक्तिगत सादगी से प्रभावित होकर नेहरू के बाद देश ने इन्हें सहर्ष अपना नेता स्वीकार किया।

प्रधानमन्त्रित्व सँभालते ही इन्होंने अपनी भावी नीतियों की घोषणा की जिसकी प्रमुख बातें निम्नलिखित थीं :—

१. बढ़ती कीमतों को रोकना,

२. सुरक्षा व्यवस्था में दृढ़ता लाना,

३. गरीबी और बेरोजगारी का निवारण करना,

४. क्षेत्रीय, प्रादेशिक, भाषागत विवादों का हल निकाल कर देश में अधिकतम भावात्मक एकता का वातावरण लाना,

५. क्रमशः आर्थिक उत्पादनों को बढ़ाना तथा उत्पादनों का समुचित वितरण करके वास्तविक समाजवाद की स्थापना करना।

६. अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के लिए निरस्त्रीकरण का समर्थन करना और भारत को राजनीतिक गुटबन्दी से पृथक् रखना।

७. लालबहादुर शास्त्री ने अपने अल्प शासनकाल में इन योजनाओं को सफलतापूर्वक कार्यान्वित किया।

प्रश्न

१. भारतीय संविधान की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

२. देशी रियासतों के एकीकरण पर टिप्पणी लिखिए और भारतीय प्रान्तों का नाम बताइए।

३. पंचशील की प्रमुख बातों पर टिप्पणी लिखिए।



अध्याय ३५

भारत-पाक प्रथम संघर्ष

नेहरू युग की अवधि में चलने वाला भारत-पाक शीतयुद्ध उग्र और प्रत्यक्ष युद्ध के रूप में प्रकट हो गया। लालबहादुर शास्त्री शान्तिवादी थे, अतएव भारत और पाकिस्तान के बीच शान्तिपूर्ण समझौता चाहते थे। इस तरह के समझौते की हिमायत उन्होंने प्रायः अपने सभी भाषणों में की। किन्तु समझौता का अर्थ वे सम्मानपूर्वक समझौता मानते थे। कश्मीर या इसी प्रकार भारत के किसी अन्य भारतीय प्रदेश को गँवाकर समझौता करना वे आत्मगौरव के विरुद्ध समझते थे। किन्तु पाकिस्तान की हरकतें भारतीय समझौतापूर्ण नीति से बदली नहीं अपितु उग्र ही होती गयीं। भारतीय संयम और शांति-प्रयास को, पाकिस्तान तथा उसके अयूब और भुट्टो जैसे कर्णधार, भारत की कमजोरी समझते रहे। इस भावना से प्रेरित होकर पाकिस्तानी सैनिक न केवल कश्मीर के ही क्षेत्र में अपितु कच्छ, राजस्थान, त्रिपुरा, कूचविहार आदि क्षेत्र में भी उपद्रव मचाने लगे। साथ ही पाकिस्तानी नेता समय-समय पर सिन्धु नदी के जल के लिए भी विवाद खड़ा करते, युद्ध विराम रेखा का यत्र-तत्र उल्लंघन करते और अल्पसंख्यक हिन्दुओं को प्रतारणा देते थे। लालबहादुर शास्त्री ने इन परिस्थितियों का गहन अध्ययन किया। उनका व्यक्तित्व जहाँ कुसुम से भी कोमल था वहाँ वज्र से भी कठोर था। फलतः उन्होंने देश के लिए एक नया राजनीतिक दर्शन और दृष्टिकोण दिया। उन्होंने बताया कि शान्ति और सुव्यवस्था के लिए अहिंसा ही की तरह युद्ध भी महत्त्वपूर्ण है।

शान्तिवादी भारत स्वतन्त्रता के बाद से ही आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ रहा था। अनेक कमियों के बावजूद भूमि और कृषि-व्यवस्था में अपेक्षाकृत सुधार हुआ, कल-कारखानों की प्रतिष्ठा की गयी, उद्योग-व्यापार को प्रोत्साहन दिया गया, ग्राम्यक्षेत्रों में पंचायतों की स्थापना की गयी, कुटीर

उद्योगों को विकसित किया गया। विज्ञान, कला, साहित्य और संस्कृति को प्रोत्साहित किया गया। शास्त्री-शासन की दृष्टि इन सब क्षेत्रों में विकास लाने की थी। वे शासन में फैली अनैतिक मनोवृत्तियों, योजनाओं की अव्यावहारिक और अनुपयोगी कार्यक्रमों, राजनीति में फैली गुटबन्दी और स्वार्थपरक मनोवृत्तियों आदि पर कुठाराघात करना चाहते थे। अपने अल्प शासनकाल में उन्होंने इन सब दिशाओं में कुछ महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ भी प्राप्त की। वर्गगत स्वार्थ, गुटबन्दी, प्रादेशिक संकीर्णता, भाषागत विवाद से ग्रस्त होकर शास्त्री शासनकाल का भारत समस्याओं का आगार बना हुआ था। किन्तु शास्त्रीजी संयम, निःस्वार्थ सेवा, अटूट देशभक्ति, साहस और जनहित के प्रति अपार निष्ठा की प्रतिमूर्ति थे। वे बिना किसी भय और संकोच के इन समस्याओं के हल के लिए जागरूक हुए। उनके आदर्श व्यक्तित्व ने अपना प्रभाव भारत के सभी क्षेत्रों पर छोड़ा और फल यह हुआ कि उन्होंने अपने शासनकाल में उठने वाली समस्याओं का सफलतापूर्वक हल ढूंढ़ निकाला, चाहे वह भाषा की समस्या हो, चाहे नागालैण्ड की, चाहे पंजाबी सूबे की, चाहे केरल की भुखमरी की और चाहे वामपन्थी साम्यवादियों की विघटनकारी प्रवृत्तियों की, वे सर्वत्र सफल रहे।

इन्हीं परिस्थितियों में जब उनके सामने पाकिस्तान और चीन की समस्या आयी तो वे उसे भी सफलतापूर्वक सुलझाने में लगे। शास्त्रीजी की सार्वजनिक सफलताओं का मात्र कारण यह था कि उन्हें जनता का मनोबल प्राप्त था। वे जनता के थे, अतएव इर्द-गिर्द घूमने वाले स्वार्थी वातावरण की चिन्ता न करते थे। उनके हृदय में प्रतिक्षण जनमन का स्पन्दन प्रतिध्वनित होता रहता था। इसी मनोबल को पाकर उन्होंने पाकिस्तानी आक्रमण का सामना किया और युद्ध जीता।

भारत-पाक शीतयुद्ध अल्पकाल ही में प्रकट युद्ध में परिणत हो गया। कश्मीर क्षेत्र में छिट-फुट उपद्रव तो स्वतन्त्रता के बाद से ही होते रहे और अभी भी चल रहे थे। छद्मवेशी पाकिस्तानी सैनिक भारी मात्रा में कश्मीर और जम्मू में उतर आये। इधर मई-जून १९६५ ई० में कच्छ के क्षेत्र में भी पाकिस्तानी घुस आये। कच्छ के रन के ९००० वर्ग मील वाले क्षेत्र पर पाकिस्तान ने अपना

दावा सिद्ध करना चाहा और युद्ध छेड़ दिया। आत्मरक्षार्थ बड़े संयमित ढंग से भारतीय सैनिकों ने पाकिस्तानी सैनिकों से संघर्ष किया। इस संघर्ष में पाकिस्तान ने अमेरिकी टैंकों तथा अन्य शस्त्रास्त्रों का प्रयोग किया, यद्यपि वह अमेरिका से वादा कर चुका था कि वह अमेरिकी शस्त्रों का प्रयोग भारत के विरुद्ध न करेगा। संघर्ष महीनों चलता रहा। विदेशी अनुरोध पर भारत ने पाकिस्तान के साथ एक अल्पकालीन विराम सन्धि भी कर ली। किन्तु पाकिस्तान ने भारतीय सद्भावना और शान्ति-प्रयास का आदर न किया। एक ओर वह सन्धि का ढोंग रच रहा था और दूसरी ओर युद्ध की तैयारी। जून-जुलाई १९६५ ई० में वह कश्मीर, कच्छ तथा आसाम-बंगाल सीमा पर सैनिक तैयारियाँ और प्रदर्शन भी करता रहा। ये हरकतें शास्त्रीजी को बड़ी अपमान-जनक लगीं। फलतः पहले तो १२ अगस्त १९६५ई० को उन्होंने पाकिस्तान को चेतावनी दी और जब फिर भी पाकिस्तान की हठधर्मी दूर न हुई तथा पाकिस्तान ने कारगिल, तीथवाल, करन आदि क्षेत्रों में युद्ध की स्थिति उत्पन्न कर दी तो शास्त्रीजी ने विवश होकर अपने सैनिकों को आगे बढ़ने का आदेश दे दिया। २८ अगस्त को भारतीय सेना ने युद्ध-विराम रेखा को पार किया तथा आगे बढ़ती गयी। धीरे-धीरे युद्ध-क्षेत्रों का भी विस्तार होता गया और युद्ध की व्यापकता ऊरी, पूँछ, छम्ब, जोरियो, तीथवाल, करन, कारगिल आदि क्षेत्रों में भी बढ़ी। कच्छ और राजस्थान में भी युद्ध का विस्तार हुआ। इसी प्रकार पूर्वी पाकिस्तान ने भी सीमा पर युद्ध का वातावरण प्रस्तुत किया। पाकिस्तान का मित्र चीन भी पीछे न रहा और वह भी लद्दाख तथा माना दर्रे के पास सैनिक कारवाइयाँ करने लगा। किन्तु इन सारी विपत्तियों का सामना देश ने शास्त्रीजी के नेतृत्व में शौर्य के साथ किया। १ सितम्बर १९६५ ई० को हाजीपीर दर्रे पर अधिकार कर लिया और भारतीय सेना लाहौर तथा स्यालकोट में भी घुस पड़ी। भारतय सफलताओं ने अन्तर्राष्ट्रीय जगत में तहलका मचा दी। पाकिस्तान भी पछाड़ खाकर अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद् की शरण में भागा। अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों ने पहले धौंस से काम लिया और भारत को ५ अगस्त १९६५ के पूर्व सीमा स्थिति को स्वीकार करने के लिए दबाव डाला। अमेरिका

और ब्रिटेन, जो नेहरू-युग में भारत के मित्र बनते थे, मित्रता का मुखौटा फेंक भारत की बढ़ती शक्ति और क्षमता के प्रति सशंक होकर प्रच्छन्न रूप से पाकिस्तान की पीठ ठोंकने लगे। किन्तु शास्त्रीजी के नेतृत्व में भारत अडिग रहा। अन्तर्राष्ट्रीय, आर्थिक और राजनयिक दबाव का बोझ सँभालते हुए भी भारत निरन्तर सामरिक सफलताओं के प्रति अग्रसर होता रहा। उत्तरोत्तर विजयगति ने भारतीय मनोबल को बहुत ऊँचा किया तथा एक बार फिर वह अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में गौरवान्वित हुआ। इस प्रकार जब भारत की स्थिति बहुत अच्छी थी, और उसकी तुलना में पाकिस्तान की बुरी तो अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों ने भारत को पाकिस्तान से सन्धि के लिए पुनः आग्रह किया। रूस का ताशकन्द वार्ता-प्रस्ताव, जो कई अड़चनों के कारण खटाई में पड़ा हुआ था, कारगर होने को आया। कोसीजिन का आग्रह मानकर अयूब और लालबहादुर शास्त्री ताशकन्द वार्ता के लिए सहमत हुए। ३ जनवरी को दोनों नेताओं के बीच वार्ता प्रारम्भ हुई। समझौता वार्ता में पहले तो पाकिस्तान ने बड़ी हठधर्मी दिखाई किन्तु चूंकि ताशकन्द समझौते की उसे भारत से कहीं अधिक आवश्यकता थी अतएव उसे समझौता करना पड़ा। दोनों नेताओं ने अपने राष्ट्र की ओर से घोषित किया कि वे (१) अपनी समस्याओं को सुलझाने में शक्ति का प्रयोग नहीं करेंगे और (२) समस्याओं के शांतिपूर्ण हल के लिए आवश्यक शान्तिपूर्ण वातावरण बनाये रखने के लिए ५ अगस्त से पूर्व की स्थिति को स्वीकार करके अपनी सेनाएँ पीछे हटा ले जायेंगे। यह समझौता १० जनवरी १९६६ ई० को सम्पन्न हुआ। इस समझौते से शास्त्रीजी के गौरवपूर्ण व्यक्तित्व की धाक पूरे विश्व में जमी। विश्व ने जाना कि भारत यदि आत्मरक्षा के लिए शौर्यपूर्वक युद्ध कर सकता है तो अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना के लिए शांतिपूर्ण समझौता भी।

ताशकन्द समझौता भारत की विजय है। किन्तु इस विजय को भारतीय जनता ने उल्लास के वातावरण के साथ न पाया। भारतीय नागरिकों ने ताशकंद समझौते को इस शोक संवाद के साथ सुना कि भारत के कर्णधार लालबहादुर शास्त्री अब इस संसार में न रहे। शास्त्रीजी दिवंगत हुए।

ताशकन्द समझौता शास्त्री जी के जीवन तथा शासन-काल की अन्तिम घटना है। यह समझौता एक ओर जहाँ शास्त्रीजी के राजनीतिक जीवन की पूर्णता का प्रतीक है वहाँ यह इस बात का भी संकेत करता है कि शास्त्रीजी शान्ति के लिए जीये और शांति के लिए मरे। इस समझौते से भारत का मनोबल और भी ऊँचा हुआ तथा अन्तर्राष्ट्रीय जगत में उसकी प्रतिष्ठा बढ़ी।

प्रश्न

१. लालबहादुर शास्त्री के चरित्र और उपलब्धियों की व्याख्या कीजिए।
२. भारत-पाक प्रथम संघर्ष का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कीजिए।

उपसंहार

भारतीय विद्याओं में इतिहास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसे पाँचवाँ वेद कहा गया है (इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्, छान्दोग्य, ७।१)। इसका अध्ययन न केवल हमारे अतीत की व्याख्या करता है अपितु भविष्य की रूपरेखा भी प्रस्तुत करता है। काल के अजस्र प्रवाह में अतीत, वर्तमान और भविष्य अर्थहीन हैं। सब में एकात्मकता है, पृथकता नहीं। इस दृष्टि से निरुक्तकार यास्क ने ठीक ही कहा है कि जो पुराना है वही नवीन बनकर आता है। (पुरा नवं भवति, निरुक्त, ३।१९)।

इतिहास का अध्ययन सत्यशोधन का सर्वोत्तम साधन है, क्योंकि इतिहासकार अतीत के अध्यय में वैज्ञानिक की ही तरह घटनाओं और विचारों के सन्दर्भ में कार्यकारण की तात्त्विक मीमांसा करता है। इतिहास इतिवृत्तात्मक होता है, अतएव इतिहास की रचना में इतिहासकार कल्पना, आग्रह और भावुकता का उपयोग नहीं करता। इतिहासकार का 'अनुमान' भी तथ्यों के सन्दर्भ में होता है। देश-काल की परिधि में निश्चयात्मक तथ्य ही इतिहास का आधार है। देश-काल-सम्मत 'तथ्य', कल्पना, आग्रह तथा मिथ्या के मोहावरण से आच्छादित 'अतथ्य' का घातक है। पुराणकार का वचन है :—

इतिहास-प्रदीपेन मोहावरण-घातिना।
लोकगर्भं कृत्स्नं यथावत् संप्रकाशितम्॥

तथ्य के सम्बन्ध में जब हम भारतीय इतिहास का अध्ययन करते हैं तो हमें अपने अतीत के प्रति गौरवान्वित होना पड़ता है। हमारे पुरखों का चरित विश्व का आलोक है। उनकी उपलब्धियों से हमें प्रेरणा मिलती है। उन्होंने जीवन के शाश्वत मूल्यों को पहचाना और उन्हीं मूल्यों के अनुरूप भौतिकता की व्याख्या की। वे बड़े आत्मचिन्तक थे तथा साथ ही जीवन की यथार्थता से सुपरिचित भी। आत्मचिन्तन और लोक दृष्टि से समन्वित भारतीय व्यक्तित्व न तो 'काल'

के गतिमान चक्र में पिसकर चकनाचूर ही हुआ और न समसामयिक झंझावातों में फँसकर पथभ्रष्ट ही। राजनीतिक व्याघातों ने भारतीय मन को क्षुब्ध भी किया तथा उसमें कतिपय कुण्ठायें भी कियत् काल के लिए पनपीं। किन्तु किसी भी परिस्थिति में हमारी सांस्कृतिक परम्पराओं का अजस्र स्रोत सूखने न पाया और वह भारतीय जीवन को समरसता प्रदान करता रहा।

स्वतन्त्रता के बाद विश्व संस्कृति के सन्दर्भ में भारतीय दायित्व बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। किन्तु आज के संकीर्ण और स्वार्थी वातावरण में इस दायित्व का वहन अपेक्षाकृत कठिन है। फिर भी हमें बाधाओं के होते हुए भी अपने प्राचीन स्वरूप और मान्यताओं की रक्षा करनी है तथा आत्मसंयम, स्वाभिमान और विश्वास के साथ सभ्यता के बढ़ते चरण का साथ देना है। हमें विश्वास है कि भारत न केवल अपनी सांस्कृतिक थाती को ही संभाले रखेगा, अपितु अपने आदर्शों के दिव्यालोक की प्रभा से भावी विश्व का मार्ग भी प्रशस्त करेगा।

कतिपय महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ

कादम्बरी। सविमर्श 'भा[illegible]विनी' संस्कृत-हिन्दी टीका। व्याख्याकार-
डा. जयशंकरलाल त्रिपाठी। आदितः शु[illegible] सम्पूर्ण २००.०
पूर्वार्द्ध १७५.०० उत्तरार्द्ध २२५.०
हिन्दी-दशरूपकम्। धनञ्जयकृत। धनिककृत 'दशरूपकावलोक' टीका
सहित। व्याख्याकार- डा. सुधाकर मालवीय ८५.०
वैराग्यशतकम्। भर्तृहरिकृत। गद्य-पद्यात्मक हिन्दी व्याख्या सहित १५.०
शिशुपालवधमहाकाव्यम्। 'आशुबोधिनी' संस्कृत-हिन्दी टीका
सहित १-४ सर्ग ७०.०
शृङ्गारशतकम्। भर्तृहरिकृत। गद्य-पद्यात्मक हिन्दी व्याख्या सहित
डा. देवर्षि[illegible] शास्त्री १५.०
साहित्यदर्पणम्। 'चन्द्रकला' संस्कृत-हिन्दी[illegible] सहित।
१-६ परिच्छेद १७०.००, ७-१० परिच्छेद १३०.००, सम्पूर्ण ३२५.०
शिशुपालवधम्। मल्लिनाथ-सूरिकृत 'सर्वङ्कषा' व्याख्या समुल्लसित।
[illegible] पं. दुर्गाप्रसाद एवं पं. शिवदत्त २००.
हर्षचरितम्। महाकविबाणभट्टविरचित। श्री शंकरविरचित 'संकेत'
व्याख्या एवं 'कमलेश्वरी' हिन्दी व्याख्या सहित।
व्याख्याकार- डा. बालगोविन्द झा। सम्पूर्ण
सौन्दरनन्द महाकाव्यम्। 'शांति' संस्कृत व्याख्या तथा
हिन्दी भाषानुवाद टिप्पणी विस्तृतभूमिका। व्याख्या.-डा. रमाशङ्कर त्रिपाठी ७५.०
रघुवंशमहाकाव्यम्। 'मल्लिनाथी' संस्कृत तथा सान्वय 'हरिप्रिया'
हिन्दी व्याख्या सहित। सम्पूर्ण १२५.
मेघदूतम्। सान्वय 'इन्दुकला' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित।
व्याख्याकार -वैद्यनाथ झा। सम्पूर्ण ६०
चन्द्रालोकः 'पौर्णमासी' संस्कृत तथा 'कलाभिट्टी' हिन्दी टीका सहित। सम्पूर्ण ४०.
[illegible] 'कल्याणी' सं[illegible] व्याख्या सहित।
व्याख्याकार -पं. रामनाथ [illegible]स्त्री। सम्पूर्ण
दशकुमारचरितम्। 'चन्द्रकला' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या [illegible]
व्याख्याकार [illegible] शेषराज शर्मा [illegible] पूर्वार्द्ध [illegible] ३०

प्राप्तिस्थान: [illegible] बाबा कृष्णदास अकादमी, पो. [illegible] १००८, [illegible]